इकाई–1
भाषा

संरचना

1.1 भूमिका

1.2 उद्देश्य

1.3 भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण

1.3.1 भाषा से तात्पर्य

1.3.2 भाषा का अभिलक्षण

1.3.3 भाषा और वाक्

1.3.4 भाषा और वाक् में अन्तर

स्वयं आकलन के प्रश्न

1.4 सारांश

1.5 कठिन शब्दावली

1.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उतर

1.7 संदर्भित पुस्तकें

1.8 सात्रिक प्रश्न

1.1 भूमिका :

भाषा की उत्पत्ति सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य समाज के अन्य सदस्यों के साथ विविध प्रकार के संबंधों की स्थापना तथा निर्वाह करता है। इन संबंधों का निर्माण तथा निर्वाह उसकी आवश्यकता तथा अनिवार्यता दोनों है। समाजशास्त्र की मान्यता के अनुसार समाज विभिन्न व्यक्तियों का समूह नहीं अपितु उनके विविध प्रकार के संबंधों का जाल है। व्यक्तियों के ये संबंध ही वस्तुत: समाज का निर्माण करते हैं।

1.2 उद्देश्य :

1. भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण क्या है?
2. भाषा और वाक् में क्या अंतर है?
3. भाषिक व्यवहार तथा भाषा विज्ञान क्या है? इसकी जानकारी

1.3 भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण

व्यक्तियों के संबंध की स्थापना में परस्पर संपर्क आधारभूत भूमिका का निर्वाह करते हैं। परस्पर संपर्क स्थापित किये बिना 'संबंध-निर्माण' की कल्पना नहीं की जा सकती। किसी समाज के विभिन्न सदस्य परस्पर संपर्क स्थापित करके एक दूसरे के साथ अपने संबंधों की आधारशिला रखते हैं और यही संबंध उसे जीवनयापन की प्रेरणा तथा दिशा प्रदान करते हैं जिस प्रकार संपर्क व्यक्ति संबंधों का आधार है ठीक उसी प्रकार संवाद संपर्क का आधारभूत तत्व है। 'संवाद' के माध्यम से ही व्यक्ति परस्पर संपर्क स्थापित करते हैं तथा अपने सबंधों का निर्माण करते हैं।

'संवाद' का दूसरा अर्थ आदान-प्रदान है, यह आदान-प्रदान इच्छा भावों, विचारों, सूचनाओं आदि अनेक तत्वों का हो सकता है। भाषा की उत्पत्ति का प्रमुख कारण संवाद की आवश्यकता है। संवाद, संपर्क तथा सामाजिक संबंधों को विकास प्रक्रिया ने ही भाषा की उत्पत्ति तथा विकास में महत्वपूर्ण रचनात्मक भूमिका का निर्वाह किया है। 'भाषा' के अध्ययन की पृष्ठभूमि में इस प्रक्रिया का अध्ययन अध्येताओं के लिए सहायक तथा महत्वपूर्ण बिन्दु हो सकता है। संवाद संपर्क तथा संबंधों को आधार बनाकर भाषा के संबंध में विभिन्न प्रश्नों के उत्तर भाषा वैज्ञानिकों द्वारा खोजे जाते रहे हैं।

परस्पर संपर्क स्थापन प्रक्रिया में भावों तथा विचारों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया बुनियादी भूमिका का निर्वाह करती है। मनुष्य तथा मनुष्येतर प्राणी संदेशों के आदान-प्रदान के लिए मूल रूप से (स्थूलरूप से वर्गीकृत) चार प्रकार के साधनों का प्रयोग

करते हैं -

● **स्पर्श** -

इस वर्ग में शरीर के किसी अवयव का प्रयोग संदेश के आदान प्रदान के लिए किया जाता है जैसे हाथ दबाना, पैर दबाना, पांव मारना, पीठ थपथपाना आदि। स्पर्श अपने अथवा अन्य व्यक्ति के भीतर (दोनों) का हो सकता है। इसके अन्तर्गत, स्पर्श के द्वारा भावों विचारों का संप्रेषण किया जाता है बाडी लेंग्वेज (शरीर-भाषा) इस वर्ग के अन्तर्गत आती है।

● **प्रतीक तथा संकेत** -

इस वर्ग में संदर्भ के आदान-प्रदान के वे साधन आते हैं जिनके द्वारा प्रतीकात्मक रूप में संदर्भो का आदान-प्रदान किया जाता है, जैसे सफेद कपड़ा लहराना, (युद्ध बंद करने का आह्वान) पान का बीड़ा उठाना, (संकल्प करना) आदि।

● **गंध आदि साधन** –

ये साधन प्राय: पशु पक्षियों द्वारा प्रयोग में लाये जाते हैं। जीव जन्तु विभिन्न प्रकार के संदेशों का आदान-प्रदान करने के लिए विभिन्न प्रकार की गंध... छोड़ते हैं। उदाहरण के लिए सिंह, कुत्ते आदि अपने अधिकार क्षेत्रों का सीमाकंन करने के लिए मूत्र-गंध का प्रयोग करते हैं।

● **ध्वनि** –

इस वर्ग के अन्तर्गत संदेशों के आदान-प्रदान के लिए विभिन्न प्रकार की ध्वनियों का प्रयोग किया जाता है। ध्वनि का प्रयोग मनुष्य तथा पशु पक्षी दोनों द्वारा ही किया जाता है। कुत्ते, मृग, कोयल आदि विभिन्न प्राणी अपनी-अपनी बोली में ध्वनियों के द्वारा विभिन्न प्रकार के संदेशों का संप्रेषण करते हैं। मानव की भाषा भी इसी वर्ग में आती है।

स्थूल रूप से उपरोक्त चार प्रकार के साधन संदेश संप्रेषण-प्रक्रिया के आधारभूत अंग हैं। अंतिम वर्ग के अन्तर्गत समाहित मानव भाषा ही भाषा विज्ञान के अध्ययन का विषय है।

13.1 भाषा से तात्पर्य

चारों साधनों पर स्थूल दृष्टिकोण से विचार किया जाये तो सप्रेषण के माध्यम के रूप में चारों साधन भाषा के अन्तर्गत समायोजित किये जा सकते हैं क्योंकि भाषा मुख्य रूप से संप्रेषण अथवा अभिव्यक्ति का ही साधन अथवा माध्यम है परन्तु भाषा विज्ञान इन चारों साधनों को भाषा के अन्तर्गत समाहित करने का पक्षधर नहीं है क्योंकि इसके भाषा विज्ञान के अनुसार भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम मात्रा न होकर और भी बहुत कुछ है। इसके अतिरिक्त भाषा विज्ञान भाषा को सार्थक ध्वनि परिवार अथवा व्यवस्था के रूप में व्याख्यायित करता है। अत: पूर्व उल्लिखित संप्रेषण साधन भाषा के अर्थ में ग्रहण नहीं किये जाते। आइये भाषा विज्ञान के संदर्भ में भाषा की अवधरणा पर विचार करें।

अपने विस्तृत रूप में भाषा विचार-भाव-विनिमय का साधन मानी जाती है। भाव तथा विचार का आदान-प्रदान करने वाले साधन भाषा की परिभाषा की परिधि में माने जा सकते हैं परतु भाषा विज्ञान की भाषा विषय मान्यता इस अवधारणा से सहमत नहीं है। भाषा विज्ञान की भाषा विषय मान्यता इस अवधारणा से सहमत नहीं है। भाषा विज्ञान भाषा की व्याख्या अंतर्गत 'ध्वयात्मक व्यवस्था' साधन को ही मान्यता देता है। भाषा की परिभाषा देने से पूर्व भाषा शब्द की उत्पत्ति पर विचार किया जाना अनिवार्य है, विद्वानों के अनुसार भाषा शब्द की उत्पत्ति सस्कृत की 'भाष्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है बोलना अथवा कहना- अर्थात जिसे बोला जाए वह भाषा है। इसी प्रकार पाश्चात्य काव्यशास्त्रा के आदि आचार्य प्लेटो ने भी भाषा और विचार का परस्पर संबंध स्थापन करते हुए माना है कि विचार और भाषा में अधिक अंतर नहीं है। उनके अनुसार विचार आत्मा की मूक अथवा अध्वन्यात्मक वार्तालाप है तभी वही जब ध्वन्यात्मक रूप में होने पर प्रकट होती है तो भाषा कहलाने लगती है। यहां कुछ विद्वानों की महत्त्वपूर्ण परिभाषा दृष्टव्य है।

- वी. क्रॉचे – ''Language is articulate, limited, organized sound employed in expression'' भाषा अभिव्यक्ति के लिए नियुक्त स्पष्ट, सीमित तथा सुसंगठित ध्वनि है।
- स्त्रुत्वा –''Language is a system of artibutrary vocal Symbols by means of which members of a Social group co-operated and interact" भाषा यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से किसी समाज के व्यक्ति परस्पर सहयोग तथा अन्त: क्रिया करते हैं।
- जैस्पर्सन – ''The essence of language is human activity-activity on the part of one individual to make himself by another and activity on the part of that other to under stand what was the mind of the first'' भाषा का सार है मानवीय कार्यो के समझने में सहायक बनना समाज के विभिन्न सदस्यों को एक दूसरे के प्रति समझ विकसित करने में सहायता प्रदान करना।

- वेन्द्रिए – ''भाषा एक तरह का चिन्ह है। चिन्ह से आशय उन प्रतीकों से है जिनके माध्यम से मनुष्य अपने विचार दूसरों तक अभिव्यक्ति करता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के अतिरिक्त अनेक भाषा–वैज्ञानिकों ने अपने–अपने ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया है परन्तु इन सभी परिभाषाओं का सारत्व यही है कि भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चरित मूलत: प्राय: यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से किसी भाषा समुदाय के सदस्य परस्पर विचारों का आदान–प्रदान करते हैं। भाषा की यह परिभाषा विज्ञान के क्षेत्र में सर्वमान्य है। उपरोक्त परिभाषा के आधार पर भाषा के निम्नलिखित घटक उघ्द्घाटित होते हैं।

1 **ध्वनि–प्रतीक :** यह भाषा के अनिवार्य घटक हैं। भाषा का निर्माण इनके बिना नहीं हो सकता। ये ध्वनि प्रतीक यादृच्छिक सम्बन्ध सहजात होना अनिवार्य नहीं है। यही कारण है कि भाषा में पर्यायवाची शब्द विद्यमान होते हैं।

2. **व्यवस्था :** भाषा में एक व्यवस्था का होना पूर्ण रूप से अनिवार्य है। निश्चित व्यवस्था के अभाव में भाषा का अस्तित्व संभव नहीं है। व्याकरण इसी व्यवस्था का नाम है।

3. **भाषा समाज :** कोई भी भाषा किसी समुदाय विशेष में ही प्रयुक्त हो सकती है। दूसरे शब्दों में भाषा एक समाज का निर्माण करती है जिसमें वह बोली तथा समझी जाती है। भाषाओं में विविधता तथा मानव समाज में अनेक भाषाओं का प्रचलन इसी नियम के कारण है

4. **विचार विनिमय का साधन :** भाषा का एक महत्वपूर्ण घटक उसका विचार विनिमय का साधन होता है। भाषा का जन्म इसी मानवीय आवश्यकता के कारण हुआ है। भाषा अपने प्रकार्य में विचार विनिमय का साधन बनती है और आवश्यकता तथा परिस्थितियों के अनुरुप अपना रूपान्तरण करती रहती है।

1.3.2 भाषा का अभिलक्षण

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि भाषा यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था है। यादृच्छिकता के कारण भाषा में निरंतर परिवर्तन होता रहता है क्योंकि ध्वनि प्रतीकों का प्रयोग प्रयोगकर्ता की इच्छा की स्थिति पर निर्भर करता है। इसी कारण ससार की समस्त भाषाएं निरंतर विकासशील तथा परिवर्तनशील बनी रहती है और यही गुण इसे जीवंत बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। भाषा की विभिन्न विशेषताओं के आधार पर भाषा के कुछ प्रमुख लक्षण भाषाविज्ञान द्वारा उद्घाटित किए गए हैं जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं–

भाषा पैतृक संपत्ति नहीं है –

सामान्यत: यह घटना प्रचलित है कि भाषा एक पैतृक संपत्ति है जो कि एक भ्रामक अवधारणा है। भाषा विज्ञान भाषा को पैतृक संपति नहीं मानती है। यदि किसी अंग्रेज भाषी समाज के शिशु को हिन्दी भाषा समाज में पालन पोषण किया जाए तो अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करने में अक्षम होगा। यह नियम सभी भाषा समुदाय के सदस्यों पर लागू होता है। यदि किसी मानव शिशु को पशु–समाज में छोड़ दिया जाए तो वह भाषा को सीख नहीं पायेगा। इस प्रकार के अनेक प्रयोग भाषा विज्ञान के क्षेत्रों में किये जा चुके हैं और निष्कर्षत: भाषा वैज्ञानिकों की यह मान्यता स्थापित हो चुकी है कि भाषा पैतृक संपति नहीं है।

भाषा अर्जित संपत्ति है –

उपरोक्त अभिलक्षण के परिणामस्वरूप भाषा वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि भाषा एक अर्जित संपति है अर्थात् भाषा का ज्ञान मनुष्य को अपने परिवेश तथा समाज के कारण होता है। प्रत्येक मनुष्य अपने चारों ओर के परिवेश तथा अन्य मनुष्यों के साथ व्यवहार करके भाषा को अर्जित करता है। यदि कोई व्यक्ति किसी भाषा को सीखना चाहता है तो उसे वा भाषा परिश्रमपूर्वक अभ्यास द्वारा अर्जित करनी पड़ती है। अत: भाषा एक अर्जित संपत्ति है।

भाषा सामाजिक वस्तु है-

चूंकि भाषा को अर्जित करने के लिए व्यक्ति को समाज की सहायता अनिवार्य रूप से लेनी पड़ती है। अतः यह कहा जा सकता है कि भाषा एक सामाजिक वस्तु है। समाज के बिना भाषा का अस्तित्व संभव नहीं है, अर्थात कोई भी व्यक्ति समाज की सहायता के बिना भाषा का ज्ञान अर्जित नहीं कर सकता और कोई भी भाषा अपने समाज के बिना जीवित नहीं रह सकती इसलिए भाषा और समाज का अनिवार्य संबंध है और भाषा अपने अस्तित्व के लिए समाज पर पूर्ण रूप से आश्रित है। अतः भाषा एक सामाजिक वस्तु मानी जाती है।

भाषा का अर्जन अनुकरण के माध्यम से होता है-

चूंकि भाषा एक अर्जित सपत्ति है, उसे अजित करने के लिए निरंतर अभ्यास तथा परिश्रम की आवश्यकता होती है। भाषा को अर्जित करने के लिए मनुष्य को 'सीखने की प्रक्रिया' से गुजरना पड़ता है। और इस सीखने की प्रक्रिया में मनुष्य को समाज के अन्य सदस्यों को अनुकरण करता है और भाषा का अर्जन करता है। एक शिशु अपने परिवार में आरंभिक शब्दों को अनुकरण के द्वारा ग्रहण करता है। यह भाषा-अर्जन का प्राथमिक पाठ है तत्पश्चात् वह समाज की अन्य संस्थाओं (विद्यालय कार्यालय, मित्र, आदि) में अनुकरण के द्वारा भाषा ग्रहण करता है तथा उसे अर्जित संपत्ति भी कह सकते हैं।

भाषा निरंतर परिवर्तनशील है -

भाषा ध्वनियों की एक सार्थक व्यवस्था है और ये ध्वनियां मौखिक रूप में प्रस्पफुटित होती है परन्तु इसे मौखिक रूप को स्थायित्व प्रदान करने के लिए मनुष्य को उसके लिखित रूप का अविष्कार करना पड़ा। परंतु इसके बाबवजूद भाषा के अर्जन का आधार मौखिक अनुकरण ही रहता है। इस कारण भाषा के रुप में निरंतर परिवर्तन की संभावना बनी रहती है। मौखिक प्रयोग के कारण भाषा में निरंतर किसी न किसी प्रकार का परिवर्तन होता रहता है और यह परिवर्तनशील ध्वनिगत भव्यगत, अर्थगत, प्रयोगर्मी अनेक स्तरों पर घटित होने वाली निरंतर प्रक्रिया है। भाषा में परिवर्तन का एक अन्य कारण प्रयोगकर्ता की प्रकृति तथा समय की आवश्यकता भी है। प्रयोगकर्ता अपनी स्थिति के अनुरूप भाषा प्रयोग को बदलते रहते हैं और भाषा अपना रूप बदलती रहती है। भौगोलिक विविधताओं के कारण भी भाषा का स्वरूप बदलता है। ये सभी कारण मिलकर भाषा को निरंतर परिवर्तनशील व्यवस्था का रूप प्रदान करते हैं। साथ ही इस तथ्य का उल्लेख भी यहां अनिवार्य है कि यह परिवर्तनशीलता भाषा को मृत होने से बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह तो करती ही है उसके विकास में भी सहायक बनती है।

भाषा का कोई अंतिम स्वरूप नहीं है -

चिर परिवर्तनशीलता भाषा के विकास तथा परिष्कार के लिए एक अनिवार्य शर्त मानी जाती है। कोई भी भाषा परिवर्तनशीलता के गुण को त्याग देने की स्थिति में जीवित रहने में असमर्थ हो जाती है। परिवर्तनशीलता के गुण के कारण कोई भी भाषा किसी स्थिर रूप में सीमित नहीं रहती बल्कि आवश्यकतानुसार अपना स्वरूप बदलती रहती है। इस कारण इसका कोई अंतिम रूप निर्धारित नहीं किया जा सकता। कोई भी भाषा अपनी क्षेत्रीयता, संरचना, तथा अवस्था में किसी निश्चित तथा अंतिम स्वरूप में व्याख्यायित नहीं की जा सकती।

प्रत्येक भाषा की भौगोलिक सीमा होती है-

भाषा का एक महत्वपूर्ण अभिलक्षण यह भी है कि प्रत्येक भाषा किसी न किसी भौगोलिक क्षेत्र में सीमित प्रभाव रखती है अर्थात उसकी एक निश्चित भौगोलिक सीमा होती है। किसी स्थानीय सीमा के अंदर ही कोई भाषा विशेष अपना प्रभाव रखती है और उसी क्षेत्र में उसके प्रयोगकर्ता होते हैं। यह भौगोलिक सीमा ही भाषा-समाज के निर्माण का कारण बनती है। सीमा विशेष के बाहर किसी अन्य भाषा का प्रभाव क्षेत्र आरंभ हो जाता है।

प्रत्येक भाषा की ऐतिहासिक सीमा होती है –

भौगोलिक सीमा की भांति प्रत्येक भाषा की ऐतिहासिक सीमा भी होती है, अभिप्राय यह है कि प्रत्येक भाषा इतिहास के किसी निश्चित कालखंड से आरंभ होकर किसी कालखंड तक प्रभावी रहती है तथा प्रयोगकर्ताओं द्वारा उसका प्रयोग किया जाता है। निश्चित कालसीमा के पश्चात भाषा में परिवर्तन आ जाता है तब यह अपने पूर्ववर्ती रूप से अलग हो जाती है। उदाहरण के लिए संस्कृत–प्राकृत हिन्दी आदि विभिन्न भाषाएं एक–दूसरे का विकसित तथा पूर्ण परिवर्तित रूप ही है जो एक निश्चित ऐतिहासिक सीमा में अन्य भाषा का रूप ग्रहण करती आई हैं।

प्रत्येक भाषा की अपनी विशिष्ट तथा पृथक संरचना होती है –

भाषा का एक अन्य महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण यह भी है कि प्रत्येक भाषा की अपनी अलग संरचना होती है और यह संरचना अपने आप मे विशिष्ट भी होती है। किन्हीं दो भाषाओं की व्यवस्था बिल्कुल एक जैसी नहीं होती। उनमें शब्द ध्वनि, रूप, वाक्य, अर्थ आदि विभिन्न तत्वों में पर्याप्त अंतर तथा विभेद अवश्य होता है। यह अंतर स्थानीयता क्षेत्रीयता, कालखंड, समाज, प्रयोगकर्ता आदि अनेक कारणों से होता है। साथ ही यह विशिष्ट तथा अलग संरचना भाषा विभेद को स्वतंत्रता, स्वायत्त तथा विशिष्ट पहचान भी प्रदान की है।

भाषा का प्रवाह जटिलता से सरलता की ओर होता है–

प्रत्येक मानव भाषा का प्रवाह सदैव जटिलता से सरलता की ओर होता है अर्थात भाषा निरंतर सरल से सरलतम रूप की ओर बढ़ती रहती है। भाषा में यह परिवर्तन उसके प्रयोगकर्ता की विभिन्न प्रवृत्तियों के कारण होता है, क्योंकि मनुष्य अपने विभिन्न क्रियाकलापों में अधिक से अधिक सुविधा तथा सहजता का समावेश करने के लिए प्रवृत्त तथा प्रयासशील रहता है और उसकी यह मनोवृत्ति भाषा प्रयोग के क्षेत्र में भी सक्रिय रहती है। मनुष्य भाषा का प्रयोग करते समय अधिक से अधिक सुविधाजनक स्थिति में प्रयास करते समय शब्दों, ध्वनियों अथवा वाक्यों में अनेक परिवर्तन करता है जिसके परिणामस्वरूप भाषा की जटिलता अपने आप कम होने लगती है और भाषा का अपेक्षाकृत अधिक सरल रूप आकार ग्रहण करने लगता है। उदाहरण के लिए मनुष्य ने स्कंध के लिए 'कंध', 'ख्याली' के लिए 'थाली', 'दुग्ध' के लिए 'दूध' का प्रयोग उच्चारण की सुविधा की दृष्टि से आरंभ किया और वर्तमान में इन शब्दों के यही रूप प्रचलित हैं। विभिन्न भाषाओं का लोप, शब्दों का लोप आदि भाषा की जटिलता से सरलता की ओर अग्रसर होने की विशेषता के कारण ही घटित होते हैं। संसार की प्रत्येक भाषा में यह घटना घटित होती रहती है। अत: इसे भाषा का एक महत्वपूर्ण अभिलक्षण माना जा सकता है।

भाषा स्थूलता से सूक्ष्मता तथा अप्रौढ़ता से प्रौढ़ता की ओर अग्रसर रहती है–

यदि किसी भाषा का कालक्रमिक अध्ययन किया जाये तो यह तथ्य उद्घाटित होता है कि प्रत्येक भाषा अपनी विकास प्रक्रिया में स्थूलता से सूक्ष्मता तथा अप्रौढ़ता से प्रौढ़ता की और निरंतर अग्रसर रहती है। भाषा विज्ञान के अनुसार ऐसा इसलिए होता है कि भाषा अपनी शैशवस्था में मनुष्य के समस्त भावों तथा विचारों को संप्रेषित करने में सक्षम नहीं होती, अत: इस आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए भाषा के प्रयोगकर्ताओं द्वारा नए–नए भाषिक प्रयोग तथा अविष्कार किये जाते हैं जो भाषा को स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर ले जाते है। इसी प्रकार भाषा की अभिव्यक्ति क्षमता को और अधिक सक्षम तथा उन्नत बनाने के लिए भी उसमें सुधर तथा संस्कार की निरंतर आवश्यकता बनी रहती है जो भाषा को अधिक परिष्कृत रूप प्रदान करने में सहायक होती है। अभिव्यक्ति क्षमता का विस्तार तथा परिष्कार करने की आवश्यकता के कारण प्रत्येक भाषा स्थूलता से सूक्ष्मता तथा अपरिपक्वता से परिपक्वता की ओर निरंतर प्रगतिशील रहती है।

भाषा संयोगात्मकता से वियोगात्मकता की ओर गतिशील रहती है –

संसार की विभिन्न भाषाओं की विकास प्रक्रिया के अध्ययन से यह तथ्य भी उद्घाटित होता है कि भाषाए संयोगात्मकता से वियोगात्मकता की ओर निरंतर गतिशील रहती हैं। 'राम: गच्छति' वाक्य का विकास 'राम जाता है'

में दिखाई देता है। वस्तुतः पहले भाषा वैज्ञानिकों का यह विश्वास था कि भाषा वियोगावस्था से संयोगावस्था की ओर जाती है परन्तु धीरे-धीरे यह मत गलत सिद्ध हो गया। सभी भाषा वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर सहमत हो चुके हैं कि भाषा का प्रवाह संयोगात्मकता से वियोगात्मकता की ओर ही होता है। भाषा का गुण जटिलता से सरलता तथा अपरिपक्वता से परिपक्वता की ओर अग्रसर रहने की प्रवृत्ति के कारण होता है।

भाषा संप्रेषण का सर्वोत्तम माध्यम हैं-

भाषा का यह अभिलक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण है। भाषा संप्रेषण के समस्त साधनों में सर्वोत्तम है। मनुष्य भावों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा के अतिरिक्त अन्य साधनों संकेतों, प्रतीकों, चित्रों का आश्रय भी लेता है। परन्तु सभी साध न फलात्मक होते हुए भी पूर्ण संप्रेषण का पूर्ण तथा व्यस्थित साधन स्वीकार की जाती हैं। एकरुपता की दृष्टि से भी भाषा भाव संप्रेषण का एक सर्वश्रेष्ठ साधन मानी जाती है क्योंकि अन्य अभिव्यक्ति साधनों की तुलना में भाषा में अधि क एकरुपता होती है। इसके अतिरिक्त यह बात भी महत्वपूर्ण है कि अन्य साधनों को कभी-कभी अभिव्यक्ति की स्पष्टता के लिए भाषा का सहारा लेना पड़ता है। अन्य संप्रेषण पद्धतियों की तुलना में भाषा के प्रतीक अधिक सुस्पष्ट तथा अर्थनिष्ठ होते हैं। यही कारण है कि भाषा को संप्रेषण का सर्वोत्तम साधन माना जाता है।

स्थिरीकरण तथा मानकीकरण से प्रभावित -

संसार की प्रायः सभी भाषाओं में अनेक विरोध घटक देखे जाते हैं इनमें से एक है - विविधता और परिवर्तन तथा एकता और स्थितीकरण। ये दोनों तत्व स्थूल दृष्टि से देखने पर एक दूसरे के विरोध प्रतीत होते हैं। परन्तु भाषा विशेष के विकास में इन दोनों का ही समान महत्व परिलक्षित होता है। परिवर्तन की अनिवार्यता के कारण ही भाषा का विकास होता है परन्तु यदि यह परिवर्तन इतना अधिक हो तो भाषा को समझना तथा प्रयोग करना मनुष्य के लिए असंभव हो जायेगा इसीलिए भाषा के परिवर्तन को रचनात्मक तथा प्रयोग सापेक्ष बनाने के लिए उसका मानकीकरण किया जाना अपरिहार्य हो जाता है जो भाषा को एक प्रकार की स्थिरता भी प्रदान करता है। यह मानकीकरण सिद्धात और व्यवहारण दोनों स्तरों पर ही घटित होता है। इस प्रकार से भाषा अपनी परिवर्तनीयता के साथ-साथ स्थितीकरण के गुण को भी बनाये रखता है जो उसके विकास को सुसंगत रूप प्रदान करता है।

भाषा सर्वव्यापक है -

सर्वव्यापकता भाषा का अत्यंत महत्वपूर्ण अभिलक्षण तथा गुण है। यह भाषा का प्राकृतिक तथा शाश्वत गुण माना जा सकता है। मनुष्य के लौकिक-अलौकिक आन्तरिक-बाहय, वैयक्ति-सामाजिक, चिन्तन-अभिव्यंजना आदि समस्त क्रिया व्यापारों में भाषा एक अनिवार्य अंग बनकर सक्रिय रहती है जो उसकी सर्वव्यापकता का प्रमाण है। मनुष्य समाज की समस्त गतिविधियों में भाषा की उपस्थिति अनिवार्य है और उसकी अनुपस्थिति में मानव समाज का विकास चक्र रुक जाने की पूरी पूरी संभावना दिखाई देती है। भाषा की यही अनिवार्यता उसकी सर्वव्यापकता को पुष्ट तथा प्रभावित करती है।

नैसर्गिक तथा अविच्छिन्न प्रवाह -

भाषा एक नदी के समान है जो निरंतर प्रवाहमान है। 'भाषा बहता नीर' उक्ति भाषा के नैसर्गिक तथा निरंतर प्रवाह की ओर संकेत करती है। यदि किसी भाषा का प्रवाह रुक जाता है तो उसका विकास भी रुक जाता है, भाषा अपने इसी प्रवाह के कारण अपने आपको शुद्ध करते हुए अपना विस्तार करती है। किसी नदी के समान अनेक शब्दों, ध्वनियों को आत्मसात् करके भाषा अपना विराट रूप प्राप्त करती है जो उसके प्रयोगकर्ताओं को जीवन प्रदान करता है। किसी भी भाषा के सुविकास के लिए उसका निरंतर नैसर्गिक तथा आविच्छिन्न प्रवाह बने रहना नितांत अनिवार्य है।

1.3.3 भाषा और वाक्

वाक् शब्द के लिए 'बोली' संज्ञा का भी प्रयोग किया जाता है अंग्रेजी में इसके लिए शब्द का प्रयोग किया जाता है। प्रायः सामान्य रूप से भाषा और बोली को समानार्थी ही समझ लिया जाता है जो कि भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण

से सही नहीं है। भाषा और बोली (वाक्) पर्याप्त अंतर है। आइये सर्वप्रथम बोली (वाक्) की अवधरणा पर विचार करें–

बोली किसी भाषा के एक ऐसे सीमित रूप को कहा जाता है जो ध्वनि, रूप, वाक्य गठन, अर्थ, शब्द–समूह तथा मुहावरें आदि की दृष्टि से उस भाषा के परिनिष्ठित तथा अन्य रूपों के कुछ भिन्न होता है। यह भिन्न इस रुप में होती है कि अन्य रूपों के बोलने वाले इसे समझ न सकें। इसके साथ ही इसके अपने क्षेत्र में बोलनें वालों के उच्चारण, रूप रचना, वाक्य–गठन आदि विभिन्न तत्वों में कोई बहुत स्पष्टता तथा भिन्नता नहीं होती है। एक ही भाषा के अंतर्गत अनेक बोलियां हो सकती हैं। इस दृष्टि से भाषा विज्ञान में बोली के लिए विभाषा, उपभाषा तथा प्रांतीय भाषा आदि शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है।

बोली का एक अन्य रूप यह भी है कि बोली अपने एक रूप में किसी भाषा विशेष का शैली–भेद न होकर एक स्वतंत्रता अभिव्यंजना पद्धति होती है। अर्थात वह किसी स्थान विशेष के लोगों की प्राकृतिक (मातृ) भाषा होती है और किसी भाषा से उसका कोई संबंध नहीं होता परन्तु धीरे–धीरे वही बोली स्थिर और मानक रूप ग्रहण करके भाषा का रूप ग्रहण कर लेती है। इस रूप में बोली अनेक व्यक्ति बोलियों का समुच्चय रूप होती है जो एक बोली समाज की स्थापना करती है। इस प्रकार से बोली अपने इस रूप में एक स्थानीय भाषा की भूमिका में रहती है और अपने प्रयोगकर्ताओं के बीच संपर्क का कार्य करती है। यदि इस सिद्धांत के आधार पर देखा जाये तो खड़ी बोली जो कभी बोली के रूप में ही मान्य थी आज ब्रज जैसी प्राचीनकालीन भाषाएं वर्तमान में एक बोली के रूप में ही स्वीकार की जाती हैं।

इन परिस्थितियों के आधार पर भाषा और बोली का स्पष्ट अंतर अथवा विभाजन करना अत्यंत जटिल कार्य है क्योंकि भाषा से बोली तथा बोली से भाषा बनने की प्रक्रिया अत्यंत जटिल तथा विचित्र है। अतः बोली और भाषा के बीच भेद कर पाना शत–प्रतिशत रूप से संभव नहीं है। परन्तु फिर भी शैली तथा प्रयोग के आधार पर भाषा तथा बोली में मोटे तौर पर भेद किया जा सकता है। इस भेद को निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. कुछ विद्वानों ने भाषा और बोली का अंतर क्षेत्रीयता के आधार पर माना है। उनकी मान्यता है कि बोली का क्षेत्र भाषा की अपेक्षा सीमित होता है जबकि भाषा का क्षेत्र अत्यंत व्यापक तथा विस्तृत होता है। एक भाषा के अन्तर्गत अनेक क्षेत्रीय बोलियां हो सकती हैं। परन्तु एक बोली की अनेक भाषाएं नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त भौगोलिक दृष्टि से भी बोली भाषा की अपेक्षा, स्थानीय अथवा क्षेत्रीय होती है। एक क्षेत्र के बाहर बोली का प्रयोग नहीं किया जाता।
2. भाषा और बोली के अंतर का एक आधार बोध गम्यता अथवा संप्रेषणीयता को माना जाता है। इस दृष्टि से भाषा के संप्रेषण तथा बोधगम्यता का क्षेत्र अत्यंत व्यापक तथा विस्तृत होता है जबकि इसके विपरीत बोली की बोधगम्यता सूक्ष्म व्यापकता तथा विभिन्न विषयों, भावों, विचारों तथा अवधारणाओं की अभिव्यत्ति संभव है परन्तु बोली में यह गुण नहीं है उसे अपनी अभिव्यक्ति की क्षमता को बढ़ाने के लिए भाषा का सहारा लेना पड़ता है।
3. भाषा का प्रयोग साहित्य, शिक्षा, प्रशासन तथा समाज के विभिन्न कार्यों में किया जाता है लेकिन बोली का प्रयोग इन सभी क्षेत्रों में (साहित्य को छोड़कर) नहीं किया जा सकता। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भाषा में पर्याप्त शब्द, व्याकरण, मानकता, लिपि, सुबोधता तथा एकरूपता जैसे तत्व विद्यमान रहते हैं जबकि बोली में इन तत्वों के अभाव के कारण यह क्षमता नहीं होती।
4. एक भाषा के अन्तर्गत अनेक बोलियां हो सकती हैं परन्तु बोली के अन्तर्गत भाषा नहीं हो सकती।
5. भाषा का रूप मानक होता है। उसका व्याकरण स्थित, एकरुप, परिनिष्ठित एवं व्यवस्थित होता है परन्तु बोली में वे सभी तत्व नहीं होते और इस कारण बोली का कोई मानक रूप नहीं होता।

6. भाषा का प्रयोग औपचारिक तथा अनौपचारिक (दोनों) संदर्भों में किया जा सकता है। भाषा किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति, परिवेश, पृष्ठभूमि, शिक्षा आदि की सूचक होती है परंतु बोली का प्रयोग औपचारिक संदर्भों में नहीं किया जा सकता केवल अनौपचारिक संदर्भों में ही इसका प्रयोग किया जाता है। इस आधार पर भाषा शिष्टाचार की परिचायक होती है जबकि बोली आत्मीयता की अभिव्यक्ति होती है।
7. भाषा की अपनी व्याकरण होती है उसके प्रयोग के नियम निर्धारित होते है जबकि बोली व्याकरण के बंधनों से मुक्त होती है।
8. भाषा ज्ञान विज्ञान की भाषा होती है परन्तु बोली ज्ञान विज्ञान नहीं होती है। उपरोक्त अंतर को निम्न तालिका के रुप में भी प्रदर्शित किया जा सकता है।

भाषा मानक होती है।

बोली मानक नहीं होती।

भाषा व्याकरण-व्यवस्था होती है।

बोली व्याकरण नहीं होता भाषा एकरूपता होती है।

बोली एकरुपता का अभाव होता है।

भाषा ज्ञान-विज्ञान की भाषा होती है।

बोली ज्ञान विज्ञान की अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं बनती।

भाषा शिष्टाचार तथा औपचारिक संदर्भों में प्रयुक्त होती है।

बोली अनौपचारिक तथा व्यक्तिगत संदर्भों में प्रयुक्त होती है।

भाषा प्रयोगकर्ता की सामाजिक प्रतिष्ठा की सूचक

बोली प्रयोगकर्ताओं की आत्मीयता की अभिव्यंजक

भाषा इसके अन्तर्गत अनेक बोलियां हो सकती हैं

बोली इसके अन्तर्गत अनेक भाषाएं नहीं हो सकती

सार रूप में भाषा और बोली एक दूसरे की पूरक है। दोनों ही परस्पर सहयोग के द्वारा एक दूसरे के विकास तथा उत्थान में सहायक बनती है। दोनों के बीच माँ-बेटी का सब है और दोनों ही इन दोनों रूपों में अपनी भूमिकाएं परस्पर बदलती रहती हैं। कभी बोली भाषा बन जाती है तो कभी भाषा बोली। दोनों एक दूसरे की विरोध नहीं अपितु सहायक हैं।

1.3.4 भाषा और वाक् में अन्तर :

भाषा के इन रूपों के सिद्धांत भी स्थापना मूल रूप से सस्यूर ने की थी। उन्होंने इन पर संश्लिष्ट रूप से विचार किया है। सस्यूर के अतिरिक्त त्राुबेत्स्कॉय, चॉमस्की आदि ने भी इस पक्ष पर विचार किया। इस सिद्धांत के अनुसार भाषा और वाक् में निम्नलिखित अंतर है

1. भाषा एक व्यवस्था है जो किसी भाषा विशेष के भाषियों के मस्तिष्क में भाषा-सामर्थ्य अथवा भाषा क्षमता के रूप में होती है जबकि वाक् उस भाषा समाज के सदस्य द्वारा उस भाषा का व्यवहत रूप है। दूसरे शब्दों में यह भाषा का प्रायोगिक रूप है।
2. भाषा की सत्ता मानसिक होती है जबकि वाक की सत्ता भौतिक होती है तथा उच्चारण में होती है।
3. भाषा अमूर्त रूप में होती है जबकि वाक् मूर्त रूप में होता है।

4. भाषा की प्रकृति सामाजिक होती है और वह व्यक्ति-निरपेक्षता मनुष्यत्व से निर्मित होती है जबकि वाक् वैयक्ति और व्यक्ति-निरपेक्षता होती है।

5. वाक् भाषा पर आधरित होता है जबकि भाषा का ज्ञान वाक् के माध्यम से होता है।

1.10 स्वयं आकलन के प्रश्न :

1 भाषा की उत्पत्ति संस्कृत की किस धातु से हुई है ?

2 अष्टाध्यायी के रचयिता कौन है ?

3 ''भाषा' उसे कहते हैं जो बोली और सुनी जाती है और बोलना भी पशु-पक्षियों का नहीं, नहीं, गूंगे मनुष्यों का भी नहीं, केवल बोल सकने वाले मनुष्यों का।'' यह परिभाषा किस विद्वान की है ?

1.4 सारांश

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि भाषा विज्ञान के अन्तर्गत भाषा से तात्पर्य ध्वनि प्रतीकों की उस व्यवस्था से है जो मूलतः यादृच्छिक होते हैं तथा किसी भाषा समाज मे विचार विनिमय का साधन बनते हैं। संसार की प्रत्येक भाषा परिवर्तनशीलता, सामाजिकता, अनुकरणात्मकता, आदि विभिन्न अभिलक्षणों से युत्तफ होती है। यदि कोई भाषा जीवित तथा विकासोन्मुख है तो उसमें इन अभिलक्षणों का होना आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य भी है। भाषा और वाक् भाषा का साकार तथा मूर्त रूप है, दोनों, एक दूसरे के पूरक तथा अविभाज्य रूप हैं।

1.5 कठिन शब्दावली

(1) व्यतिरेक - विरोध ।

(2) कृष्टि किसान ।

(3) कारिन्दो - कर्मचारी ।

(4) यादृच्छिकता - जैसी इच्छा या माना हुआ ।

1.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर :

1. **उत्तर** - भाष ।

2. **उत्तर** - पाणिनी ।

3. **उत्तर** - डॉ. भोलानाथ तिवारी ।

1.7 सन्दर्भित पुस्तकें :

1. भोलानाथ तिवारी, भाषाविज्ञान, किताब महल, इलाहाबाद।
2. तिलक सिंह, नवीन भाषाविज्ञान, प्रकाशन संस्थान दिल्ली।

1.8 सात्रिक प्रश्न

1. भाषा के स्वरूप को स्पष्ट करें।
2. भाषा की विशेषताओं को स्पष्ट करें।

*****

इकाई - 2

भाषाविज्ञान : स्वरूप और प्रकार

संरचना

2.1 भूमिका

2.2 उद्देश्य

2.3 भाषाविज्ञान : स्वरूप और प्रकार

2.3.1 भाषाविज्ञान के विभिन्न प्रकार

2.3.2 भाषा विज्ञान के अध्ययन की दिशाएं

स्वयं आकलन के प्रश्न

2.4 सारांश

2.5 कठिन शब्दावली

2.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उतर

2.7 संदर्भित पुस्तकें

2.8 सात्रिक प्रश्न

2.1 भूमिका

भाषाविज्ञान भाषा के अध्ययन की वह शाखा है जिसमें भाषा की उत्पत्ति, स्वरूप, विकास आदि का वैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है। भाषाविज्ञान, भाषा के स्वरूप, अर्थ और सन्दर्भ का विश्लेषण करता है। भाषा के दस्तावेजीकरण और विवेचन का सबसे प्राचीन कार्य छठी शताब्दी के महान भारतीय वैयाकरण पाणिनि ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ अष्टाध्यायी में किया है।

2.2 उद्देश्य

1. भाषा विज्ञान की परिभाषा और अभिलक्षण क्या है?
2. भाषा विज्ञान के अध्ययन की दिशाएं क्या है?
3. भाषिक व्यवहार तथा भाषा विज्ञान क्या है?

2.3 भाषाविज्ञान स्वरूप और प्रकार

भाषा और भाषाविज्ञान भाषा विज्ञान भाषा के अध्ययन विश्लेषण का शास्त्र है। भाषा की संरचना, प्रकृति, प्रकार्यों आदि का विश्लेषण करना भाषा विज्ञान के अन्तर्गत आता है। भाषा विज्ञान तथा भाषा के अर्न्तसंबंधों को निम्नलिखित रूप से विश्लेषित किया जा सकता है।

1. भाषाविज्ञान भाषा विशेष के सम्बन्ध में मनुष्य की विविध प्रकार की जिज्ञासाओं का समाधान प्रस्तुत करने में सहायक है।
2. भाषाविज्ञान के माध्यम से किसी समाज की भाषा को आधार बनाकर काल विशेष की संस्कृति का अध्ययन किया जा सकता है।
3. किसी जाति, समाज आदि के जीवन तथा सामाजिक मूल्यों के अनुसंधान में भाषा एक महत्वपूर्ण स्रोत होती है और इस प्रक्रिया में भाषा विज्ञान विशेष रूप से सहायक बनता है।
4. साहित्य के अर्थ, विकास आदि विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन करने में भाषा विज्ञान की सहायता अनिवार्य है।
5. मानव समाज के प्रयोग हेतु कृत्रिम भाषाओं के विकास में भाषा विज्ञान उपयोगी सिद्ध होता है।
6. भाषा शिक्षण तथा अर्जन में भाषा विज्ञान के सिद्धान्त सहायता प्रदान करते हैं।
7. एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद के लिए भाषा विज्ञान की रचनात्मक भूमिका असंदिग्ध है क्योंकि भाषा विज्ञान किसी भी भाषा की आंतरिक तथा बाह्य संरचना को समझने में सहायता करता है।
8. किसी भाषा विशेष की लिपि, व्याकरण, कोश आदि के निर्माण, विकास अथवा परिष्कार में भाषा विज्ञान की सहायता अनिवार्य रूप से ली जाती है।
9. भाषा, लिपि आदि में परिवर्तन तथा सुधार करने में भी भाषा विज्ञान की पद्धतियां सहायक होती हैं।
10. भाषा विज्ञान की विभिन्न पद्धतियों का प्रयोग वाक चिकित्सा के क्षेत्रों में किया जाता है। श्रवणदोष, हकलाहट, तुतलाहट अशुद्ध उच्चारण आदि विभिन्न कमियों के निराकरण में भाषा विज्ञान के सिद्धांतों का प्रयोग किया जाता है।

संक्षेप में भाषा के स्वरूप, उसकी प्रकृति प्रकार्यों तथा अन्य पक्षों को समझने में भाषा विज्ञान हमारी विशेष रूप से सहायता करता है। भाषा को समझने तथा उसका कौशलपूर्ण प्रयोग करने के लिए भाषा विज्ञान की विशेष तथा रचनात्मक भूमिका रहती है।

2.3.1 भाषाविज्ञान के विभिन्न प्रकार :

भाषा विज्ञान के लिए अनेक शब्दों का प्रचलन रहा है इनमें (Comparative Grammar) शब्द विशेष रूप से उल्लेखनीय है इस मत का आधर यह रहा है कि भाषा विज्ञान तथा व्याकरण में कोई विशेष अंतर नहीं है परन्तु भाषा विज्ञान केवल व्याकरण अथवा तुलनात्मक व्याकरण ही नहीं हैं। व्याकरण के साथ-साथ अध्ययन-विश्लेषण भी करता है। अतः यह शब्द भाषा-विज्ञान के लिए अनुपयुक्त नहीं है। कुछ लोग भाषा विज्ञान के स्थान पर कंपेरेटिव फिलोलोजी, पिफलोलॉजी, ग्लाटोलॉजी, 'साइंस ऑपफ लैंग्वेज' आदि शब्दों का प्रयोग भी करते हैं परन्तु भाषा विज्ञान लिंग्विस्टिक शब्द ही सर्वाधिक मान्य है।

लिग्विस्टिक शब्द का विकास लैटिन भाषा के Lingva (लिंग्वा) शब्द से हुआ है, जिसका अर्थ है 'जिह्वा'। भाषा विज्ञान के अर्थ में यह शब्द फ्रांस में प्रचलित हुआ और अंग्रेजी भाषा में आया। मूलतः भाषा विज्ञान से अभिप्रायः भाषा के अध्ययन की वैज्ञानिक पद्धति से है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि वह विज्ञान जो भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन विश्लेषण करता है भाषा विज्ञान कहलाता है।

भाषाविज्ञान के प्रकार

आधुनिक समय में प्रत्येक विषय की सीमाओं तथा क्षमताओं का असीमित विस्तार हो चुका है इसलिए प्रत्येक क्षेत्र अध्ययन की दृष्टि से गहन दृष्टि, विस्तृत अध्ययन तथा विशेषज्ञता की अपेक्षा करता है। भाषा भी इस तथ्य का अपवाद नहीं है। भाषा की प्रकृति तथा प्रकार्यों को समझने तथा उनका विश्लेषण करने के लिए भाषा विज्ञान को इसके विभिन्न तत्वों का सूक्ष्म तथा विस्तृत अध्ययन करना पड़ता है। भाषा के अध्ययन की प्रमुख पद्धतियों के आधार पर भाषा विज्ञान की कुछ विशेष शाखाएं इस प्रकार हैं।

- **एककालिक भाषा विज्ञान Synchronic**-

इस शाखा के अन्तर्गत किसी भाषा का एक निश्चित काल सीमा के आधार पर अध्ययन-विश्लेषण किया जाता है। यह पद्धति बहुकालिक अध्ययन के विपरीत है। इसके अन्तर्गत काल के किसी बिन्दु विशेष को केन्द्र में रखकर भाषा का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है। जैसे साठ के दशक में हिन्दी। बीसवीं शताब्दी में फ्रांसीसी भाषा की विशेषताएं आदि। इस पद्धति से भाषा विशेष की किसी निश्चित काल सीमा में स्थिति को समझने में सहायता मिलती है। इस पद्धति को 'वर्णनात्मक' 'भाषा विज्ञान' भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत किसी भाषा की ध्वनि, रूप वाक्य, अर्थ आदि तत्वों का एककालिक अध्ययन किया जाता है। पश्चिमी देशों में इसे संरचना तक भाषा विज्ञान भी माना जाने लगा है तथा इसके अनेक संप्रदाय भी विकसित हो गए हैं। दिन प्रतिदिन इसकी महत्ता बढ़ती ही जा रही है। यह भाषा विज्ञान की एक महत्वपूर्ण पद्धति है।

- **बहुकालिक भाषा विज्ञान**-

इसे कालक्रमिक भाषा विज्ञान व ऐतिहासिक भाषा विज्ञान भी कहा जाता है। इस पद्धति के अंतर्गत किसी भाषा विशेष का अनेक काल बिंदुओं को आधार बनाकर अध्ययन-विश्लेषण किया जाता है। इसके अतर्गत किसी भाषा के अनेक कालखंडों के परिप्रेक्ष्य में उसके विकास चक्र परिवर्तन, महत्व आदि विभिन्न पक्षों पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। किसी भाषा के इतिहास और विकास की विभिन्न दशाओं तथा दिशाओं को रेखांकित करने के लिए इस भाषा विज्ञान का विशेष महत्व है।

- **तुलनात्मक भाषा विज्ञान**

भाषा विज्ञान की इस शाखा के अतर्गत दो या अधिक भाषाओं की परस्पर तुलना की जाती है। तुलनात्मक भाषा विज्ञान प्रायः ऐतिहासिक होता है। विभिन्न भाषाओं में परस्पर सबंध स्थापना तथा निर्धारण इस शाखा के अंतर्गत किया जाता है। संसार की विभिन्न भाषाओं का परिवारिक वर्गीकरण इसी शाखा की देन है। ऐतिहासिक भाषा विज्ञान तुलनात्मक भाषा विज्ञान के बिना किसी भाषा के अध्ययन में असमर्थ है। वास्तव में आधुनिक भाषा विज्ञान का जन्म

तुलनात्मक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन का ही परिणाम माना जाता है। 19वीं शताब्दी का काल तुलनात्मक भाषाविज्ञान का स्वर्णयुग माना जाता है। इस काल में ग्रिम रास्क, लाइरवर, कार्लब्रुगमैन, डेलबुक आदि भाषा वैज्ञानिकों ने अनेक मौलिक पद्धतियों का अविष्कार किया। यह तथ्य अत्यंक रोचक है कि पश्चिम में आरंभ में विभिन्न भाषाओं की तुलना का आधार संस्कृत को बनाया गया था। तुलनात्मक भाषा विज्ञान को अपने अनेक निष्कर्षों की स्थापना में ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की सहायता लेनी पड़ती है। क्योंकि इस पति की एक सीमा यह भी है कि इसके द्वारा भाषा परिवर्तन के काल का निश्चित काल निर्णय नहीं किया जा सकता।

• व्यतिरेकी भाषा विज्ञान -

'व्यतिरेक' का शाब्दिक अर्थ है विरोध। भाषा विज्ञान की इस शाखा में दो या अधिक भाषाओं के विभिन्न तत्वों की तुलना द्वारा उनके विभिन्न विरोधी तत्वों अथवा विशेषताओं को ज्ञात किया जाता है और इन निष्कर्षों का प्रयोग भाषा शिक्षण तथा अनुवाद के लिए किया जाता है। भूमंडलीकरण तथा संचार युग में जब विभिन्न भाषा समाज एक दूसरे के संपर्क में आ रहे हैं। इस शाखा की आवश्यकता दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। व्यतिरकी भाषाविज्ञान प्राय एककालिक होता है क्योंकि इसमें दो या अधिक भाषाओं का अंतर किसी निश्चित कालबिंदु पर ज्ञात किया जाता है।

• अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान -

अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान भाषा विज्ञान का व्यवहारिक विज्ञान है अर्थात भाषा विज्ञान के विभिन्न सिद्धान्तों, पद्धतियों तथा निष्कर्षों का व्यवहारिक रूप प्रदान करने की पद्धति इस भाषा विज्ञान की विशेषता है। इस पद्धति का लक्ष्य है भाषा विज्ञान की विभिन्न पद्धतियों को व्यवहार में लाने की व्यवस्था करना, विभिन्न भाषाओं का अध्ययन, भाषा सर्वेक्षण, वाक् चिकित्सा, कोशनिर्माण, यंत्रों का परिचय तथा अनुप्रयोग का अध्ययन विश्लेषण इस शाखा के अन्तर्गत आता है। भाषा विज्ञान की इस शाखा के अन्तर्गत निम्नलिखित उपशाखा आती है–

1. शैली विज्ञान
2 अनुवाद विज्ञान
3. भाषा शिक्षण विज्ञान
4. कोश विज्ञान
5. मनोभाषा विज्ञान
6. समाजभाषा विज्ञान

संक्षेप में वर्तमान समय की आवश्यकता तथा अपेक्षा के अनुसार अनुसार जहां एक ओर भाषा का दायरा तथा कार्यक्षेत्र विस्तृत हो रहा है। भाषा विज्ञान भी उसी आवश्यकता के अनुसार अपने अध्ययन के क्षेत्र तथा पद्धतियों का विकास तथा विस्तार कर रहा है। भाषा की तरह भाषा विज्ञान भी निरंतर विकास के पथ पर अग्रसर है।

2.3.2 भाषा विज्ञान के अध्ययन की दिशाएं

- **भाषा के अध्ययन का अर्थ है** - भाषा के उन मूलभूत तत्वों अथवा इकाइयों का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करना जिनसे भाषा विशेष का निर्माण हुआ है। भाषा विज्ञान के अंतर्गत भाषा का अध्ययन करते समय किसी निश्चित दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर भाषा का अध्ययन किया जाता है। भाषा विज्ञान के अध्ययन की तुलनात्मक, वर्णनात्मक, संरचनात्मक, प्रायोगिक आदि अनेक दिखाए उपलब्ध होती हैं। किन्तु आधुनिक शोध के परिणामस्वरूप भाषा के अध्ययन की कुछ नयी दिशाओं का भी विकास हुआ है। जैसे वर्णनात्मक ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक।
- **वर्णनात्मक**– वर्णनात्मक भाषा विज्ञान में किसी एक भाषा का किसी काल विशेष से सम्बद्ध स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है। इसमें भाषा के उस काल के स्वरूप का विवेचन और विश्लेषण किया जाता है। यह भाषा

वर्तमान काल की हो सकती है। यदि उसका प्राचीन साहित्य विद्यमान है तो यह भूतकाल की भी हो सकती है। जैसे संस्कृत, ग्रीक, लैटिन और अंग्रेजी आदि का प्राचीन साहित्य उपलब्ध है। वर्णनात्मक भाषा विज्ञान को दूसरे शब्दों में व्याकरण कहा जाता है क्योंकि वर्णनात्मक भाषा विज्ञान का संबंध उसके विद्यमान स्तरूप से है।

भाषा विज्ञान का प्रमुख अंग वर्णनात्मक भाषा विज्ञान को माना जाता है। इसको आधार मानकर ही ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषा-विज्ञान आगे बढ़ते हैं। वर्तमान में यह भाषा-विज्ञान के एक स्वतंत्र अंग के रूप में विकसित होने लगा है। इस प्रणाली के पक्षपाती भाषा के केवल उच्चारित रूप का ही अध्ययन आवश्यक समझते हैं। वे अर्थ विज्ञान को भाषा विज्ञान में कोई स्थान नहीं देना चाहते हैं। वे ध्वनि पद और वाक्य तक ही इसकी सीमा निर्धारित करना चाहते हैं।

- **ऐतिहासिक**

ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान में क्रमिक विकास का इतिहास प्रस्तुत किया जाता है। भाषा का आदि रूप क्या था? उसमें परिवर्तन होते हुए मध्ययुगीन रूप क्या था? और उसका वर्तमान रूप क्या है ? इसमें कम से कम दो कालों का क्रमिक विकास दिखाना आवश्यक है। उदाहरणस्वरूप वैदिक संस्कृत से लेकर पालि प्राकृत, अपभ्रंश आदि के रूप में परिवर्तित होते हुए वर्तमान हिंदी आदि भाषाओं का क्रमिक विकास इस ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान का विषय होगा। ध्वनि पद और वाक्या में किस प्रकार क्रमशः विकार आया ? किस युग में उसका क्या स्वरूप हुआ और उसका वर्तमान विकसित रूप क्या हुआ? यह ऐतिहासिक भाषा विज्ञान बताता है। इस अध्ययन में वर्णनात्मक भाषा विज्ञान का पूर्ण उपयोग होता है। वर्णनात्मक भाषा विज्ञान एक कालिक था। समकालिक है। ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान कालक्रमिक है। इसमें विभिन्न कालों के रूपों का अध्ययन किया जाता है।

- **तुलनात्मक**

तुलनात्मक भाषा विज्ञान में दो या दो से अधिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। यह तुलना किसी एक काल-विशेष या अनेक कालों के आधार पर की जाती है। इसमें भाषा की ध्वनियां पद और वाक्य सभी दृष्टि से तुलना की जाती है। इसमें वर्णनात्मक और ऐतिहासिक प्रणालियों का भी अंतर्भाव होता है। वर्णनात्मक अंश के आधार पर ही दो या अनेक भाषाओं की तुलना की जाती है। इस अध्ययन में ऐतिहासिक प्रणाली भी विभिन्न कालों के रूपों का स्वरूप बताकर सहयोग प्रदान करती है। इस प्रकार तुलनात्मक भाषा विज्ञान में वर्णनात्मक और ऐतिहासिक दोनों प्रणालियों का पूर्ण सहयोग रहता है। तुलनात्मक भाषा-विज्ञान भाषा-विज्ञान की महत्वपूर्ण शाखा है। संस्कृत लैटिन और ग्रीक की तुलना ने ही इस तुलनात्मक भाषा-विज्ञान को जन्म दिया है। इसके ही आघर पर तुलनात्मक देवशास्त्र, तुलनात्मक विश्व-संस्कृति आदि अनेक शाखाएं प्रचलित हुई है।

स्वयं आकलन के प्रश्न

1. अष्टाध्यायी के रचयिता कौन हैं ?
2. भाषा रहस्य के रचयिता कौन है ?
3. स्वन विज्ञान की कितनी शाखाएं हैं ?
4. स्वनिम शब्द की उत्पति किस धतु से व्युत्पन्न है ?

2.4 सारांश

भाषा के सैद्धांतिक पक्ष का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि भाषा में ध्वनि संकेतों का विशेष महत्व होता है। ये वाक् प्रतीक रूढ एवं परंपरागत होते हैं और आवश्यकतानुसार नए भी बनाए जा सकते हैं। आज मानव की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है। मानव भाषा के अभिलक्षण ही उसे अन्य सभी प्राणियों की भाषा से अलग करते हैं।

2.5 कठिन शब्द

व्यतिरेक - विरोध। कृष्टि - किसान। कारिन्दो - कर्मचारी। यादृच्छिकता - जैसी इच्छा या माना हुआ। शाखाएं - अंग।

2.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. पाणिनी।
2. श्यामसुंदर दास।
3. औच्चारिकी, संचारिकी श्रौतिकी।
4. स्वन।

2.7 संदर्भित पुस्तकें

1. डॉ. भोलानाथ तिवारी, भाषाविज्ञान।
2. डॉ. मुकेश अग्रवाल, हिंदी भाषा की संरचना।
3. डॉ. कपिल द्विवेदी, भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र।

2.8 सात्रिक प्रश्न

1. भाषा अध्ययन की विभिन्न दिशाओं की समीक्षा कीजिए ?
2. भाषा लॉग और वाक् परोल का परिचय लिखिए ?

3 भाषा को परिभाषित करते हुए उसके विविध रूपों का परिचय दीजिए ?

*****

इकाई–3
स्वन प्रक्रिया : स्वरूप

संरचना

3.1 भूमिका
3.2 उद्देश्य
3.3 स्वन प्रक्रिया : स्वरूप
3.3.1 स्वनविज्ञान : शाखाएं और प्रकार्य
3.3.2 स्वन गुण
स्वयं आकलन के प्रश्न
3.4 सारांश
3.5 कठिन शब्दावली
3.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उतर
3.7 संदर्भित पुस्तकें
3.8 सात्रिक प्रश्न

3.1 भूमिकाः

पिछली इकाई में हमने भाषा और भाषा विज्ञान का अध्ययन किया जिससे हमें भाषा के स्वरूप प्रकार व अभिलक्षणों का ज्ञान हुआ, वहीं इस इकाई में हम स्वन प्रक्रिया, स्वनिमों का परिवर्तन, भेद, विश्लेषण व रूपिम की अवधरणा व भेदों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

3.2 उद्देश्यः

1. स्वन क्या है, स्वनों का वर्गीकरण किस प्रकार किया जाता है ?

2 स्वनिक परिवर्तन कैसे होता है ?

3. रूपिम की अवधरणा और भेद क्या है ?

4. स्वन प्रक्रिया क्या होती है ?

3.3 स्वन प्रक्रिया

स्वन प्रक्रिया का स्वरूप भाषा-विज्ञान में 'स्वन' शब्द के लिए ध्वनि शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। इस शब्द का विकास ग्रीक शब्द फोन से हुआ है जिसका अर्थ ध्वनि है। ध्वनि शब्द पर विचार किया जाए तो स्थूल अर्थ में ध्वनि का अर्थ किसी वस्तु के कारण उत्पन्न ऐसी आवाज से है जो सुनी जाए या जिसे श्रवण तंत्रियों के माध्यम से ग्रहण किया जाए। पानी में पत्थर गिरने पर छपाक की ध्वनि उत्पन्न होती है। परन्तु ध्वनि की परिभाषा तथा कार्यक्षेत्र इतना सीमित नहीं है 'स्वनि' एक बहुस्तरीय घटना है जिसका अध्ययन-विश्लेषण ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं द्वारा किया जाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से ध्वनि पर यदि विचार किया जाए तो ज्ञात होता है कि ध्वनि वायुमंडलीय दबाव में परिवर्तन अथवा आरोह-अवरोह, उतार-चढ़ाओं का ही नाम है। यह परिवर्तन वायुकणों के दबाव तथा विचलन के परिणाम स्वरूप होता है।

भाषा विज्ञान भी भाषा के संदर्भ में ध्वनि (स्वन) प्रक्रिया का अध्ययन-विश्लेषण करने का प्रयास करता है। इस संदर्भ में वह इसे भाषा 'वनि' अथवा 'वास्वन' की संज्ञा प्रदान करता है। भाषा विज्ञान के अनुसार वाक्स्यन भाषा ध्वनि भाषा में प्रयुक्त ध्वनि की वह लघुतम इकाई है जिसका उच्चारण एवं श्रव्यता की दृष्टि से स्वतंत्र अस्तित्व तथा व्यक्तित्व हो। सरल शब्दों में प्रयुक्त होने वाली ध्वनि ही वाक्स्वन अथवा भाषा कहलाती है। भाषा विज्ञान में जब भी 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग होता है तो उसका अर्थ स्वन अथवा भाषाध्वनि से ही होता है। डॉ. भोलानाथ प्रसाद तिवारी के शब्दों में ध्वनि मनुष्य के मुख से निःसृत आवाज है जो निश्चित प्रयत्न और निश्चित स्थान द्वारा उत्पन्न होती है।

स्वन-प्रक्रिया से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसमें ध्वनि की उत्पत्ति होती है। भाषा विज्ञान के अनुसार जिन अंगों अथवा अवयवों से ध्वनियों का उच्चारण किया जाता है उन्हें ध्वनि यंत्र उच्चारण अवयव अथवा वाग्यंत्र कहा जाता है। भाषा विज्ञान में ध्वनि तत्व का निम्नलिखित रूपों में अध्ययन विश्लेषण किया जाता है।

1 उत्पादन

2 सवहन तथा

3 ग्रहण।

भाषा विज्ञान आणि में सामान्यत उन्हीं ध्वनियों के अध्ययन का प्रावधान है जो मनुष्य मुख से निःसृत होती है। यद्यपि पश्चिमी देशों में ध्वनि पशु-पक्षियों की ध्वनियों पर भी अनुसंधान किये जा रहे हैं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि ध्वनि उत्पन्न करने वाले अंग/अवयव ध्वनियंत्र कहलाते हैं। ध्वनि विज्ञान में मुख्य रूप से पांच वागेन्द्रियों का उल्लेख प्राप्त होता है -

1. फेफड़े

2. श्वास-नलिका

3. कंठ-पिटक (स्वर यंत्र)

4. जिह्व, तालु, दात, ओष्ठ सहित मुख

5. नासिका तथा मुख को मिलाने वाले गलबिल इन वागेन्द्रियों के विभिन्न अंगों की परस्पर सहायता से ध्वनि की उत्पत्ति होती है। इन वागेन्द्रियों के लगभग 16 अंग होते हैं जो ध्वनि की उत्पत्ति में सक्रिय रहते हैं, ये अंग है-

1. फेफड़े

2. श्वास नली

3. ग्रास नली

4 स्वर तंत्री

5. स्वर यंत्रा

6. ग्रसनिका

7 कंठ-छद

8 जिह्वाणि

9. जिह्व (अग्र, मध्य, पश्च भाग)

10 काकल

11. कोमल तालु

12. कठोर तालु

13. मूर्धा

14 वर्त्स

15. दंत

16. अधरोष्ठ

उपरोक्त सोलह अंग वाग्यंत्र का निर्माण करते हैं। इन सभी के द्वारा 'ध्वनि' की उत्पत्ति में सहयोग किया जाता है। भाषा विज्ञान में इन्हीं अंगों द्वारा निःसृत भाषा स्वनों का अध्ययन विश्लेषण किया जाता है।

3.3.1 स्वनविज्ञान शाखाएं और प्रकार्य

आधुनिक युग ज्ञान विज्ञान के विस्तार और विशेषज्ञता का युग माना जाता है। नई-नई खोजों तथा अनुसंधानों ने ज्ञान विज्ञान के नए नए आयाम स्थापित किये है जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक विषय की अनेक शाखाएं तथा उपशाखाएं विकसित हो गई हैं। स्वन विज्ञान (ध्वनि विज्ञान) भी इस तथ्य का अपवाद अस्तिस्व में आया है जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

1. ध्वनि विज्ञान के लिए अंग्रेजी में फोनेटिक्स तथा फोनोलॉजी (Phonology) शब्दों का प्रयोग किया जाता है। संस्कृत में इसे शिक्षा शास्त्र कहा जाता था। हिंदी में इसके लिए ध्वनि विज्ञान, ध्वनिशास्त्र, स्वन विज्ञान आदि संज्ञाओं का प्रयोग किया जा रहा है।
2. ध्वनिविज्ञान की प्रमुख रूप से तीन शाखाएं मानी जाती हैं।

1. औच्चारणिक ध्वनि विज्ञान

2. संवाहनिक ध्वनि विज्ञान तथा

3. श्रावणिक ध्वनिविज्ञान

• औच्चारणिक ध्वनि विज्ञान

इस शाखा के अंतर्गत स्वन के उच्चारण तथा उससे संबंधित तत्वों का अध्ययन विश्लेषण किया जाता है। विभिन्न उच्चारण अवयवों की 'ध्वनि उत्पत्ति' में किस प्रकार की भूमिका रहती है इस प्रक्रिया का अध्ययन-विश्लेषण औच्चारिणक ध्वनि विज्ञान के अंगर्तत किया जाता है। विभिन्न स्वर तंत्रियों के कार्यों-प्रकार्यों की जानकारी भी इस विज्ञान के माध्यम से की जा सकती है। स्वन-प्रक्रिया को जानने तथा समझने के लिए इस विज्ञान की विशेष उपयोगिता है।

• संवाहनिक ध्वनि विज्ञान :

भौतिकशास्त्र में इसे सुनने 'ध्वनि विज्ञान' के रूप में ही जाना जाता है। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने इस शाखा रूप का नामकरण इस आधार पर किया है कि यह बात का अध्ययन करता है कि किस प्रकार ध्वनि लहरों द्वारा वक्ता के मुख से श्रोता के कान तक लाई जाती है अथवा पहुंचती है? इस विज्ञान की मान्यता के अनुसार फेफड़ों से चली वायु ध्वनि यंत्रों की सक्रियता के कारण आंदोलित होकर उत्पन्न होती है और बाहर की वायु में अपने आंदोलन के अनुसार एक विशिष्ट प्रकार के कंपनों की सहायता से लहरें (तरंगे) पैदा कर देती है। ये लहरे (तरंगे) ही श्रोता के कानों तक पहुंचती है और श्रवण तंत्र में भी कंपन उत्पन्न करती है जिसके परिणामस्वरूप ध्वनि वक्ता से श्रोता तक पहुंचने की प्रक्रिया पूरी करती है। यही स्वन-प्रक्रिया है। इन तरंगों की गति 1100-1200 फीट प्रति सेकंड रहती है। ज्यों ज्यों ये तरंगे आगे बढ़ती जाती है। इनकी तीव्रता गति कम होती जाती हैं। यही कारण है कि दूर बैठे व्यक्ति को ध्वनि कम अथवा धीमी सुनाई देती है। रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन जैसे दूर संचार माध्यमों के विकास में यह विज्ञान विशेष रूप से सहायक बना है। भाषा विज्ञान के क्षेत्रों में इसकी महत्ता केवल इसी कारण से है।

• श्राणविक ध्वनि विज्ञान :

ध्वनि विज्ञान की इस शाखा में ध्वनि के इस पक्ष का अध्ययन-विश्लेषण इस आधार पर किया जाता है कि 'ध्वनि श्रवण' की प्रक्रिया किस प्रकार घटित अथवा संपन्न होती है। श्रवण यंत्रा की सक्रियता इस विज्ञान के अध्ययन का प्रमुख आधार होती है। ध्वनि की उत्पत्ति के पश्चात श्रवण इसका दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है, जिसका अध्ययन इस शाखा द्वारा किया जाता है। इस विज्ञान की मान्यता के अनुसार कर्ण या कान के विभिन्न अंग मस्तिष्क से जुड़े रहते हैं जो श्रवण-प्रक्रिया के अनिवार्य अंग होते हैं। ध्वनि की लहरें या तरंगे जब कान में पहुंचती है तो बाह्य कर्ण की भीरी झिल्ली इस अंग को बोलचाल की भाषा में कान का पर्दा कहा जाता है। पर एक कंपन पैदा होता है। इस कंपन का प्रभाव कान के मध्य भाग की हड्डियों द्वारा कान के आन्तरिक हिस्से के द्रव पदार्थ पर पड़ता है और लहरें अथवा तरंगे उठने लगती है, जिसकी सूचना श्रावणी शिरा 'सुनने वाली नाड़ी' के माध्यम से मस्तिष्क तक पहुंच जाती है और सुनने की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है। ध्वनि वायु तथा अन्य सबंद्ध अणुओं में कपन के रूप में विद्यमान होती है। इस कंपन को 'आवृत्ति' कहा जाता है जिसे प्रति सेकंड की अवधि से गिना जाता है। सामान्यत: मनुष्य 20,000 आवृति तक की ध्वनि ग्रहण करने में सक्षम होता है। इन सभी तत्वों तथा तथ्यों का अध्ययन विश्लेषण श्रावणिक ध्वनि विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है।

3.3.2 स्वन गुण :

ध्वनि भाषा की लघुतम तथा आधारभूत इकाई है। ध्वनि तत्व के दो भेद माने जाते हैं -

1 स्वर और 2 व्यंजन।

इसी प्रकार से भाषा की एक और सार्थक इकाई 'वाक्य' है जो पूर्ण अर्थ की प्रतीति करने वाला तत्व है। किसी भी भाषा के वाक्य में स्वर और व्यंजन स्वतंत्र रूप में प्रयुक्त नहीं होते अपितु उनका उच्चारण प्रयोग सम्बद्ध रूप में होता है। इस नियम के अनुसार किसी भी वाक्य का विवेचन अथवा विवेचन करते समय स्वर तथा व्यंजन प्रत्येक की मात्रा, सुर तथा बलाघात का ज्ञान प्राप्त होना भी आवश्यक है सुर तथा बलाघात को 'आघात' के रूप में जाना जाता है। भाषा विज्ञान में 'मात्रा' तथा 'आघात' को ध्वनि गुण कहा जाता है। इसे 'ध्वनि लक्षण' भी कहा जाता है। अंग्रेजी में इन्हें क्रमशः Sound Quality तथा Sound Attributes कहा जाता है।

इन नामों के अतिरिक्त ध्वनिगुण के लिए छन्दशास्त्रीय तत्व / रागीय तत्व अखंड ध्वनियां (Supra Segmental Sound) तथा रागिम (Prosdeme) आदि शब्दों का प्रयोग भी किया जाने लगा है। इन दोनों ध्वनि गुणों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है। मात्रा पश्चिमी भाषा वैज्ञानिकों ने 'मात्रा' शब्द के लिए Quality (परिणाम) Length (दीर्घता/लंबाई) मात्रा, काल Chrone या समय आदि अनेक शब्दों का का प्रयोग किया है। किसी भी ध्वनि के उच्चारण में अथवा उच्चारण छोड़कर मौन रहने में समय की जो मात्रा लगती है उसे भाषा विज्ञान में 'मात्रा' कहा जाता है। इसकी इकाई मात्रिम (Chroneme) कहलाती है। किसी ध्वनि के उच्चारण में कम समय लगता है तो किसी के उच्चारण अधिक। इस गणना में कम समय वाली मात्रा 'हस्व' अधिक समय वाली मात्रा दीर्घ और उससे भी अधिक समय वाली मात्रा 'प्लुत' कहलाती है। पाणिनी ने अर्थ-हस्व भेद भी स्वीकार किया है। यह दृष्टि भारतीय है। इस विभाजन को इस प्रकार से सरल रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. दीर्घ - जिसमें अधिक समय लगता है।
2. ह्रस्व - जिसमें कम समय लगता है।
3. प्लुत - जिसमें अधिकाधिक समय लगता है ।
4. अर्थ-ह्रस्व - जिसमें बहुत कम समय लगता है।

उपरोक्त भारतीय विभाजन के अतिरिक्त पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिकों ने भी मात्रा के पांच भेद स्वीकार किये हैं

1. इस्वार्द्ध (Hay Short)
2. इस्व (Short)
3. ईषत् दीर्घ (Half Long)

पश्चिमी देशों में इन मात्राओं की गणना अनेक वैज्ञानिक यंत्रों के माध्यम से की जाती है। भारत में भी इसका विधिवत् अध्ययन किया जाता रहा है। वेद-पाठ में तो मात्रा की शुद्धि-अशुद्धि का विशेष ध्यान रखा जाता है। बलाघात प्रायः बोलते समय वाक्य/शब्दों के सभी अंगों पर एक समान रूप से बल नहीं दिया जाता और यह अनेक कारणों से होता है। कभी वाक्य में एक शब्द पर बल होता है तो कभी दूसरे शब्द पर इसी प्रकार वाक्यों में भी कभी एक वाक्य पर विशेष बल दिया जाता है तो कभी दूसरे वाक्य पर। शब्द, वाक्य आदि पर दिया गया यही बल भाषा विज्ञान में 'बलाघात' कहा जाता है। 'बलाघात' के कारण 'अर्थप्रतीति' में विशेष रूप से सहायता मिलती हैं बलाघात मुख्य रूप से चार प्रकार का होता है।

1. शब्द बलाघात जब किसी शब्द के किसी स्वर अथवा आधार पर विशेष बल दिया जाता है जैसे 'मैं हलवा खाऊंगा' में यदि 'मैं' पर बल दिया जाए तो अर्थ निकलेगा केवल मैं। इसी प्रकार खाऊँगा पर बल देने से हलवा खाने की हठ का बोध होगा कि 'मैं हलवा अवश्य खाऊँगा।' वाक्य बलाघात छोटे तथा बड़े दोनों प्रकार के वाक्यों में हो सकता है।

2. ध्वनि बलाघात इसके अन्तर्गत ध्वनि पर बल दिया जाता है। एक से अधिक ध्वनियों वाले अक्षर में एक ध्वनि उस अजर का 'शिखर' होती है तथा शेष 'गहर' ।

3. अक्षर बलाघात यह अक्षर पर होता है, एकाधिक अक्षर वाले शब्द में किसी अक्षर पर कम तथा किसी पर अधिक बलाघात होता है।

''सुर'' (Pitch) जिस प्रकार से सभी ध्वनियां बराबर (एक समान) बल से नहीं बोली जाती तथा बल परिवर्तन के कारण 'अर्थ परिवर्तन' हो जाता है, उसी प्रकार से वाक्य में सभी ध्वनियाँ सदैव एक सुर से नहीं बोली जाती और इस सुर के कारण भी अर्थ परिवर्तन हो जाता है उदाहरण के लिए ''तुम पढ़ रहे हो'' वाक्य में यदि सभी ध्वनियों पर एक समान बल दिया जाए तो अर्थ उत्पन्न होगा कि यह एक सूचना है। 'हो' शब्द पर सुर बदलने से यह वाक्य प्रश्नवाचक बन सकता है। विशिष्ट 'सुर' में बोलने पर यह आश्चर्य भाव प्रकट करने वाला वाक्य बन जायेगा। सुर ऊँचा और नीचा दो प्रकार का होता है। यह तथ्य भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि 'सुर' केवल घोष ध्वनियों में ही संभव है। अघोष ध्वनियों में सुर का अस्तित्व संभव नहीं है। वेद पाठ में भी सुर का विशेष महत्व रहा है।

इस प्रकार से सुर और बलाघात को मिलाकर 'आघात' की अवधरणा बनती मात्रा तथा आघात मिलकर ध्वनि गुण की अवधारणा को जन्म देते हैं।

स्वयं आकलन के प्रश्न

1. ध्वनि विज्ञान की कितनी शाखाएं हैं ?
2. घोष ध्वनि किसे कहते हैं ?
3. प्रयत्न कितने प्रकार के होते हैं ?

3.4 सारांश

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्वनिम विज्ञान सागर की भांति है और स्वनिम उस सागर से निकलने वाले रत्न हैं। स्वनिमों की सहायता से ही स्वनिम माला बनाई जाती है और वर्णमाला के आधार पर ही भाषा विशेष का सारा ढांचा आधरित होता है।

3.5 कठिन शब्द -

1. स्वन - ध्वनि।
2. आरोह-अवरोह - उतार-चढ़ाव।
3 वांग्यंत्र - ध्वनियंत्र उच्चारण अवयव।

3.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उतर

1. उतर - ध्वनि विज्ञान की तीन शाखाएं हैं-

1. औच्चारणिक ध्वनि विज्ञान ।
2. संवाधनिक ध्वनि विज्ञान ।
3. श्रावणिक ध्वनि विज्ञान ।

2. उतर- वे ध्वनियां जिनके उच्चारण में स्वर तंत्रियों में परस्पर निकटता के कारण कंपन उत्पन्न होता है।

3. उतर - प्रयत्न आठ प्रकार के होते हैं :-

1. स्पर्श व्यंजन 2. स्पर्श संघर्षी व्यंजन 3. संघर्षी व्यंजन 4. अनुनासिक व्यंजन 5. अनुनासिक व्यंजन 6. पार्श्विक व्यंजन 7. लुंठित व्यंजन 8. अर्धस्वर व्यंजन।

3.7 संदर्भित पुस्तकें :

1. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, सैद्धांतिक एवं अनुपयुक्त भाषा विज्ञान, साहित्य सहकार, दिल्ली।
2. हरिशचंद्र वर्मा, भाषा और भाषा-विज्ञान, लक्ष्मी प्रकाशन रोहतक।
3. नरेश मिश्र, भाषा और भाषा-विज्ञान, निर्मल प्रकाशन दिल्ली।

3.8 सात्रिक प्रश्न :

1. स्वन की परिभाषा लिखते हुए उसका स्वरूप स्पष्ट कीजिए ?
2. स्वनिक परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए ?

****

इकाई-4

स्वन का वर्गीकरण

संरचना

4.1 भूमिका

4.2 उद्देश्य

4.3 स्वन का वर्गीकरण

4.3.1 स्वन परिवर्तन की दिशाएं

स्वयं आकलन के प्रश्न

4.4 सारांश

4.5 कठिन शब्दावली

4.6 स्वयं आकलन के प्रश्नों के उतर

4.7 संदर्भित पुस्तकें

4.8 सात्रिक प्रश्न

4.1 भूमिका :

स्वनिम भाषा की लघुतम इकाई है। स्वनिम का संबंध भाषा की ध्वनि से माना जाता है। इसमें स्वर, व्यंजन का अध्ययन किया जाता है। प्रस्तुत पाठ में स्वनिम का वर्गीकरण तथा विविध स्थितियों में परिवर्तन के कारण का अध्ययन किया गया है।

4.2 उद्देश्य :

1. स्वन के वर्गीकरण की जानकारी।
2. स्वन के भेदों तथा उच्चारण का बोध।
3. स्वन के में परिवर्तन के कारणों की जानकारी।

4.3 स्वन का वर्गीकरण

स्वन विज्ञान के अन्तर्गत ध्वनियों के वर्गीकरण की भी व्यवस्था है। स्वन मुख्य रूप से दो प्रकार के माने गए हैं-

1. स्वर तथा
2. व्यंजन

1. **स्वर** - स्वर उन ध्वनियों को कहा जाता है जिनके उच्चारण में उच्चारण अवयवों का स्पर्श नहीं होता, वायु मुख के खोखले स्थान से ही बाहर निकल जाती है।
2. **व्यंजन** - व्यंजन वे ध्वनियां होती हैं जिनके उच्चारण में उच्चारण अवयवों को स्पर्श करती है अथवा उनके साथ घर्षण करती है।

• स्वर के भेद :-

ध्वनियों के इन दोनों भेदों के साथ ही इनके अनेक उपभेद किये जाते हैं। मुख्य रूप से स्वर के भेदों का वर्गीकरण दो आधार पर किया जाता हैं -

1. प्रयत्न के अधार पर।
2. स्थान के अधार पर।
3. स्पर्श संघर्षी व्यंजन - जब हवा स्पर्श करने के साथ-साथ संघर्षण भी करती है - जैसे च, ज, छ
4. संघर्षी व्यंजन - वायु मुख से संघर्ष खाती है श, ष, स इस वर्ग में आते हैं।
5. अनुनासिक व्यंजन : जब कुछ वायु नासिका से और कुछ वायु मुख से निकलती है। न, न, म आदि इस वर्ग में आते हैं।
6. पार्श्विक व्यंजन - इन ध्वनियों के उच्चारण में मुख द्वारा बीच में बंद होने पर वस्तु जिस के स्पर्श से निकल जाती है जैसे 'ल'
7. लुंठित व्यंजन- इस ध्वनि के उच्चारण में जीभ की नोक को कुछ बेलन की तरह लपेटकर तालू का स्पर्श होता है जैसे 'ट'
8. अर्धस्वर व्यंजन - ये ध्वनियां स्वर तथा व्यंजन के बीच में आती है जैसे य, वा इनके उच्चारण में मुख द्वार संकरा हो जाता है।

• स्थान के आधार पर ध्वनि भेद वर्गीकरण :

भाषाविज्ञान के स्थान के आधार पर भी ध्वनियों का वर्गीकरण किया जाता है। इनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है। स्वर वर्गीकरण इस आधर पर स्वरों के तीन भेद हैं।

1. अग्र स्वर - जिन स्वरों के उच्चारण में जिह्वा का अग्रभाग काम में लाया जाता है उन्हें अग्र स्वर कहा जाता है - इ, ई, ए अग्रस्वर है।

2. मध्य स्वर – जिन स्वरों के उच्चारण में जिह्वा का मध्य भाग प्रयोग में लाया जाता है मध्य स्वर कहलाते हैं जैसे 'अ' ।
3. पश्च स्वर – इन स्वरों के उच्चारण में जिवा के पिछले भाग का प्रयोग किया जाता है जैसे ऊ, ओ, आ, औ आदि।

स्थान के आधार पर व्यंजन भेद : स्थान के आधार पर व्यंजन के आठ वर्ग माने जाते हैं।

1. **ओष्ठ्य** – इन व्यंजनों के उच्चारण के दोनों होठों का प्रयोग किया जाता है जैसे प, पफ, ब, भ, म आदि।
2. **दन्तोष्ठ्य** – इन व्यंजनों के उच्चारण में दांत तथा होठों का प्रयोग किया जाता है जैसे 'ब'

1. प्रयत्न के अधार पर :-

जिन ध्वनियों के उच्चारण में किसी न किसी प्रकार का प्रयत्न करना पड़ता है। उसे प्रयत्न ध्वनियां कहा जाता है। यह प्रयत्न दो प्रकार का होता है।

1. आंतरिक प्रयत्न जो प्रयत्न मुख विवर के अंदर हो।
2. बाह्य प्रयत्न – जो प्रयत्न मुख विवर से बाहर हो।

1. आंतरिक प्रयत्न – इस आधार पर स्वरों के 4 भेद किये जाते हैं :-

1. संवृत स्वर – इनके उच्चारण में मुख द्वारा अत्यंत संकरा हो जाता है इ, ई, उ, उ आदि स्वर इस वर्ग में आते हैं।
2. अर्धसंवृत – इन स्वरों के उच्चारण में मुख द्वारा अर्ध संकरा रहता है जैसे ए, ओ आदि।
3. विवृत – इन स्वरों के उच्चारण में मुख पूरा खुला रहता है जैसे अ, आ।
4. अर्धविवृत – इनके उच्चारण में मुख द्वार आधा खुला रहता है जैसे ऐ, औ।

2. बाह्य प्रयत्न

इस आधार पर दो प्रकार की ध्वनियां मानी जाती हैं :-

1. **घोष**-ये वे ध्वनियां होती हैं जिनके उच्चारण में स्वर तंत्रियों में परस्पर निकटता के कारण कंपन्न उत्पन्न होता है। इन्हें नाद ध्वनियां भी कहा जाता है-इस वर्ग में सभी स्वर तथा य,र,ल,व आदि विभिन्न व्यंजन आते हैं।
2. **अघोष**- ये वे ध्वनियां होती हैं जिनके उच्चारण के समय स्वर तंत्रियां एक दूसरे से दूर रहती है और उनमें कोई कंपन नहीं होता। इस वर्ग में वर्गों की प्रथम, द्वितीय तथा श, ष, स आदि ध्वनियां आती हैं।

3. प्रयत्न के आधर पर – आभ्यंतर प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों के आठ भेद स्वीकार किये जाते हैं।

1. **स्पर्श व्यंजन** – क, ख, ग, घ, आदि इनमें मुखद्वार खुलते समय हवा की उच्चारण अंगों से स्पर्श मात्रा होता है। परिवर्तन होते रहते हैं। ध्वनि परिवर्तन के कारण ध्वनि परिवर्तन मूलत: दो कारणों से होता है –
   1 आंतरिक
   2 बाह्य।

1. आंतरिक कारण वे होते हैं जो शब्द में आंतरिक रूप से ध्वनि परिवर्तन का कारण बनाते हैं।
2. बाह्य परिवर्तन जो शब्द के बाहर परिवर्तन होते हैं बाह्य परिवर्तन कहलाते हैं। इन दोनों कारणों का संक्षिप्त विश्लेषण निम्न रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. **आंतरिक कारण** – वे कारण जो किसी भाषिक इकाई के भीतर विद्यमान रहते हैं और जिनके कारण ध्वनि परितर्वन होता है आतरिक कारणों की श्रेणी में आते हैं। भाषा वैज्ञानिक इनके निम्नलिखित प्रकार मानते हैं-
2. **ध्वनियों का परिवेश** – आसपास की ध्वनियों में होने वाले परिवर्तनों के प्रभाववश भी कभी, कभी ध्वनि परिवर्तन हो जाते हैं उदाहरण के लिए घोटक में 'ट-ओ' घोष तथा ऊ (घोष) के बीच में कारण ड कोष बन गया फिर धीरे-धीरे यह ड़ में बदल गया है।

3. **ध्वनियों की अपनी प्रकृति** – भाषा विज्ञान भी मान्यता के अनुसार कुछ ध्वनियाँ निर्बल तथा कुछ सबल होती है। निर्बल ध्वनियों में ही प्राय परिवर्तन देखे गए हैं उदाहरण के लिए 'अग्नि' में ण का लोप हो जाने से 'आग' शब्द अस्तित्व में आ गया।
4. **स्थिति के कारण ध्वनियों की अपनी शक्ति** – संयुक्त व्यंजनों में यदि दोनों व्यंजन समान शक्ति के हों तो पहला निबल होता है तथा दूसरा सबल, परिणामस्वरूप पहल व्यंजन का लोप हो जाता है जैसे 'सप्त' में सात, 'दुग्ध' में दूध।
5. **शब्दों की असाधारण लंबाई** – लंबे शब्दों के उच्चारण में असुविधा होने के कारण भी परिवर्तन देखने में आते हैं। कोका कोला में कोला, चटोपाध्याय कर चटर्जी, आदि शब्द इसी कारण विकसित हुए है।

बाह्य कारण

1. **दन्त्य** – इन व्यंजनों का उच्चारण दांतों की सहायता से किया जाता है जैसे त थ, द, ध।
2. **वर्त्स्य** – इन व्यंजनों के उच्चारण में दांतों के अन्दर का मसूड़ा स्पर्श करता है जैसे न, ल, र, स, र, ज।
3. **तालव्य** – इन व्यंजनों के उच्चारण में जीभ कोमल ताल का स्पर्श करती है जैसे च, छ, ज, झ आदि।
4. **मूर्धन्य** – इन व्यंजनों के उच्चारण में जीभ कठोर तालु मूर्ध का स्पर्श करती है जैसे ट, ठ, ड, ढ ण आदि।
5. **कंठ** – इन व्यंजनों के उच्चारण में जीभ कंठ का स्पर्श करती है जैसे, क, ख, ग, घ आदि।
6. **जिह्वामूलीय** – इन व्यंजनों के उच्चारण में जिह्वा अपने मूल को स्पर्श करती है उदाहरण के लिए क, ख, ग जिह्वामूलीय व्यंजन है।
7. **स्वयंत्र मुखी** – इनके उच्चारण में स्वरयंत्र मुख का प्रयोग किया जाता है जैसे ह तथा विसर्ग (:)

इस प्रकार से स्वन–विज्ञान (ध्वनि विज्ञान) 'स्वन तत्व' का विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन–विश्लेषण करता है। 'स्वन' भाषा की लघुतम परंतु महत्वपूर्ण इकाई है। इसकी तुलना किसी भवन की ईंटों से की जा सकती है जिनके बिना भवन का निर्माण असंभव है। ध्वनियां भी भाषा रूपी भवन की वो ईंटे हैं जिनसे इस भवन की रचना हुई है। इसीलिए ध्वनि विज्ञान का भाषा विज्ञान के क्षेत्र में अत्याधिक महत्व है।

4.3.1 स्वन परिवर्तन की दिशाएं :

स्वनिक (ध्वनि) परिवर्तन भाषा निरंतर परिवर्तनशील व्यवस्था है। उसमें आने वाले परिवर्तन उसके विभिन्न स्तरों पर होने वाले परिवर्तनों के कारण होते हैं। शब्द, व्याकरण, वर्ण तथा ध्वनि आदि विभिन्न भाषिक तत्वों में परिवर्तन निरंतर घटित होते रहते हैं उदाहरण हेतु संस्कृत का 'घोटक', हिन्दी में घोड़ा, स्थाली का थाली जाना ऐसे ही कुछ परिवर्तन है। घोटक के घोड़ा बनने में --- घोटक घोडक --- घोड़ा की प्रक्रिया दिखाई देती है। ध्वनि क्रमशः 'ट' तथा 'ड' हो गई। इसे ही ध्वनि परिवर्तन कहा जाता है। इसी प्रकार से विभिन्न भाषाओं में ध्वनि प्रारंभ हो जाता है और धीरे–धीरे किसी भाषा में नए–नए शब्द अथवा पुराने शब्दों का रूप परिवर्तन हो जाता है जैसे हिन्दी में ऑगस्ट को अगस्त कहा जाता है। इसके अतिरिक्त हिन्दी में अर्धचन्द्र की व्यवस्था नहीं थी परन्तु अंग्रेजी शब्दों का उच्चारण करते समय आं ध्वनि का प्रयोग किया जाता है जैसे ऑफिस कॉलिज आदि।

1. **सहजीकरण** – अन्य भाषाओं से लिए गए शब्दों को अधिकाधिक सरल बनाने के लिए भी ध्वनि परिवर्तन किया जाता है जैसे एकेडमी के लिए अकादमी, टेक्नीक के लिए तकनीक शब्द का प्रयोग ध्वनि परिवर्तन का ऐसा ही उदाहरण है।
2. **अनुकरण की अपूर्णता** – कभी–कभी अनुकरण करते समय की ध्वनि परिवर्तन हो जाता है तब नया शब्द तथा नई ध्वनि अस्तित्व में आती है उदाहरण के लिए 'बेचना' के लिए 'बेकना' शब्द का प्रयोग किया जाता है। नंबरदार का लंबरदार, लार्ड का लाटसाहब आदि इसके प्रसिद्ध उदाहरण है।
3. **बोलने में शीघ्रता** – बोलने में शीघ्रता के कारण भी ध्वनि परिवर्तन संभव होता है जैसे (Don't) बदल दिया गया है (Can't) आदि परिवर्तन इसके उदाहरण हो सकते हैं।

4. **उच्चारण-सुविधा** – उच्चारण की सुविधा के कारण भी ध्वनि परिवर्तन होता है। कई शब्दों अथवा ध्वनियों का उच्चारण कठिन होने के कारण प्रयोगकर्ता उनमे परिवर्तन कर लेते है जैसे Know को क्नो कहना अत्यंत कष्टसाध्य है अतः इसे नो कहा जाता है। हिन्दी में भी 'स्थाली' को 'थाली', 'स्कन्ध' को 'कन्धा' कहा जाने लगा है। आलस्य (आलस) आदि इसके अनेक उदाहरण हो सकते हैं।
5. **भ्रामक अथवा लौकिक व्युत्पत्ति** – कभी-कभी अज्ञान के कारण भी ध्वनि परिवर्तन हो जाता है। प्रयोगकर्ता अज्ञान के कारण गलत शब्द का उच्चारण करने लगते हैं और धीरे-धीरे वही शब्द मान्य हो जाता है। उदाहरण के लिए 'औषधी' शब्द के लिए 'औषधि' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा है जो कि अब लोक मान्य हो गया है।
6. **सादृश्य** – अन्य शब्द के साथ सादृश्य होने के कारण भी किसी शब्द का उच्चारण उसी रूप में किया जाने लगता है तो उस स्थिति में भी ध्वनि परिवर्तन हो जाता है जैसे देहाती और देहात की सादृश्यता के कारण शहर शहराती शब्द का प्रचलन होने लगा है निर्गुण के आधार पर कबीर ने अपने पदों में सर्गुण शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों पर किया है।
7. **बलाघात** – बलाघात के कारण भी प्राय ध्वनि परिवर्तन हो जाता है। उपाध्याय से 'ओझा' 'सरदार जी' 'दारजी', 'अनाज', 'नाज', फाइनेस से फिनान्स शब्द का प्रचलन इसी कारण हुआ है।
8. **लिखने के कारण** – कभी-कभी लिखने के कारण भी ध्वनि परिवर्तन देखने में आते हैं जैसे अंग्रेजी में गुप्त को Gupt लिखा जाता है अतः अब हिन्दी में नी गुप्ता कहा जाता है। अंग्रेज में सिंह को Sinha लिखा जाता है। इसके कारण हिंदी में भी सिंह से सिन्हा कहा जाने लगा है।
9. **विदेशी ध्वनि का अपनी भाषा में अभाव** – भाषाओं के परस्पर संपर्क में आने पर भाषाओं में आदान-प्रदान होता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी भाषा में कोई ध्वनि नहीं होती तो उस स्थिति में उस ध्वनि से मिलती जुलती ध्वनि का प्रयोग ध्वनि परिवर्तन के बाह्य कारण लगभग 12, 13 माने जाते हैं। इनमें से प्रमुख कारणों का संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है।

इन कारणों के अतिरिक्त अनेक कारणों जैसे विभाषा का प्रभाव, अशिक्षा, फैशन, भावुकता, प्रयोगकुशलता आदि अनेक कारणों से भी ध्वनि परिवर्तन की प्रक्रिया घटित होती है। ध्वनि परिवर्तन भाषा परिवर्तन की ही एक इकाईगत् प्रक्रिया मानी जा सकती है।

स्वयं आकलन के प्रश्न :

1. वर्गीकरण के आधार पर स्वर कितने प्रकार के होते हैं ?
2. व्यंजन के कितने भेद हैं ?

4.4 सारांश:

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्वनिम विज्ञान में भाषा की छोटी से छोटी इकाई का अध्ययन किया जाता हैं जिसमें वर्ण स्वर व्यंजन आदि का अध्ययन किया जाता है। स्वनिम का अध्ययन करते समय इनमें विविध कारणों से परिवर्तन होते रहते है जो भाषा को अधिक प्रभावशाली बनाते है।

4.5 कठिन शब्दावली :

पद – शब्द जब वाक्य में प्रयुक्त होने योग्य बन जाता है तो उसे 'पद' संज्ञान दी जाती है। रूपिम – भाषा या वाक्य की लघुत्तम सार्थक इकाई।

4.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर:

1. **उत्तर**– तीन अग्रस्वर, मध्य स्वर, पश्च स्वर ध्वनि परिवर्तन के बाह्य कारण लगभग 12, 13 माने जाते हैं। इनमें से प्रमुख कारणों का संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है।
2. **उत्तर** – आठ ओष्ठय, दन्तोष्ठय, द्रन्तय, वर्तस्य, तालव्य, मूर्धन्य, कंठ, जिह्वमूलीय।

4.7 संदर्भित पुस्तकें :

1. देवेंद्र नाथ शर्मा, भाषा विज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

2. भोलानाथ तिवारी, भाषाविज्ञान, किताब महल, इलाहाबाद।

3. तिलक सिंह, नवीन भाषा विज्ञान, प्रकाशन संस्थान दिल्ली।

4.8 सात्रिक प्रश्न

1. रूपिम का स्वरूप स्पष्ट करते हुए उसके भेदों का परिचय दीजिए ?

2. स्वनिमिक विश्लेषण को परिभाषित करते हुए हिंदी स्वनिमों का विश्लेषण कीजिए?

*****

इकाई-5

स्वनिम विज्ञान : स्वरूप

संरचना

5.1 भूमिका

5.2 उद्देश्य

5.3 स्वनिम विज्ञान : स्वरूप

5.3.1 स्वनिम का अर्थ एवं भेद

5.3.2 स्वनिम की विशेषताएँ

5.3.3 स्वनिमिक विश्लेषण की प्रक्रिया

स्वयं आकलन के प्रश्न

5.4 सारांश

5.5 कठिन शब्दावली

5.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उतर

5.7 संदर्भित पुस्तकें

5.8 सात्रिक प्रश्न

5.1 भूमिका

स्वनिम विज्ञान का स्वरूप ध्वनि विज्ञान के क्षेत्र में पश्चिम में किये गये नये अनुसंधानों एवं प्रयोगों के परिणामस्वरूप एक नयी शखा का जन्म हुआ फोनेमिक्स (Phonemics) कहा गया हिन्दी में फोनेमिक्स के लिए अनेक शब्दों –ध्वनिग्राम विज्ञान, स्वनिम विज्ञान आदि का प्रयोग किया जाता रहा है पर अब सर्वाधिक प्रचलित नाम है स्वनिम विज्ञान क्योंकि भारत सरकार के पारिभाषिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग ने 'फोनीम' का हिन्दी रूपान्तर 'स्वनिम' किया है।

5.2 उद्देश्य :

1. स्वनिम विज्ञान की जानकारी।
2. स्वनिम के भेदों की जानकारी।
3 खण्डय और खण्डेयतर स्वनिम की जानकारी।

5.3 स्वनिम विज्ञान का स्वरूप

5.3.1 स्वनिम का अर्थ एवं भेद

स्वनिम विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें किसी भाषा के स्वनिमों तथा उनसे संबंद्ध पूरी व्यवस्था पर विचार किया जाता है। इसके अन्तर्गत यह निर्धारण किया जाता है कि उस भाषा में स्वनिम तथा संस्वन (उपस्वन) कौन–कौन से हैं, उसके संस्वप्नों के वितरण पर विचार किया जाता है, स्वनिमों के भेदोपभेद बताये जाते है–खंड्य स्वनिमों (स्वर तथा व्यंजनों) खड्येतर स्वनिमों (अनुतान, बालाघात, दीर्घता, अनुनासिकता, संगम) की व्यवस्था, रूपिमों के मिलने पर घटित होने वाले स्वनिमिक परिवर्तनों पर विचार किया गया है।

स्वनिम (फोनीम)– स्वनिम की परिभाषा विद्वानों ने अपनी–अपनी तरह से की है। कुछ परिभाषाएं प्रस्तुत हैं:–

1. **डैनियल जोन्स** – स्वनिम ध्वनियों का परिवार होता है जिसका कोई सदस्य किसी शब्द में इस प्रकार आता है कि उसी प्रकार के ध्वन्यात्मक संदर्भ में उसका कोई दूसरा सदस्य नहीं आता है। (एन आउटलाइन ऑफ इग्लिश फोनेटिक्सा)
2. **ब्लॉक एवं ट्रैगर** – स्वनिम समान ध्वनियों का समूह है जो किसी भाषा–विशेष के अन्य समस्त समूहों से व्यतिरेकी एवं अन्यापवर्जी होता है (एन आउट लाइन ऑफ लिंग्विस्टिक एनोलिसिस)
3. **एस. ए. ग्लसिन** – ध्वन्यात्मक दृष्टि से स्वनिम किसी भाषा अथवा बोली में समान ध्वनियों का समूह है जिसके वितरण का एक ढांचा होता है। (एन इन्ट्रोडक्शन टु डिस्क्रिप्टिव लिविस्टिक्स)
4. **डब्ल्यू, नेलसन फ्रांसिस** – स्वनिम ऐसे ध्वनि–प्रकारों का समूह है जो ध्वन्यात्मक दृष्टि से समान तथा परिपूरक वितरण या मुत्तफ वितरण में होते हैं।

संरवन (एलोफोन) जब दो या दो से अधिक ध्वनियों परिपूरक वितरण में होती हैं और उनमें ध्वन्यात्मक समानता भी होती है तब वे ध्वनियां एक स्वनिम का निर्माण करती है और वे ध्वनियाँ उस स्वनिम की संस्वन कहलाती हैं।

हिन्दी भाषा से उदाहरण लेकर हम स्वनिम और संस्वन को समझ सकते हैं। हिन्दी के 'वनि' 'ल' को लें। पाँच शब्द हैं लौटा, उलटा, लो, ले तथा ला। इन शब्दों का उच्चारण करते समय सावधानी से जीभ की स्पर्श–स्थिति पर ध्यान दें। 'लौय' शब्द के 'ला' का उच्चारण करते समय जीभ तालू के भीतरी भाग को स्पर्श करती है, उलटा के 'ला' का उच्चारण करते समय जीभ उलट जाती है, लो के 'ल' के उच्चारण में जीभ को दांत की ओर थोड़ा आगे करना पड़ता

है। 'ल' के उच्चारण में ल और आगे से तथा 'ला' के उच्चारण में ल और भी आगे से उच्चरित होता है। इस प्रकार 'ल' ध्वनि के इन पाँच शब्दों में पांच प्रतिनिधि हैं- ल, त, ल और तथा पांचों के उच्चारण स्थान एक-दूसरे से कुछ-कुछ भिन्न हैं। अभिप्राय यह है कि 'ल' तो सामान्य ध्वनि है और उसे तरह-तरह से उच्चरित किया जाता है। अंतः उसके वास्तविक रूप में प्रयुक्त प्रकृत पांच रूप हैं। इन रूपों की संख्या और भी अधिक हो सकती है। ल1, ल2, ल3, ल4, लड की सत्ता भौतिक है। इनकी तुलना में 'ल' की सत्ता भौतिक न होकर मानसिक है। 'ल' प्रतिनिधि है मुखिया है। अन्य पांच प्रकार से उच्चरित 'ल' ध्वनि का अर्थात् ला, ल2, ल3,, ल4, लड का। इसी बात को स्वनिम विज्ञान की शब्दावली कहें तो 'ल' स्वनिम है और ला, ल2, ल3, ल4 उसके स्वनिम कहते हैं। 'नाली', 'लाली' शब्दों के 'न' और 'ल' भी स्वनिम है। ये व्यतिरेकी है, अविरोधी नहीं।

निष्कर्ष यह कि स्वनिम व्यतिरेकी होते है और संस्वन अव्यतिरेकी होते हैं। वे परिपूरक वितरण में आते हैं, जहां तक आता है, वहां दूसरा नहीं आता।

दोनों के बीच एक अन्तर यह भी है कि स्वनिम अनुनयमेय होते हैं। यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि कौन स्वनिम कहाँ आयेगा - 'आली' के पहले 'क' आएगा कि 'ल', 'म' आएगा कि 'ल', 'म', 'प' आएगा कि 'त'। इसके विपरीत संस्वन चूँकि परिपूरक वितरण में आते हैं अतः उनका अनुमान लगाया जा सकता है।

ऊपर 'ल' की चर्चा की गई है। 'लेटा' के उच्चारण में सामान्यतः ल का प्रयोग किया जाता है पर यदि कोई प्रयास करे तो ल4 की जगह ल1, ल2, ल3, का प्रयोग कर सकता है पिफर भी 'लेटा' के अर्थ में कोई अन्तर नहीं आयेगा। इससे स्पष्ट है कि संस्वन अर्थ में परिवर्तन नहीं ला सकते। परन्तु 'लो' में 'ल' के स्थान पर किसी अन्य व्यंजन स्वनिम क, को, ह हो, द दो का प्रयोग करेंगे तो अर्थ बदल जाएगा। स्पष्ट है कि स्वनिम अर्थ-भेदक होते हैं। अतः स्वनिम तथा संस्वन के बीच विभाजन का एक कारण उनकी अर्थभेदक शक्ति है। स्वनिम अर्थभेदक होते हैं, संस्बन अर्थभेदक नहीं होते। भाषाविज्ञान में जिन शब्द-युग्मों -नाली-माली, काली-लाली, नग-पग, ठग-लग, दो-हो, सा-क से दो स्वपनों की अर्थ-भेदकता का पता लगता है, उन्हें न्यूनतम युग्म : उपदपउंस चंपत अथवा न्यूनतम युग्म कहते हैं। यहाँ शब्दों के अर्थ में तो अन्तर है पर ध्वनि के स्तर पर न्यूनतम विरोध है। नग-पग - दोनों के अर्थ बिल्कुल अलग हैं पर ध्वनि की दष्टि से अन्तर न्यूनतम है एक में 'न' है, दूसरे में 'प': शेष ध्वनियाँ दोनों शब्दों में समान हैं- अ+ग।

ध्यान रहे कि जिस भाषा में जिन दो ध्वनियों के न्यूनतम युग्म मिलते हों, उस भाषा में ये दोनों ध्वनियाँ स्वनिम होती हैं, संस्वन नहीं।

स्वनिम और संस्वन के बीच भेद को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है

स्वनिम	**संस्वन**
1. जाति के समान	व्यक्ति के समान
2. परिवार	परिवार का एक सदस्य
3. मानसिक सत्ता होती है	भौतिक सत्ता होती है
4. अर्थ में भेद करने की शक्ति होती है।	अर्थ में भेद करने की शक्ति नहीं होती।
5. भाषा में महत्वपूर्ण स्थान है	महत्वपूर्ण स्थान नहीं होता।
6. परस्पर व्यरितेरकी या विरोधी वितरण में होते हैं होते हैं।	परस्पर परिपूरक वितरण में होते हैं।
7. अनुमान नहीं लगाया जा सकता।	

अतः अननुमेय अनुमान लगाया जा सकता है। अतः अनुमेया अतः अननुमेय भाषा विज्ञान में स्वनिम-व्यवस्था के अध्ययन में वितरण का अत्यंत महत्व है। भाषा की स्वनिम-संरचना, उसके आकार-प्रकार का सूक्ष्म अध्ययन

वितरण के आधार पर ही किया जाना है। वितरण के वितरण के तीन भेद मुख्य हैं-

1. व्यतिरेकी या विरोधी वितरण
2. परिपूरक वितरण और
3. मुक्त वितरण।

व्यतिरेकी वितरण - जहाँ एक स्थिति में दो ध्वनियाँ आए और दोनों के आने से अर्थ में परिवर्तन हो जाए।

परिपूरक वितरण - जहाँ एक स्थिति में दो ध्वनियाँ न आएँ। कोई भी ध्वनि बिल्कुल वैसी ही स्थिति में घटित न हो जिसमें एक घटित हो जाती है।

मुक्त वितरण - जिसमें एक स्थिति में दो ध्वनियों मुक्त रूप से आए पर अर्थ में अन्तर न हो। हिन्दी में क-क, ख-ख, ग-ग के उच्चारण में मुक्त वितरण पाया जाता है। लोग कानून-कानून, गरीब-गरीब, खघला-खघला दोनों बोलते हैं और दोनों का वही अर्थ रहता है, अर्थ में परिवर्तन नहीं होता। इस प्रकार आने वाली ध्वनियाँ मुक्त परिवर्तत मुक्त वितरण ध्वनियां (free variant)कहलाती हैं।

स्वनिम के भेद - ध्वन्यात्मक दृष्टि से स्वनिम को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- खंड्य स्वनिम तथा खंड्येतर स्वनिमों खण्ड्य स्वनिम वे हैं जिनका विश्लेषण एक पृथक् इकाई के रूप में किया जा सकता है। इनकी स्वतंत्र सत्ता होती है। इन्हें मुख्यत: स्वर तथा व्यंजन दो वर्गो में विभक्त किया जाता है। खंड्येतर स्वनिमों को अलग-अलग खंडित नहीं किया जा सकता। ये प्राय: एकाधिक खंड्य स्वनिम पर आधारित होते हैं। इनका उच्चारण भी सामान्यत: अलग संभव नहीं है। ये खंड्य ध्वनियों के साथ ही आते हैं। इसीलिए विद्वानों ने इनका स्वतंत्र आस्तित्व और महत्त्व स्वीकार नहीं किया है। खंड्येतर स्वनिमों के पाँच उपभेद हैं अनुपात, बालाघात, दीर्घता, अनुनासिकता, संगम। खंड्य स्वनिमों के दो भेदों तथा खंड्येतर स्वनिमों के पाँच उपभेदों को आरेख के द्वारा स्पष्ट किया गया है।

- **स्वनिम**

1 खड्य : 1. स्वर
2. व्यंजन

2 खंड्येतर : 1. अनुपात
2. बालाघात
3. दीर्घता
4. अनुनासिकता
5 संगम

1. खंड्य स्वनिम- किसी भी भाषा के खंड्य स्वनिम दो प्रकार के हो सकते हैं-

1. केन्द्रीय स्वनिम
2. परिधीय स्वनिम।

केन्द्रीय स्वनिम जन-सामान्य की भाषा में अर्थ भेदक होते हैं, जबकि परिधय स्वनिम कुछ विशिष्ट व्यक्तियों पढ़े-लिखे, विद्वान व्यक्ति की ही भाषा में अर्थभेदक होते हैं। जन-सामान्य की भाषा में वे कम प्रयुक्त होते है तथा भुक्त-परिवर्तन होने के कारण अर्थभेदक नहीं होते। हिन्दी खंड्य स्वनिमों का विवेचन करते हुए आरम्भ में हम केन्द्रीय स्वनिमों की ही चर्चा करेंगे।

स्वर स्वनिम- हिन्दी में दस केंद्रीय स्वर स्वनिम हैं - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ए. ओ, औ।

इन सभी के न्यूनतम युग्म मिलते हैं, जिनके उदाहरण इस प्रकार है :-

आ, इ, ई, द्ब, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ।

अ काल बिल कील कुल कूल केला पैर मोल मौन

कल बल कल पफल थल कला पर मल मन

आ बिल कील कुल फूल केला पैर मौल मौन

बाल काल काल काल काला पार माल मान

इ चीर पुल मूल मेल मेल मोल खैल

विर पिल मिल मिल मिल मिल मिल

ई कुल कूल खेल खैर कौर खोल

कील कील खील खीर खील कीरा

उ कूल खेल से खुल खौल

कुल खुल सुर खुल खुल

ऊ मेल मैल मोल लौट

मूल मूल मूल लूट

ए मैल मोल लूट

मेल मोल लेट

ऐ मोल सौर

मैल सैर

ओ लौट

लोट

ओ लौट

लौट

व्यंजन स्वनिम - हिंदी में निम्नलिखित केन्द्रीय व्यंजन स्वनिम हैं, क्योंकि इन सभी के न्यूनतम युग्म मिलते हैं, क, ख, ग, घ, काल-खाल-गाल-घाल, (हरियाणवी) च, छ, ज, झ, चल-छला-जला-झला

ट, ट, ड, ढ; टेला-ठेला-डेला-ढेला

त, थ, द, ध, ताल-थाल-दाल-दान-धनद्ध

ए, पफ, ब, भ, पल-फल-बल-बाल-भालद्ध

य, र, ल, व यार-रार-लार-वारद्ध

श, स. ह शेर-सेर हेरद्ध

न्ह, म्ह, व्ह, कान-कान्ह, कुमार-कुम्हार, आला-आल्हा

उपर्युक्त केन्द्रीय व्यंजन स्वनिमों के अतिरिक्त व्यंजनों के पाँचों वर्णों कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग के अन्तिम नासिक्य व्यंजनों-घ, ब, ण, न म में से ण, न, म तो स्वनिम हैं। इनके न्यूनतम युग्म मिलते हैं - माल-नाल, माली-नारी, अणु-अनु। कुछ विद्वान 'ण' के स्वनिम होने में कुछ शंका व्यत्त करते हैं, क्योंकि एक तो कुछ शब्दों में 'ण-न' भुक्त परिवर्त हैं; कण-कन, प्राण-प्रान और दूसरे 'ण-न' कुछ सीमा तक परिपूरक वितरण में हैं- 'ण' कभी

भी शब्द के आरम्भ में नहीं आता जबकि 'न' आता है ऋ परन्तु 'ण-न' का न्यूनतम युग्म मिलने के कारण इन्हें स्वनिम ही माना जाएगा। नासिक्य व्यंजनों में 'घ' में और 'ब' 'ण' स्वनिम के संस्वन है।

स्वनिम संस्वन वितरण

घ कवर्ग के पूर्व गंगा, कंघा, अंक, पंख अपवाद पराडमुख, वाडमय

न ज चवर्ग के पूर्व चंचु, वांछा, बेल, झांझ

न अन्यत्र

'ज' के ही समान 'घ' और 'द' भी शब्द के आदि में नहीं आते, अंत: टवर्ग के क्रमश: 'ढ' और के स्वनिम माने जा सकते थे, परन्तु अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी में आगम कारण 'ड-ड्' व्यतिरेकी वितरण में हो गए हैं। घोड़ा-सोड़ा, जोड़-रोड। 'ढ-ढ' भी 'औढरदानी' जैसे शब्दों के कारण व्यतिरेकी वितरण में हो गए हैं, अत: 'ड', 'ढ' 'ढ' चारों को पृथक् पृथक स्वनिम माना जा सकता है।

उपर्युक्त केन्द्रीय स्वनिमों के अतिरिक्त हिन्दी में कुछ परिधीख स्वनिम भी हैं- ऑ, क, ख, ग, ज, फा। ये स्वनिम हिन्दी के विदेशी शब्दों : अंग्रेजी, अरबी, फारसी में आते हैं। सामान्य जन इनके स्थान पर क्रमश: आ, क, ख, ग, ज, फ का प्रयोग करते हैं और उनके लिए ये भुक्त परिवर्त हैं। कुछ जानकार लोग जो इनका प्रयोग करते हैं उनकी भाषा में ये अर्थभेदक स्वनिम हैं

आ-ऑ बाल-बॉल, हॉल-हॉल।

क -क :- ताक-ताक।

ख-ख : खैर-खैर, ख खाना-खाना

ग-ग : बाग-बाग, बेगम-बेगम

ज-ज : जरा जरा, सजा-सजा, राज-राज

फ-फ : फूल-फूल, फन-फन कुछ जानकार लोग अनजान व्यक्तियों के विरीतताओं, क, ख, ग, न फ के स्थान पर क्रमश: आ, क, ख, ग, ज, फ का भी प्रयोग करते हैं।

2. खंड्येतर स्वनिम

पृथक् उच्चारण सम्भव न होने के कारण खंडयेतर स्वनिम को स्वनिमिक कहना अधिक उचित होगा। खंड्येतर स्वनिम हैं- बलाघात, अनुतान, दीर्घता, अनुनासिकता और संगम।

1. बलाघात - बोलते समय काव्य के किसी विशेष अंश या शब्द पर, शब्द के किसी विशेष अक्षर पर, अक्षर की विशेष ध्वनि पर बल देने को बलाघात कहते हैं। वाक्य, शब्द तथा अक्षर के अन्य अंश बलाघात शून्य न होकर अपेक्षाकृत कम बलाघात युक्त होते है। विश्व की कुछ भाषाओं में अक्षर-बलाघात शब्द के अक्षर विशेष पर बल स्वनिमिक होता है. अर्थात् शब्द के अक्षर विशेष पर बल होने से शब्द का एक अर्थ तथा दूसरे अक्षर पर बल होने से शब्द का दूसरा अर्थ होता है। ऐसी भाषाएँ बलाघात-प्रधान भाषाएँ कहलाती हैं। हिन्दी इस प्रकार की भाषा नहीं है। हिन्दी में शब्द-बलाघात वाक्य के शब्द या अंश विशेष पर बल ही स्वनिमिक है।

उसे एक रोशनदान वाला कमरा चाहिए।

उसे एक रोशनदान वाला कमरा चाहिए।

यहाँ पहले वाक्य में बलाघात एक पर है, अत: अर्थ होगा ऐसा कमरा जिसमें सिर्फ एक रोशनदान हो। दूसरे वाक्य में बलाघात रोशनदान पर है, अत अर्थ है-ऐसा कमरा जिसमें रोशनी और हवा आती हो।

2. अनुपात - कोई वाक्य अथवा शब्द अर्थात एकाधिक ध्वनियों की भाषिक इकाई का उच्चारण करते समय

हमारा सुर स्वरतत्रियों के प्रति सेकण्ड कम्पनावृत्ति पर से विश्व में निर्भर एक ध्वनि गुण कभी तो ऊपर जाता है और कभी नीचे आता है। सुर के इसी उतार–चढ़ाव को सुर लहर अथवा अनुतान कहते हैं। इस दृष्टि प्रकार की भाषाएँ है–

1. **तान भाषाएँ** – जिनमें अनुतान से शब्द का अर्थ तथा व्याकरणार्थ भी बदल जाता है, जैसे चीनी, बर्मी भाषाओं में।
2. **अतान भाषाएँ** – जिनमें अनुतत्व से केवल आश्चर्य, प्रश्न, अनिच्छा, आज्ञा आदि का भाव व्यक्त होता है जैसे हिन्दी, अंग्रेजी आदि।

   राम आ गया।

   राम आ गया?

पहला वाक्य अपने विशेष अनुतान के कारण सामान्य कथन है। दूसरे वाक्य में विशेष अनुतान के द्वारा आश्चर्य व्यक्त किया गया है तथा तीसरा वाक्य प्रश्नवाचक है।

दीर्घता – दो समान व्यंजनों के मेल से बने संयुक्त व्यंजन को दीर्घ या द्वित्व व्यंजन कहते है तथा इस प्रवृत्ति को दीर्घता कहा जाता है। हिन्दी में दीर्घता स्वनिमिक है, उदाहरण के लिए– बला–बल्ला, पका–पक्का, बचा–बच्चा। यहाँ पहले उदाहरण में बला का अर्थ है– संकट, आपदा जबकि 'बल्ला' का अर्थ है– कुछ श्वेतों में प्रयुक्त होने वाला उपकरण। इसी प्रकार 'पका' का अर्थ है– भोजन, फल आदि का पकना तथा पक्का का अर्थ है– मजबूत। 'बचा' का अर्थ है – संकट से बचना तथा 'बच्चा' का अर्थ है– बालक।

अनुनासिकता – स्वर को नासिक बनाने से भी अर्थ में भेद हो जाता है, जैसे– सास–साँस, सवार–सँवार। गोद–गोंद। संगम संहिता– शब्दों के उच्चारण में हम एक के बाद दूसरी ध्वनि का उच्चारण करते हैं। कभी तो हम एक के बाद दूसरी ध्वनि का उच्चारण करते हैं। कभी तो हम एक के बाद दूसरी ध्वनि का उच्चारण बिना रुके कर देते हैं, जैसे तुम्हारे और कभी बीच में थोड़ा अवकाश या मौन देकर दूसरी ध्वनि का उच्चारण करते हैं, जैसे तुम् + हारे। दो ध्वनियों के बीच के इसी विराम, मौन या अवकाश को संहिता कहते हैं। हिन्दी में संहिता स्वनिमिक या सार्थक है। यदि तुम्हारे उच्चारण हम बिना रुके करते हैं, तो वह एक सर्वनाम होगा, जबकि इसके बीच मौन या विराम आ जाने से तुम् हारे यह एक सम्पूर्ण वाक्य होगा, जिसका अर्थ है– तुम पराजित हुए। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखे हैं सिरका– सिर का, नदी–न–दी, नरम–नरम, सोना–सो–ना।

5.3.2 स्वनिम की विशेषताएँ

1. प्रत्येक भाषा के स्वनिम अपने होते हैं, वे दूसरी भाषा के स्वनिमों से स्वतंत्रा होते हैं। एक भाषा का स्वनिम दूसरी भाषा का स्वनिम हो, वह आवश्यक नहीं। हिन्दी का र बंगला के र से भिन्न है। हिन्दी का पफ अंग्रेजी के पफ से अलग है।
2. स्वनिम का सम्बन्ध उच्चरित भाषा से है, लिखित भाषा से नहीं। अंग्रेजी में जैसा बोला जाता है वैसा लिखा नहीं जाता और जैसा लिखा जाना है वैसा बोला नहीं जाता। उदाहरण के लिए बोला जाता है 'नाइफ' पर लिखा जाता है Pneumonial इन शब्दों के स्वनिम का निर्धारण इनके लिखित रूप को देखकर नहीं, इनके उच्चरित रूप की दृष्टि से किया जायेगा। अंग्रेजी के काउ, यू और बोठ शब्दों के लिखित रूप को देकर लगता है कि प्रत्येक शब्द में तीन स्वनिम हैं परन्तु उच्चारण की दृष्टि से दे तो पहले शब्द में तीन स्वनिम हैं और दूसरे में केवल दो! अंग्रेजी का 'क' स्वनिम अनेक प्रकार से लिखा जाता है। कहीं ब. कहीं कहीं बी से। स्पष्ट है कि स्वनिम लिखित भाषा से निर्धारित नहीं हो सकते।
3. शब्द में स्वनिम के स्थान परिवर्तन तथा अन्य स्वनिमों के साहचर्य के कारण अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। उदाहरण के लिए तन और नत शब्द लीजिए। दोनों में अक्षर तो न और न ही हैं पर उनके स्थान परिवर्तन के

कारण अर्थ बदल जाते हैं। इसी प्रकार कल, काल, कौल, कैल, कौल शब्द है।

4. प्रत्येक स्वनिम के भेदक लक्षण दूसरे स्वनिम के लक्षणों से भिन्न होते हैं।
5. स्वनिम निर्धारण में उच्चारण से अधिक उसके श्रवण का महत्त्व है।
6. एक ध्वनि एक ही स्वनिम के अन्तर्गत आ सकती है वह दो स्वनियों से संबद्ध नहीं होती।
7. स्वनिम का ज्ञान दो ध्वनियों के अन्तर के जाने पर निर्भर करता है।
8. स्वनिम का निर्धारण शब्द के आधर पर ही करना चाहिए। स्वनिम का अध्ययन कर ही हम पद विज्ञान, वाक्य विज्ञान और अर्थविज्ञान का सम्यक् अध्ययन कर सकते हैं क्योकि इन सबके मूल में स्वनिम की सत्ता होती है। भाषा का शुद्ध उच्चारण जानने के लिए तो स्वनिमों का ज्ञान परम आवश्यक है ही वैज्ञानिक लिपि के निर्माण में भी स्वनियों का ज्ञान आवश्यक है। अत: स्वनिम विज्ञान की उपयोगिता असंदिग्ध है।

5.3.3 स्वनिमिक विश्लेषण की प्रक्रिया :-

भाषा की लघुतम इकाई स्वन होती है, जिसे हम ध्वनि भी कहते हैं। ये स्वन अपने आप निरर्थक होते हैं लेकिन इनके योग से जो शब्द, पद और वाक्य बनते हैं ये सार्थक होते हैं। अत: भाषा में स्वन कच्ची सामग्री के रूप में प्रयुक्त होते हैं। इन्हीं स्वनों से शब्दों का निर्माण होता है और शब्दों से पदों का और पदों से वाक्य का। सभी भाषाओं में निश्चित मात्रा में स्वन अथवा ध्वनियों हैं। उदाहरण के रूप में अंग्रेजी भाषा में मूल ध्वनियों की संख्या 26 है, लेकिन मलयालम में मूल स्वनों की संख्या 52 है। प्रत्येक मानव का अपने वागंगों पर इतना अधिक नियन्त्रण नहीं है कि वह किसी एक स्वन का बार-बार समान रूप से उच्चारण कर सके। पुन: जब कोई स्वन किसी शब्द या वाक्य में प्रयुक्त होता है तो वह अपने निकटतम स्वन से अवश्य प्रभावित होता है जिससे उसके उच्चारण में कुछ भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में भाषा वैज्ञानिक भाषा विशेष के मूल स्वनों का चयन करने के लिए स्वन प्रक्रिया का सहारा लेते हैं। इसे हम एक उदाहरण के द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं-काल, काला, काले, कालू, कुलटा, पलटी, पलंग आदि शब्दों के उच्चारण में 'ल' ध्वनि का। बार-बार उच्चारण हो रहा है। लेकिन इनमें 'ल' स्वन के उच्चारण हर दार भिन्न हैं। इसे हम ल-1, ल 2, ल - 3, ल-4, ल - 5, ल - 6, ल - 7 ये सातों उच्चारण 'ल' स्वन के संस्वन कहे जाएंगे। इन संस्वनों की संख्या अनंत है। लेकिन इतना निश्चित है कि इनमें लत्व समान रूप से विद्यमान है। इस लत्व को 'ल' संस्वनों में सर्वसमावेशी सामान्य स्वन भी कहा जाता है। यही लत्व स्वन ही स्वनिम कहलाता है। इस प्रक्रिया के द्वारा हम कत्व, चत्व, पत्व, मत्व आदि स्वनिमों का निर्धारण कर सकते हैं। जहाँ स्वन एक स्थूल इकाई है, वहाँ स्वनिम एक काल्पनिक इकाई है। प्रत्येक स्वनिम एक अर्थी भेदक इकाई है। उदाहरण के रूप में ताल, बाल, जाल आदि में त, ब, ज आदि स्वनिमों के बदलने से अर्थ में परिवर्तन हुआ है। इसी प्रकार से कार, काम, काल. काज आदि शब्दों में र, म ल ज आदि स्वनिमों के कारण अर्थ परिवर्तन हुआ है इससे यह निश्चित हुआ कि एक स्वनिम के स्थान पर दूसरा स्वनिम प्रयुक्त नहीं हो सकता। प्रत्येक भाषा में स्वनिमों की संख्या अलग-अलग होती है। लेकिन यह भी निश्चित है कि किसी भी भाषा में कम से कम 15 स्वनिम होते हैं और अधिक से अधिक 601 स्वनिमों को दो खण्डों में बाँटा गया है-

1. खंड्य स्वनिम (Segmental Phonemes)
2. खण्ड्येतर स्वनिम (Spura Segmental Phonemes)

1. **खण्ड्य स्वनिम** - खण्ड्य स्वनिमों को हम पृथक करके उच्चारित कर सकते हैं। यह भी कह सकते हैं कि उनके खण्ड किए जा सकते हैं। खण्ड्य स्वनिमों को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं-

1. स्वर तथा 2 व्यंजन। हिन्दी भाषा में स्वनिमों को भी इसी प्रकार विभक्त किया जाता है।

2. **खण्ड्येतर स्वनिम** - खण्ड्येतर स्वनिम वे होते हैं जिनमें मात्रा, सुर, बलाघात आदि का प्रयोग होता है। इनकी

न तो अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता होती है, न ही कोई अस्तित्व। इसी कारण इन्हें अलग रूप में प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। अतः ऐसी स्थिति में खण्ड्येतर स्वनिमों का विश्लेषण करना संभव नहीं है।

स्वनिमिक विश्लेषण-

किसी भी एक स्वनिमिक का उच्चारण करने के लिए एक या अधिक वागंग गतिशील होते हैं। कहीं जिह्वा गतिशील होती है तो उसके साथ दो ओंठ भी सक्रिय होते हैं। किसी भी स्वनिम का उच्चारण करने में जिह्व तालु का, या मूर्ध का या दांतों का स्पर्श करती है। इसका मतलब यह है कि प्रत्येक स्वनिम की उच्चारण सम्बन्ध अपनी-अपनी विशेषताएं हैं, जिन्हें हम उस स्वनिम के अभिलक्षण कह सकते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि किसी स्वनिम का केवल एक ही अभिलक्षण हो। नोमी चामस्की ने अपनी रचना (Sound Pattern of English) हारले पॉस्टल अपनी रचना (Aspects of Phonological Theory) में अंग्रेजी भाषा के स्वनिमों को आघर बनाकर अठारह 18 अभिलक्षण गिनवाये हैं-

1. स्वरात्म्क या आक्षरिक 2. मुखरित 3. व्यंजनात्मक 4. नासिक्य 5. निम्न 6. उच्च 7. दृढ़ 8. पश्च 9. पूर्व जिह्वीय 10. जिह्वा पफलकीय 11. वर्तुलित 12. सघोष 13. प्रवाही 14. महाप्राण 15. तात्कालिक मोचन 16. संघर्षण 17. विस्तृत 18. पार्श्विक

लेकिन यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि किसी भाषा के स्वनिमों के अभिलक्षण दूसरी भाषा के अभिलक्षणों के कम ही समान होते हैं। उनमें कुछ-न-कुछ अंतर अवश्य ही होता है। इसीलिए हिन्दी के स्वनिमों के अभिलक्षण कुछ अलग प्रकार के हैं। रमेश चन्द्र मेहरात्रा ने अपने ग्रंथ Indian linguistics में हिन्दी के 15 स्वर स्वनिमों और 42 व्यंजन स्वनिमों का विश्लेषण किया है। Problem of the Hindi vowels के लेखक ने केवल 10 स्वर स्वनिमों का ही विश्लेषण किया है।

हिन्दी के स्वनिम स्वर तथा व्यंजन दो वर्गों में विभक्त हैं। हिन्दी के स्वर स्वनिम केवल 10 हैं। ये हैं-अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, और इनमें), अं और अः को स्वनिम नहीं माना जा सकता। हिन्दी व्यंजन स्वनिमों को संख्या 35 है। इनमें क्ष. त्र, और ज्ञ को स्वनिम नहीं माना गया, लेकिन ड, ढ स्वनिमों को स्वतंत्र स्वनिम माना गया है। हिन्दी स्वनिमों के अभिलक्षणों की संख्या तीस है जो इस प्रकार है 1. स्वरात्मक 2. व्यंजनात्मक 3. अग्र 4. पश्च 5. वृत्ताकार 6. अवृत्ताकार 7. संवृत 8. विवृत 9. दृढ 10. मूल 11. संयुक्त 12. मुखर 13. स्पर्श 14. स्पर्श संघर्षी 15. प्रवाही 16. कण्ठ 17. तालव्य 18. मूर्धन्य 19. दन्त्य 20. ओष्ठङ्क 21. नासिक्य 22. उत्क्षिप्त 23. घोषत्व 24. प्राणत्व 25. लुण्ठित 26. पार्श्विक 27. उदासीन 28. मध्य 29. हस्त 30. शिथिल घ, उ तथा ड स्वनिम कभी भी शब्द के आरम्भ में प्रयुक्त नहीं होते।

ड् और ज स्वनिम शब्द के अंत में नहीं आते। यह आवश्यक नहीं है कि एक स्वनिम में सभी। अभिलक्षण विद्यमान हों। जिस स्वनिम में कोई अभिलक्षण होता है उसका विश्लेषण करते समय हम ध्नात्मक (+) चिह्न लगा देते हैं। यदि किसी स्वनिम में वह अभिलक्षण नहीं होता तो उसके आगे हम ऋणात्मक (-) चिह्न लगा देते हैं। परन्तु यदि किसी स्वनिम का अलग से विश्लेषण करना हो तो उसके आगे उन्हीं अभिलक्षणों के चिह्न लगाए जाते हैं जो उसमें हैं। जिस स्वनिम का विश्लेषण किया जा रहा होता है उसके अभिलक्षणों को केवल कोष्ठक [ ] में दिखाया जात है। हिन्दी के स्वनिमों अभिलक्षणों से ही उनकी प्रकृति का पता चलता है। कुछ लक्षण ऐसे भी होते हैं जो केवल अनुमान के आधार पर लगाए जाते हैं। उनको हम अनुमेयी लक्षण कहते हैं। हिन्दी में निम्नलिखित स्वर स्वनिमों तथा व्यंजन स्वनिम का विश्लेषण किया जा सकता है -

स्वर- अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ

व्यंजन- कवर्ग- क, ख, ग, घ, घ

चवर्ग- च, छ, ज, झ, ञ

टवर्ग ट, ठ, ड, ढ, ण, ड, ढ़

तवर्ग– त, थ, द, ध, न

पवर्ग– प, फ, ब, भ, म

य, र, ल, व

श, ष, स, ह

स्वयं आकलन के प्रश्न :

1. वर्गीकरण के आधार पर स्वर कितने प्रकार के होते हैं ?

2. व्यंजन के कितने भेद हैं ?

5.4 सारांश :

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि स्वनिम विज्ञान भाषा के वर्ण का ज्ञान की विवेचना करता है। वर्ण की उत्पति तथा उसके भेदों का विशिष्ट अध्ययन हैं जिसमें खण्डय तथा खण्डयेतर स्वनिम प्रमुख रूप से है।

5.5 कठिन शब्दावली :

स्वनिम – वर्ण या ध्वनि।

खंड्य – जिसके खंड हो सके।

खंड्येतर – जिसके खंड ना किए जा सके।

आरोह–अवरोह – उतार–चढ़ाव।

5.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उतर :

1. उत्तर – तीन अग्रस्वर, मध्य स्वर, पश्च स्वर।

2. उत्तर – आठ ओष्ठय, दन्तोष्ठय, द्रन्त्य, वर्तस्य, तालव्य, मूर्धन्य, कंठ, जिह्वमूलीय।

5.7 संदर्भित पुस्तकें :

1. कपिल देव शास्त्री, भाषाविज्ञान एवं भाषा शास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

2. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, भाषाविज्ञान के सिद्धांत और हिंदी भाषा मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।

5.8 सात्रिक प्रश्न :

1. रूपिम का स्वरूप स्पष्ट करते हुए उसके भेदों का परिचय दीजिए ?

2. स्वनिमिक विश्लेषण को परिभाषित करते हुए हिंदी स्वनिमों का विश्लेषण कीजिए?

*****

इकाई-6

रूपविज्ञान का स्वरूप

6.1 भूमिका

6.2 उद्देश्य

6.3 रूपविज्ञान का स्वरूप

- 6.3.1 रूप परिवर्तन की दिशाएं
- 6.3.2 रूप परिवर्तन के कारण
- 6.3.3 रूपिमविज्ञान अथवा रूपग्रामविज्ञान (Morphemics)
- 6.3.4 रूपिम या रूपग्राम (Morfeme)
- 6.3.5 उपरूप अथवा संरूप (Allomorph)
- 6.3.6 रूपस्वनिमविज्ञान (Morphophnemics)
- स्वयं आकलन के प्रश्न

6.4 सारांश

6.5 कठिन शब्दावली

6.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उतर

6.7 संदर्भित पुस्तकें

6.8 सात्रिक प्रश्न

6.1 भूमिका

रूपविज्ञान में रूप या पद का विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन किया जाता है। वर्णनात्मक रूपविज्ञान में किसी भाषा या बोली के किसी एक का अध्ययन होता है, ऐतिहासिक में उसके विभित्र तथ्यों के रूप का अध्ययन कर उसमें रूप-रचना का इतिहास या विकास प्रस्तुत किया रहता है, और तुलनात्मक रूपविज्ञान में दो या अधिक भाषाओं के रूपों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

6.3 उद्‌देश्य

1. रूप विज्ञान के विषय में जानकारी।
2. रूप के भेद की जानकारी।
3. रूप परिवर्तन की दिशाएं का बोध।

6.3 रूपविज्ञान का स्वरूप :

यहां पहला प्रश्न यह उठता है कि 'पद' या 'रूप' क्या है? भाषा की इकाई है, अर्थात् भाषा को वाक्यों में तोड़ा जा सकता है। उसी प्रकार वाक्य के खंड शब्द होते हैं और शब्द को ध्वनियाँ। एक ध्वनि या एक से अधिक ध्वनियों से शब्द रहता है, और एक शब्द या एक से अधिक शब्दों से वाक्य बनता है। यहीं 'शब्द' शब्द का सामान्य या शिथिल प्रयोग है। थोड़ी गहराई में उतरकर देखा जाय तो कोश में दिए गये सामान्य शब्द और वाक्य में प्रयुक्त 'शब्द' एक नहीं है। वाक्य में प्रयुक्त शब्द में कुछ ऐसा भी होता है, जिसके आधार पर वह अन्य शब्दों से अपना सम्बन्ध मिला सके या बाँध सके। लेकिन कोश में दिये गये 'शब्द' में ऐसा कुछ भी होता। यदि वाक्य के शब्द एक-दूसरे से अपना सम्बन्ध न दिखला सके तो वाक्य बन ही नहीं सकता। इसका आशय यह है कि शब्दों के दो रूप हैं, एक तो शुद्ध रूप है या मूल रूप है जो कोश में मिलता है, और दूसरा वह रूप है जो किसी प्रकार के सम्बन्ध तत्त्व से युक्त होता है। यह दूसरा, वाक्य में प्रयोग के योग्य रूप ही 'पद' या रूप कहलाता

संस्कृत में 'शब्द' या मूल रूप को 'प्रकृति' या 'प्रातिपादिक' कहा जाता है और सम्बन्ध स्थापन के लिए जोड़े जाने वाले तत्त्व को प्रत्यय। महाभाष्यकार पतंजलि कहते हैं-

नापि केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या नापि केवल प्रत्यय।

अर्थात वाव्य में न तो केवल प्रकृति का प्रयोग हो सकता है न केवल 'प्रत्यय' का। दोनों मिलकर मुक्त होते हैं। दोनों के मिलने से जा बनता है वही 'पद' या रूप है। पाणिनि के सुप्तिघन्तं पदं (सुप और तिड, जिनके अंत में हो, वे पद है) में भी पद की परिभाषा रही है। यहाँ प्रत्यय या विभक्ति को सुप और तिङ (सुप तिडौ विभाक्ति संज्ञो स्तः) कहा गया है।

उदाहरण के लिए, 'पत्र' शब्द को लें। यह एक शब्द मात्र है। संस्कृत के किसी वाक्य में इसे प्रयोग करना चाहें। तो इसी रूप में हम इसका प्रयोग नहीं कर सकते वैसा करने के लिए इसमें कोई सम्बन्ध सूचक विभक्ति जोडनी होगी। जैसे 'पत्र पतति' (पत्ता गिरता है)। शुद्ध शब्द तो 'पत्र' है और वाक्य में प्रयोग करने के लिए उसे भी पत्र का रूप धारण करना पड़ा है। अर्थात् 'पत्र' शब्द है और 'पत्र' पद।

स्थान-प्रधान या अयोगात्मक भाषाओं (जैसे चीनी आदि) में शब्द और पद का यह भेद नहीं दिखाई पड़ता। इसका कारण यह है कि वहाँ शब्दों में सम्बन्ध दिखाने के लिए किसी सम्बन्धतत्त्व (विभिक्ति आदि) के जोड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती। शब्द के स्थान से ही शब्द का सम्बन्ध अन्य शब्द से स्पष्ट हो जाता है, या दूसरे शब्दों में भी विभक्ति आदि जोड़े किसी वाक्य में अपने विशिष्ट स्थान पर रखे जाने के कारण 'शब्द' पद बन जाता है। हिन्दी तथा अंग्रेजी आदि भारोपीय कुल की भाषाएँ भी कुछ अंशों में इस प्रकार की हो गई है।

उदाहरण के लिए, 'लडडू' हिन्दी का एक शब्द है। इस वाक्य में रखना हुआ, तो बिना किसी परिवर्तन के, या विभक्ति आदि लगाकर पद बनाये बिना ही, रख दिया। 'लडडू' गिरता है। और 'लडडू' ने वाक्य में जाते ही अपने स्थान के कारण (यहाँ कर्ता का स्थान है) अपने को पद बना लिया और उसका अन्य शब्दों से सम्बन्ध स्पष्ट हो गया। और 'राम लडडू खाता है' में भी वही 'लडडू' है, लेकिन स्थान-विशेष के कारण यहाँ उसके सम्बन्ध और प्रकार के हो गये हैं। वह कर्त्ता न होकर कर्म है। अंग्रेजी से भी इस प्रकार के अगणित उदाहरण लिए जा सकते हैं। जैसे Ram killed Mohan तथा Mohan killed Ram.

शब्द

'पद' शब्द पर ही आधरित होते हैं अत: पहले संक्षेप में शब्द-रचना विचारणीय है। एकाक्षर परिवार की भाषाओं में शब्द की रचना का प्रश्न ही नहीं उठता उनमें तो केवल एक ही इकाई होती है, जिसमें विकार कभी नहीं होता और जिसे उन शब्द या पद सब कुछ कह सकते हैं। कुछ प्रश्लिष्ट-योगात्मक (पूर्ण) भाषाओं में पूरे वाक्य का ही शब्द बन जाता है-

जैसे पीछे हम लोग 'नाधोलिनिन' आदि देख चुके हैं। ऐसे शब्दों पर भी यहाँ विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि उनका रूप मात्र ही शब्द सा है। वे असल में वाक्य ही है। ये वाक्य जिन शब्दों से बनते हैं, वे भी एक प्रकार से बने बनाये शब्द है, अत: उन पर भी विचार करने की यहाँ आवश्यकता नहीं। शेष अधिकतर भाषाओं में शब्द की रचना धातुओं में पूर्व, मध्य या पर (आरम्भ, बीच में, अन्त में) प्रत्यय जोड़कर होती है।

भारोपीय परिवार की भाषाओं में शब्द की रचना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसमें प्रत्येक शब्द का विश्लेषण धातुओं तक किया जा सकता है। (समेटिक परिवार में यही बात हैं) धातुएं विचारों की धोतिका होती है। शब्द बनाने के लिए उपसर्ग (पूर्वप्रत्यय) और प्रत्यय दोनों ही आवश्यकतानुसार जोड़े जाते हैं। उपसर्ग जोड़ने से मूल के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है, जैसे बिहार, संहार, परिहार आदि में प्रत्यय जोड़कर उसी अर्थ के 'शब्द' या 'पद' बनाए जाते हैं. जैसे 'कृ' धातु के तृच प्रत्यय जोड़ने से कृत शब्द बना। प्रत्यय भी दो प्रकार के होते हैं। एक, जो सीधे धातु में जोड़ दिये जाते हैं, उन्हें 'कृत्त' कहते हैं। दूसरे को 'तद्धित' कहते हैं। तद्धित को धातु में कृत् प्रत्यय जोडने के बाद जोड़ा जाता है।

'शब्द' को वाक्य में प्रयुक्त होने के योग्य बना लेने पर, उसे 'पद' की संज्ञा दी जाती है। अयोगात्मक भाषाओं में पद नाम की शब्द से कोई अलग वस्तु नहीं होती, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। वहीं शब्द स्थान के कारण पद बन जाता है। योगात्मक भाषाओं में पद बनाने के लिए शब्द में सम्बन्धतत्त्व के जोड़ने की आवश्यकता होती है।

6.3.1 रूप-परिवर्तन की दिशाएँ

रूप-परिवर्तन सामान्यतया दो दिशाओं में होता है :-

1. सरलीकरण-हेतु समरूपता।
2. सन्देह-निवारणार्थ नए रूपों की उत्पत्ति।

1. सरलीकरण-हेतु समरूपता :- विभिन्न भाषाओं के प्राचीन और नवीन व्याकरणों को देखने से ज्ञात होता है कि विश्व की प्राय: सभी भाषाओं के प्राचीन व्याकरणों में शब्दरूपों और धातुरूपों की संख्या बहुत अधिक थी। अपवाद-नियमों की संख्या भी बहुत थीं। वचन, कारक और लकारों या वृत्तियों (Moods) को संख्या अधिक थी। बाद में सरलीकरण के हेतु अपवादों की संख्या कम या सर्वथा समाप्त कर दी गई। इससे जन-साधारण अपवादों के उलझन में न फंसकर सामान्य नियमानुसार प्रयोग करने लगा। जैसे- वैदिक संस्कृत में - शब्दरूपों में प्र० बहु० में देवा:, देवास: और तृतीया बहु० में देवै:, देवेभि: आदि दो-दो रूप प्रचलित थे। संस्कृत व्याकरण में केवल प्र० बहु० - देवा: और तृ० बहु० देवै: रूप रह गए। इसी प्रकार इकारान्त उकारान्त आदि शब्दों के रूपों में बहुत वैकल्पिक रूप थे। इनको हटाकर संस्कृत में एक-एक रूप रह गए। प्राकृत में आने पर शब्द-रूपों और धातु- रूपों की संख्या बहुत कम रह गई। प्राकृत

में द्विवचन का सर्वथा अभाव हो गया। चतुर्थी का अभाव हो गया। प्रथमा और द्वितीया बहुवचन के रूप प्राय: एक हो गए। धातुरूपों में लङ्, लुङ् और लिट् लकारों का अभाव हो गया। आत्मनेपदी रूपों का भी प्राय: अभाव हो गया। अधिकांश शब्दरूप अकारान्त राम आदि के तुल्य चलने लगे। हलन्त शब्दों के अन्तिम अक्षरों का या तो लोप हो गया या उनको अकारान्त बनाकर राम के तुल्य रूप चले। जैसे- धनवत् का धनवन्त, श्रीमत् का श्रीमन्त बनाकर राम के तुल्य रूप चले। क्रिया-रूपों में दस गणों के स्थान पर केवल दो गण दोष रहे। भ्वादिगण और चुरादिगण शेष रहे। दोनों गणों के रूप समान ही चलते हैं। हिन्दी में आते-आते कारक-चिन्ह् सुप् के स्थान पर स्वतन्त्र कारक चिह्न लगने लगे। इससे शब्दरूप चलाने का झंझट समाप्त हो गया। इसी प्रकार धातु-रूपों के लिए तिङ् के स्थान पर परसर्ग ता, था आदि। काल चिन्ह् प्रयुक्त होने लगे। इससे धातु रूप चलाने की आवश्यकता समाप्त हो गई। अंग्रेजी में Go-Went जैसे अपवादों को कम करके भूतकाल का चिन्ह् ed सामान्य रूप से प्रयुक्त होने लगा।

अंग्रेजी में बली (strong) क्रियाओं के रूपों के स्थान पर निर्बल (weak) क्रियाओं के रूप, समीकरण हेतु, स्थान लेते जा रहे है।

इसी प्रकार संस्कृत के तीन लिंगों के स्थान पर पाली, प्राकृत आदि में दो लिंग-पुंलिग, स्त्रीलिंग; तीनों वचनों के स्थान पर दो वचन - एक०, बहुवचन, दस गणों के स्थान पर दो गण, धातु-रूपों में तीन पदों के स्थान पर केवल परस्मैपद आदि सरलीकरण के साधनों से अनेक प्राचीन रूपों का लोप हो गया।

2. संदेह-निवारणार्थ नए रूपों की उत्पत्ति :- सरलीकरण के द्वारा अनेक रूपों के स्थान पर समानरूप हो जाने के कारण संदेह और भ्रम उत्पन्न होने लगे। इनके निवारणार्थ नए प्रयत्न किए गए। कारकों में भेद के लिए परसर्ग प्रयोग में आए। जैसे-को, ने, से, का, पर आदि। इस प्रकार नए कारक चिन्ह्रो की उत्पत्ति हुई। क्रियारूपों में कालभेद के लिए ता, था, गा आदि पर सर्ग लगे। संस्कृत में तिङन्त क्रिया रूप तीनों लिंगों केलिए एक थे, जैसे बालक: पठति, बालिका पठति, बाल: पतति, कुपारी पतति, परंतु हिन्दी में लिंगभेद से भेद होता है। पुलिंग में राम, जाता है, जाएगा, गया आदि स्त्रीलिंग में -सुशीला जाती है, जाएगी, गई आदि।

प्रांतीय भेद के कारण कुछ नए प्रयोग विभिन्न उपभाषाओं में मिलते हैं। जैसे भोजपुरी में वर्तते (है) से बाटें। खाना खात बाटे (खाना खा रहा है)। कुछ और रूप घिस कर-'तू का करत बाड़' के स्थान पर 'तू का करताड़' (करत + बाड़ = करताड़) (तू क्या कर रहा है ?) जैसे प्रयोग भी बोलचाल की भाषा में प्रचलित हैं।

6.3.2 रूप-परिवर्तन के कारण

संक्षेप में रूप-परिवर्तन के निम्नलिखित कारण हैं :-

1. सरलीकरण - जिस प्रकार सरलता के लिए ध्वनियों में एकरूपता लाई जाती है और ध्वनि-परिवर्तन होता है, उसी प्रकार रूपों में भी सरलता के लिए परिवर्तन होने हैं। जैसे-उपर्युक्त प्रकरण में दिए गए उदाहरणों में द्विवचन का लोप, चतुर्थी आदि कारकों का अभाव, लुङ् आदि लकारों का अभाव। वैदिक संस्कृत में तुम् (को, के लिए) के अर्थ में से, असे, अध्यै, ऐ, इष्ये, अम्, तो:, तवे, तवै आदि प्रत्यय हैं, किन्तु संस्कृत में केवल तुमुन् (तुम्) प्रत्यय ही रह गया हैं। जैसे-कृ कर्तुम् (करने को)। वैदिक व्याकरण में लेट् लकार था, जो संस्कृत में सर्वथा लुप्त हो गया। इसी प्रकार हिन्दी में संस्कृत के सुप् और तिङ् प्रत्ययों का लोप हो गया और परसर्गो से उसका काम लिया जाने लगा। इसके मूल में सरलीकरण की प्रवृत्ति है।

2. नवीनता की अभिरुचि - जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नवीनता की अभिरुचि दिखाई पड़ती हैं। भाषा में भी इसका प्रभाव स्पष्टरूप से दिखाई पड़ता है। नवीनता के लिए कुछ नये शब्दों की सृष्टि की जाती है या अप्रचलित शब्दों का नये अर्थ में प्रयोग देखा जाता है। संस्कृत में प्रिय और प्रियतम तथा प्रिया-प्रियतमा प्रचलित हैं। हिन्दी में प्रेयसी का प्रयोग प्रियतमा के अर्थ में नवीनता का द्योतक है। बंगला में मार्ग के अर्थ में सरणि या सरणी का प्रयोग बहुत प्रचलित है। नवीनता के लिए उच्चै:- श्रवा: के अनुकरण पर देवश्रवा:, सत्यश्रवा:, विश्वयवा: आदि नाम मिलते है। इसी प्रकार

मृदुता के लिए मार्दव, पटुता के लिए पाटव, शब्द प्रयोग में आने लगे है। भाषा में यह नवीनता का कारण हो जाती है। सुन्दरता के लिए सौन्दर्य, आदि कभी-कभी क्लिष्टता और अरुचि

3. सादृश्य – विश्व की सभी भाषाओं में रूप-परिवर्तन सादृश्य (Analogy) का बहुत बड़ा हाथ चल रहा है। इस सादृश्य का कारण सरलता और समीकरण की प्रवृत्ति रही है। करिन् + आ = करिणा, दण्डिन् + आ = दण्डिना में 'ना' लगना व्याकरण की दृष्टि से पूर्णतया शुद्ध है। इसका मिश्रण पर हरि + अ - हरिणा, कवि + आ = कविना; वारि + आ = वारिणा, भानु + आ = भानुना आदि रूप बने हैं। ये व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध होते परंतु सादृश्य के आधार पर 'आ' के स्थान पर 'ना' का प्रयोग होना लगता है। इसी प्रकार का प्रयोग होम लगा। इस प्रकार द्वा + दश = द्वादश के अनुकरण पर एक + दश एका- दश हो गया। इसमें आ आने का कोई कारण नहीं है। श्रीणि से तीन, तीनों शब्द बनेंगे, परन्तु द्वौ से 'दो' बन सकता है, 'दोनों' नहीं। यह 'दोनों' शब्द तीनों के सादृश्य पर बना है।

4. अज्ञता – अज्ञान के कारण भी रूप-संबन्धी अनेक परिवर्तन दिखाई पड़ते है। जैसे- उपर्युक्त के स्थान पर 'उपरोक्त', तदनन्तर या तत्पश्चात् के स्थान पर 'उपरान्त', श्रीयुत के स्थान पर श्रीयुत, विद्वत्ता के स्थान पर विद्वानता और महत्ता के स्थान पर महानता। ये प्रयोग अज्ञता-सूचक है, परन्तु चल पड़े है। मरना > मरा, भरना > भरा के तुल्य करना > करा शुद्ध प्रयोग था, पर लेना > लिया, देना > दिया के सादृश्य पर करना का 'किया' प्रयोग चल पड़ा। अशुद्ध होने पर भी चल पड़ा है। इसी प्रकार अभि + श में अ को निषेधार्थक समझकर कुछ लोग 'भिज्ञ' प्रयोग करते हैं। शुद्ध 'स्रष्टा' के स्थान पर 'सृष्टा', शुद्ध 'अनुगृहीत' के स्थान पर अनुग्रह के सादृश्य पर 'अनुग्रहीत' अशुद्ध प्रयोग अज्ञता के कारण है।

5. बल (Stress, Emphasis) – किसी शब्द पर बल देने के लिए भी भाषा में रूप-परिवर्तन किया जाता है। 'श्रेष्ठ' शब्द 'तम' अर्थ वाला (Superlative) है, परन्तु श्रेष्ठ से लोग सन्तुष्ट न रहकर बल देने के लिए सर्वश्रेष्ठ और 'श्रेष्ठतम' का भी प्रयोग करते हैं। यह 'डबल सुपरलेटिव' हो गया, जो कि निषिद्ध है। इसी प्रकार स्वादु से स्वादिष्ठ (स्वादुतम, अत्यधिक स्वाद वाला) शब्द बना है, 'अत्यन्त स्वादिष्ठ' शब्द बल देने के लिए प्रयुक्त होने लगा।

बल देने के लिए कृछ अशुद्ध प्रयोग भी चल पड़ते हैं। जैसे- अनेक (एक से अधिक) शब्द बहुवचन का बोधक है। इसका भी 'अनेकों' बहुवचनान्त प्रयोग (अनेकों विद्वानों ने, आदि) चल पड़ा है। भोजपुरी में 'फजूल' (व्यर्थ) के अर्थ में अशुद्ध शब्द 'बेफजूल' बेकार अर्थ में चलता है। यद्यपि बे (नहीं) + फजूल (व्यर्थ) का अर्थ होगा - सार्थक या जो व्यर्थ नहीं है।

6.3.3 रूपिमविज्ञान अथवा रूपग्रामविज्ञान (Morphemics)

रूपिमविज्ञान या भाषाओं का रूपिमिक अध्ययन रूपविज्ञान का एक प्रमुख अंग है। इसका विकास अपेक्षाकृत आधुनिक है। इसमें किसी भाषा के रूपों (morph) का अध्ययन-विश्लेषण करके उनके अर्थ एवं वितरण आदि के आधार पर रूपग्राम (sorpheme) एवं उपरूप अथवा संरूप (allomorph) का निर्धारण किया जाता है। साथ ही दो या अधिक रूपिमों के योग से जब किसी संयुक्त रूपिम (compleñ sorpheme) या मिश्रित रूपिम (compound morpheme) का निर्माण होता है। उसमें यह भी देखा जाता है कि योग के पूर्व की तुलना में उसमें कोई ध्वन्यात्मक परिवर्तन तो नहीं आया ओर यदि आता है तो उसका आधार क्या है?

6.3.4 रूपिम अथवा रूपग्राम (Morpheme)

रूप या पद वे अवयव या घटक हैं, जिनसे वाक्य बनता है। उसके रसोईघर में सफाई होगी वाक्य में पाँच पद के रूप हैं, जिन्हें सामान्य भाषा में शब्द कहते हैं। इन रूपों में सभी एक प्रकार के नहीं हैं। कुछ तो छोटे से छोटे टुकड़े हैं, उन्हें और छोटे खंडों में नहीं विभाजित किया जा सकता, जैसे में। कुछ को छोटे खंडों में बाँटा जा सकता है, जैसे कोई घर को 'रसोई' और 'घर' में। यदि रसोईघर को और छोटे टुकड़ों में बाँटना चाहें तो 'घ' और 'र' कर सकते हैं, यद्यपि इनमें न तो 'घ' का कोई अर्थ है और न 'र' का इसलिए ये दोनों खंड तो हैं, किन्तु सार्थक (विशेषत: इस प्रसंग

में) नहीं हैं। भाषा या वाक्य की लघुतम सार्थक ईकाई को रूपग्राम अथवा रूपिम कहते हैं। उसका आशय यह है कि उपर्युक्त वाक्य में उस, के, रसोई, घर, में, साफ, ई, हो, ग, ई, ये दस रूपिम है। रूपिम के भेद दो आधारों पर हो सकते हैं। रचना पर प्रयोग की दृष्टि से रूपग्राम प्रमुखतः दो प्रकार के होते है। (क) मुक्त रूपिम (freeh morpheme) जो अकेले या अलग भी प्रयोग में आ सकते है। उपर्युक्त घर में रसोई, घर, साफ, इसी प्रकार के हैं। ये अलग, मुक्त या स्वतन्त्र रूप से आ ला सकते है (जैसे रसोई बन चुकी है) और अन्य रूपिमों के साथ भी आ सकते हैं (जैसे रसोईघर)। (ख) बद्ध रूपिम (bond morpheme) जो अलग नहीं आ सकते, जैसे, 'ता' (एकता, सुन्दरता) या ई (जैसे घोड़ी, लड़की, खड़ी आदि में) आदि। इन दो के अतिरिक्त एक तीसरा प्रकार भी कुछ लोग मानते हैं, जिसे (ग) अर्द्धबद्ध, अर्द्धमुक्त, मुक्तबद्ध या बद्धमुक्त की संज्ञा दी जा सकती है। इस तीसरे में ऐसे रूपिम आते हैं जो अर्द्धबद्ध होते हैं और आधे मुक्त, या जो एक दृष्टि से मुक्त कहे जा सकते हैं तो दूसरी दृष्टि से बद्ध। अंग्रेजी का तिवठ इसी प्रकार का है। किसी अन्य रूपिम से मिलता नहीं, सर्वदा अलग रहता है। इसलिए मुक्त है लेकिन साथ ही यह सर्वदा किसी के आश्रित रहता (from him I from shop) आदि। अकेले किसी भी प्रकार की रचना का निर्माण नहीं कर सकता, अतः बद्ध है। हिन्दी परसर्ग (ने, को, में, से) जब संज्ञा शब्दों के साथ आते हैं (राम से, मोहन को) अलग रहते हैं, यद्यपि सर्वनाम के साथ ये बद्ध रूपिम (जैसे उसने, मुझसे, तुमको आदि) हो जाते हैं। मेरे विचार में तात्त्विक दृष्टि से इस तीसरे भेद को अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि स्थान की दृष्टि से अलग होकर भी अर्थ की दृष्टि से ये हमेशा बद्ध रहते हैं। बद्ध रूपिम के तीन उपभेद करके इन्हें समाहित किया जा सकता। (अ) मुक्त – जो अर्थ की दृष्टि से बद्ध होकर भी स्थान की दृष्टि से सर्वदा मुक्त रहते हैं, जैसे अंग्रेजी के from with आदि। (ब) बद्व – जो स्थान की दृष्टि से भी सर्वदा बद्व रहते हैं। जैसे अंग्रेजी (by, nessed) संस्कृत (अः अम) या हिन्दी (ई. आई आदि के प्रत्यया (स) बद्धमुक्त – जो कभी तो बद्ध रहते हैं और कभी मुक्त। जैसे हिन्दी परसर्ग, जो संज्ञा के साथ मुक्त रहते है (जैसे राम को) और सर्वनाम के साथ बद्ध (जैसे उसको)।

रचना और प्रयोग के आधार पर ही रूपिम के दो अन्य भेदों का उल्लेख भी यहाँ किया जा सकता है। जब दो या अधिक ऐसे रूपिम एक में मिलते हैं, जिनमें अर्थतत्त्व केवल एक हो (जैसे ऊपर के वाक्य में 'उसके', 'सफाई', 'होगी') तो उस पूरे रूप को संयुक्त रूपिम कहते हैं। यदि एक से अधिक अर्थतत्त्व हों तो मिश्रित रूपिम कहते हैं। ऊपर के वाक्य में 'रसोईघर' मिश्रित रूपिम है।

अर्थ और कार्य के आधार पर रूपिम के दो भेद होते हैं: (क) अर्थदर्शी रूपिम जिनका स्पष्ट रूप से अर्थ होता है और अर्थ व्यक्त करने के अतिरिक्त जो और कोई कार्य नहीं करते। इन्हीं को अर्थतत्त्व भी कहते हैं। प्राचीन व्याकरण में ही stem, root धातु, मस्दर या माद्दा कहा गया है। विचारों का सीधा सम्बन्ध इससे होता है। भाषा के मूल आधार ये ही हैं। व्याकरणिक या प्रायोगिक दृष्टि से ये कई प्रकार के हो सकते हैं: जैसे क्रिया (हो, खा, go, भू), संज्ञा (राम, cat किताब) सर्वनाम (वह, तुम), विशेषण (अच्छ्, बड़, सुन्दर, good) आदि। हर भाषा में इस वर्ग के रूपिमों की संख्या कई हजार साथ होती है, दूसरे प्रकार के रूपिम में एक से बहुत अधिक। (ख) सम्बन्धदर्शी रूपिम या कार्यात्मक रूपिम इन्हें निरर्थक तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह कहना अनुचित न होगा कि इनमें अर्थ का प्राधान्य नहीं होता। इनका प्रमुख कार्य होता है 'सम्बन्ध-दर्शन' या 'व्याकरणिक कार्य। इसीलिए इन्हें सम्बन्धतत्त्व भी कहते हैं। यों इन्हें व्याकरणिक तत्त्व कहना शायद अधिक ठीक होता है। संस्कृत में प्रत्यय, तिङ, सुप् या हिन्दी में परसर्ग प्रत्यय आदि यही हैं। इनके बहुत से भेद होते हैं, इस प्रसंग में 'सम्बन्ध' शब्द काफी व्यापक है। इनमें यह भाव तो है ही कि वे रूपिम एक शब्द का सम्बन्ध वाक्य में दूसरे से दिखाते हैं, साथ ही ये लिंग, वचन, पुरुष, काल, वृत्ति या अर्थ (mood) और भाव (बार-बार, आधिक्य) आदि की दृष्टि से अर्थदर्शी रूपिम में परिवर्तन भी लाते हैं। (जैसे लडक् अर्थदर्शी रूपग्राम है। इसमें 'ई', 'आ', 'इयाँ', 'ए'. 'ओं' आदि सम्बन्धदर्शी रूपिम या सम्बन्धतत्त्वों को जोड़कर लड़की, लड़का, लड़कियाँ, लड़कियों, लड़के, लड़कों आदि संयुक्त रूपिम या रूप या पद बना सकते हैं।) इसीलिए इन्हें कार्यात्मक रूपिम (Functional morpheme) कहना अधिक उचित है। इस श्रेणी के रूपिमों की संख्या हर भाषा में कुल सौ से अधिक नहीं होती, अर्थात् अर्थदर्शी रूपिमों से बहुत कम होती है।

कुछ लोग खंडीकरण (segmentation) के आधार पर भी रूपिम के दो भेद करते हैं। एक तो (क) खंड रूपिम (segmental) जिन्हें तोड़कर अलग किया जा सके। ऊपर के सारे रूपिम इसी प्रकार के हैं। दूसरे (ख) अखंड रूपिम (Suprasegmental) है। बलाघात (tres), सुर (tone, pitch) सुरलहर (intonation) आदि रूप में स्वीकृत रूपिम इस श्रेणी के हैं। उन्हें दो टूक रूप में खडित नहीं किया जा सकता। ध्वनिमविज्ञान (phonemics) में भी इसीलिए इन्हें अखंड या (Suprasegmental) कहा जाता है।

6.3.5 उपरूप अथवा संरूप (Allomorph)

कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि कई रूपिमों का अर्थ एक होता है। यदि अंग्रेजी से उदाहरण लें तो संज्ञा शब्दों का एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए 'स' (hats, cats, books, tops आदि) 'ज' (schools, eyes, woods, dogs आदि। 'इज' (horses, bridges, rosed आदि) 'इन' (oxen) 'रिन' children तथा शून्य रूपिम (या सम्बधतत्व) जैसे बहुवचन (sheep) आदि का प्रयोग होता है। इसका आशय यह है कि स, ज, इज, इन, रिन, शून्य, रूपिम, बहुवचन बनाने वाले रूमिम हैं। इनका अर्थ एक है इसीलिए संभावना यह हो सकती है कि ये अलग-अलग रूपिम न होकर एक ही रूपग्राम के अंग या विभिन्न रूप हों। जिन दो या दो से अधिक समानार्थी रूपों के एक रूपिम के अंग होने का संदेह होता है, उन्हें संदिग्ध समूहश या 'संदिग्ध युग्म' (suspicious pair) कहते हैं। लेकिन केवल संदिग्ध समूह या संदिग्ध युग्म होने के आधार पर ही उन्हें एक से रूपिम के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता। संदेह मिटाने के लिए यह देखना पड़ता है कि ये रूप परिपूरक वितरण है (complementary distribution) में हैं या नहीं। इसका अर्थ यह है कि जिन ध्वन्यात्मक या रूपात्मक परिस्थितियों में एक रूप का प्रयोग होता है, दूसरों का भी उन्हीं में होता है, या सबका अलग-अलग। यदि सबका एक ही परिस्थितियों में प्रयोग होता है तो इसका आशय यह है कि उनका आपस में विरोध है। एक के स्थान पर दूसरा भी आ जाता है। यदि ऐसा है तो उन्हें एक रूपिम का अंग (जिन्हें उपरूप अथवा संरूप (allomorph) कहते हैं) नहीं माना कि जा सकता। वे सभी अलग-अलग रूपिम हैं। किंतु, यदि परिपूरक वितरण में हैं, अर्थात् वितरण या प्रयोग की दृष्टि से सभी का स्थान अलग-अलग बँटा है, जहाँ एक आता है वहाँ दूसरा नहीं, और जहाँ दूसरा आता है वहाँ तीसरा नहीं, तो इसका आशय यह है कि उनका आपस में विरोध नहीं है और ऐसी स्थिति में ये सभी एक ही रूपिम के उपरूप के (allomorph) हैं। ऊपर के इज, इन, नि तथा शून्य रूपिम के वितरण (distribution) का विश्लेषण करते हैं, तो यह पाते हैं कि 'स' तो ऐसे शब्दों के अन्त में आ रहा है, जिनके अन्त में स, श के अतिरिक्त और कोई अघोष व्यंजन हो; 'इज' ऐसे शब्दों के अन्त में आता है जिनके अन्त में स, ज, या श ध्वरिन हो 'इन' केवल ऑक्स, ब्रदर आदि शब्द कुछ निश्चित शब्दों या रूपिमों के अन्त में आता है, इसी प्रकार 'रिन' चाइल्ड के साथ और शून्य रूपिम भी केवल डीयर, शीप, काड आदि कुछ निश्चित शब्दों के साथ ही आता है। इसका आशय यह है कि ये विरोधी नहीं हैं और इनका वितरण परिपूरक है। विशिष्ट परिस्थितियों में एक आता और उसमें दूसरा नहीं आता। अतएवं इन्हें एक ही रूपिम के संरूप माना जा सकता है। निष्कर्ष यह निकला कि यदि कई रूप (क) समानर्थी हों, (ख) एक प्रकार की रचना में आयें और (ग) परिपूरक वितरण में हों, अर्थात् सबके आने की स्थिति निश्चित रूप में से अलग-अलग हो, विरोध न हो, या एक ही स्थिति में एक से अधिक न आते हों तो उन सबको ही 'रूपिम' के उपरूप माना जाता है। उन्हीं उपरूपों में किसी एक को (जो प्रायः अधिक प्रयुक्त हो या जिसे मूल आधार मानकर ध्वन्यात्मक दृष्टि से अन्य को स्पष्ट किया जा सके) रूपिम की संज्ञा दे दी जाती है। उपर्युक्त बहुवचन के प्रत्ययों में कहा जा सकता है कि अंग्रेजी में संज्ञा शब्दों के बहुवचन बनाने में 'ज' रूपिम का प्रयोग होता है। इस 'ज' के स० रूप ज, स, इज, इन, रिन तथा शून्य हैं। 'ज' घोष ध्वनियों से अन्त होने वाले शब्दों के साथ जाता है। अघोष ध्वनियों से अन्त होने वाले शब्दों के साथ जाता है। अघोष ध्वनियों से अंत होने वाले शब्दों के अंत में 'ज' का उच्चारण ठीक से नहीं (grass rose) हो सकता है। अतः ऐसी स्थिति में बीच में एक स्वर (इ) आ जाता है और यह 'इज' हो जाता है, अर्थात् 'ज' रूपिम के ज, स' इज उपरूप ध्वन्यात्मक परिस्थितियों के कारण परिपूरक वितरण लेकिन शेष तीन रूपात्मक या शाब्दिक परिस्थितियों के

कारण। क्योंकि कुछ विशेष शब्दों रूपों या रूपिमों में ही इन, या शून्य रूप का प्रयोग होता है। यहाँ निष्कर्ष यह निकला कि परिपूरक वितरण (complimantary morpholog conditioning) पर निर्भर करता है। संक्षेप में

ज 'ज' को छोड़कर अन्य घोष ध्वन्यंत शब्दों के साथ

स 'स' 'श' - को छोड़कर अन्य अघोष ध्वन्यंत शब्दों के साथ

इज स, श, ज अत्य शब्दों के साथ

(-ज) /इन / ऑक्स, ब्रदर आदि कुछ सीमित शब्दों के साथ

/रिन/ चाइल्ड के साथ

शीप, डीयर, कॉड आदि कुछ सीमित शब्दों के साथ

इसी प्रकार हिंदी में बहुवचन के लिए रूपिम उपरूप वितरंण

-(ओं) 1. ओं- सपरसर्ग रूप के लिए सभी शब्दों में। जैसे घरों, घोडों, कवियों, हाथियों, साधुओं, भालुओं, पुस्तकों, लताओं, गुड़ियों, शक्तियों, लड़कियों, वस्तुओं, बहुओं, गोओं आदि।

2/ ओ. संबोधन में सभी शब्दों (घोड़ों), कवियों, साधुओं आदि) के साथ।

3./ए/ अपरसर्ग रूप के लिए अकारतं पु. शब्दों (जैसे घोड़े, लड़के, बेटे के साथ।

4./एन अपरसर्ग रूप के लिए विज्ञानंत (किताबें) आकारांत (माताएं) उकारांत (वस्तुएं), उकारांत (बहुएं) औकारांत (गौएं) स्त्री शब्दों के साथ।

5/आं अपरसर्ग रूप के लिए इकरांत (जातियां), ईकारांत (नदियां) तथा इयांत (गुड़िया) शब्दों के साथ।

6/ अपसरर्ग रूप व्यंजनांत (घर), इकारांत (कवि), एक अरांत (हावी), उकारांत (साधु) और उकारांत (भालू) पु. शब्दों में ।

टिप्पणी

(क) अपमान वर्ग (1) पिता जैसे तत्सम शब्द : (ii) पुनरावृत्त शब्द जैसे चाचा, नाम, दादा, नाना, काका, बाबा, लाला, (iii) मुखिया जैसे कुछ अन्य शब्द।

(ख) गण, लोग, जन जोड़कर भी बहुवचन बनते हैं। यहां छोड़ दिया गया है।

(ग) उपर्युक्त रूपों में 'य' का आगम, दीर्घ स्वर का इस्व हो जाना तथा पु. के अंत्य आ का लोप मिलेगा। आगे रूपस्वनिमिक परिवर्तन में इन्हें स्पष्ट किया गया है।

अर्थात अंग्रेजी में बहुवचन का रूपिम 'ज' है जिसके प्रमुख संरूप छः है तथा हिंदी में बहुवचन का रूपिम 'ओ' जिसके प्रमुख संरूप सात है। यह ध्यान देने की बात है कि जितने भी रूपों का प्रयोग होता है वे सात 'उपरूप' कहलाते हैं। उन्हीं में किसी एक को रूपिम माना जा सकता है। यों तो किसी को भी रूपिम माना जा सकता है किन्तु प्रायः या तो उसे रूपिम कहते हैं जिसे आधार पर वितरण को स्पष्ट एवं तर्कसम्मत रूप से रूपस्वनिमिक परिवर्तनों के साथ समझाया ज सके या उसे मानते हैं जिसका प्रयोग अन्यों से ज्यादा होता हों या फिर उसे मानते हैं जिसका प्रयोग ऐतिहासिक दृष्टि प्रतिनिधित्व करने वाला, अधिक प्राचीन या महत्वपूर्ण हो।

निष्कर्षतः यदि एक रूपिम के परिपूरक वितरण वाले कई सतानार्थी रूप (ध्वन्यात्मक दृष्टि से मिलते-जुलते या न मिलते-जुलते) हों तो उन्हें उपरूप की संज्ञा दी जाती है।

6.3.6 रूपस्वनिमविज्ञान (Morphophnemics)

मार्फीनिमक्स या रूपस्वनिमविज्ञान रूपविज्ञान की ही शाखा है। इनमें उन ध्वन्यात्मक या स्वनिमिक परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है जो दो या अधिक रूपों या रूपिम के मिलने पर दृष्टिगत होते हैं इसे दूसरे शब्दों में यों भी

कह सकते ण में कि रूपविज्ञान की वह शाखा है जिससे रूपिम के उन ध्वन्यात्मक परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है जो वाक्य, फेज, इन, स्पि या शब्द के स्तर पर दो या अधिक रूपिम के एक साथ आने पर घटित होते हैं उदाहरणार्थ, ऊपर के उदाहरणों में 'बुक' और 'ज' अंग्रेजी के दो रूपिम है। दोनों के मिलने पर सामान्यतः रूप होना चाहिए 'बुकज' लेकिन होता है 'बुक्स'। इसे रूपस्वनिमिक (Morphophnemics) परिवर्तन कहेंगे। यह परिवतन है 'क' के अघोष होने से 'ज' का अघोष, अर्थात 'स' हो जाना। इस प्रकार परिवर्तन का अध्ययन रूपस्वनिमविज्ञान में होता है। कहना न होगा कि इस रूप में रूपस्वनिमविज्ञान प्राचीन भारतीय परिभाषिक शब्द 'संधि' के निकट है किन्तु वस्तुतः सन्धि में प्रायः केवल उन परिवर्तनों को लिया जाता है जो दो मिलने वाले शब्दों या रूपों में एक के अन्य या दूसरे के आरंभ या दोनों में (राम + अवतार – रामावतार), ध्वनि + अंग – ध्वन्यंग, उत् + गम – उद्गम, तेजः + राशि – तेजोराशि आदि।) घटित होते हैं लेकिन रूपस्वनिमविज्ञान में इसके साथ अन्य स्थानों पर आने वाले परिवर्तन भी लिए जाते हैं। जैसे घोड़ा + दौड़ – घुड़दौड़ ठाकुर + आई – ठकुराई, बूढ़ा + औती बुढ़ौती आदि। बुढ़ौती आदि। इन सभी में हम देखते हैं कि हर दो के बीच में तो परिवर्तन हुए ही हैं लेकिन साथ ही अन्य स्थानों में भी घी- घु, ठा–ठ, बू–बू) परिवर्तन हो गए हैं। इन सारे परिवर्तनों का अध्ययन रूपस्वनिमविज्ञान में होता है। इस प्रकार यह संधि से अधिक व्यापक है और संधि इसका अंग है।

अंतर्राष्ट्रीय भाषा विज्ञान– इस क्षेत्र में भी 'संधि' का प्रयोग रूपस्वनिमाविज्ञान के लिए हो रहा है। इसी आधार पर हिंदी में कुछ लोग इस अर्थ में संधि को परंपरागत अर्थ में अर्थात संधिस्थल पर परिवर्तत के लिए तथा स्वस्वनिमविज्ञान को संधि स्थल पर तथा अन्यत्र दोनों के लिए प्रयोग करने के पक्ष हैं। वस्तुतः रूपस्वनिमिक परिवर्तन दो प्रकार के माने जा सकते हैं। बाह्य (external) जहां शब्द के आदि या अंत में अर्थात उसके बाहरी अंग में परिवर्तन हो जैसे राम अवतार – रामावतार। यहां 'राम के 'म' में परिवर्तन है या ध्वनि + अंग ध्वन्यंग यहां 'नि' और 'अ' दोनों में परिवर्तन है। (2) अभ्यंतर (internal) जहां संधि स्थल से अलग शब्द के भीतर परिवर्तन हो जैसे 'घुड़दौड़' में। इस रूप में 'ब्राह्म स्वनिमिक परिवर्तन' ही परंपरा संधि पर्याय है। स्वतंत्र उच्चारण में या वाक्यांत में रूसी भाषा में शब्दांत का घोष व्यंजन प्रषोष हो जाता है, इसी प्रकार अंग्रेजी शब्दों का अत्य शब्दों के स्वतंत्र उच्चारण में वाक्यांत में प्रयुक्त शब्दों में अंत्य घोष ध्वनि का अघोष हो जाना या 'र' का लोप, संधि में किसी भी प्रकार नहीं आ सकते। निष्कर्षतः संधि और इसे पर्याय न मानकर संधि को रूपस्वनिमिक परिवर्तन का एक भेद मानना अधिक समीचीन है, विशेषतः हिन्दी आदि भारतीय भाषाओं में जिनमें परंपरागत रूप में 'संधि' शब्द विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है।

ये बाह्य और अभ्यंतर तो स्थान की दृष्टि से रूपस्वनिमिक परिवर्तन के भेद थे। रूप की दृष्टि से, मोटे रूप से समीकरण (डाक + घर – डाकघर जिसमें 'ग' के घोषत्व के कारण 'क' भी घोष, अर्थात् 'ग' हो गया हूँः नाग + पुर, – नाकपुर, जिसमें 'प' के अघोषत्व के कारण 'ग' भी अघोष, अर्थात् 'क' हो गया है; मार + डाला – माङ्गाला; दूध दो + दूद्दो) सबसे प्रमुख रूपस्वनिमिक परिवर्तन हैं। यों सूक्ष्मता और विस्तार से यदि देखें तो घोषीकरण (डाग्घर), अघोषीकरण (नाकपुर), पूर्ण समीकरण (अर्थात् सभी दृष्टियों, जैसे हाथ + से हास्से), अपूर्ण समीकरण (अघोष + घोष – घोष + घोष, जैसे वागीश; घोष + अघोष – अघोष + घोष, जैसे आग का आक्का, 'अक्का गोला' आदि) अल्पप्राणीकरण (दूध + दो – दूद्दो), आगम (हाथी + ओं हाथियों कवि + ओं कवियों), लोप (घोड़ा + दौड़ घुड़दौड़); हस्वीकृत (भालू + ओं – भालुओं), (दीर्घीकरण (राम + अवतार रामावतार, हरि + इच्छा हरीच्छा) आदि अनेक रूपों में इस परिवर्तन को पाया जा सकता है। विपर्यय (हिक में (Hits $ Shammeer $ hishtammer) तथा विष्मीकरण (ग्रीक) Thrikh (बालका) दो महाप्राण में एक रह गया, के उदाहरण इक्के–दुक्के मिलते हैं।

ऊपर अंग्रेजी बहुवचन के उदाहरण में 'ज' का अघोष ध्वयंत शब्दों में 'स' हो जाना समीकरण (अघोष) (अघोष + घोष) – अघोष + अघोष) या पूर्ण समीकरण है। हिन्दी बहुवचन बनाने में निम्नाकिंत रूपस्वनिमिक परिवर्तन घटित होते हैं।

(क) 'ओं' जोड़ते समय शब्द के अंत में 'आ' अथवा 'याँ' हो तो उसका लोप कर देते हैं (घोड़ा + ओं = घोड़ों; चिड़ियाँ + ओं = चिड़ियों।

(ख) शब्द के अंत में यदि 'ई' या 'ऊ' हो तो शून्य को छोड़कर कोई भी प्रत्यश जोड़ते समय ह्रस्व 'ई', 'उ' (हस्वीकरण) कर देते हैं (हाथी - हाथियों, बहू - बहुओं, नदी - नदियाँ)

(ग) शब्द के अंत में इ या ई हो तो शून्य प्रत्यय के अतिरिक्त किसी के भी जुड़ने पर प्रत्यय और मूल शब्द के बीच में 'या' का आगम हो जाता है (हाथी + ओं- हाथियों, नदी + औं नदियाँ, कवि + ओं = कवियों, जाति + आँ - जातियाँ)।

आगे 'ध्वनिविज्ञान' अध्याय में ध्वनि-परिवर्तन पर विचार किया जाता है। वस्तुतः ध्वनि-परिवर्तन मूलतः दो प्रकार के होते हैं: (1) ऐतिहासिक, (2) रूपस्वनिमिक। ऐतिहासिक तो उसे कहते हैं जो धीरे-धीरे समय बीतने के साथ विकसित हुआ है और रूपस्वनिमिक उसे कहते हैं जो एक से अधिक रूपों के एक साथ आये मुख्यतः उच्चारण-सुविधा के कारण तुरतं घटित हो जाय। उदाहरण के लिए, 'कर्म का प्राकृत 'कम्म' हो गया, यह समीकरण ऐतिहासिक ध्वनि-परिवर्तन का उदाहरण है तो मार + डाला का 'भाड्डाला' या 'दूद + दो' का 'दूद्दो' रूपस्वनिमिक का। साथ ही रूपस्वनिमिक परिवर्तन रूपिमों के मिलने या विशिष्ट स्थान पर आने से संबंध रखता है, जबकि ऐतिहासिक परिवर्तन के लिए ऐसा बंधन नहीं है।

विषय की दृष्टि से रूपस्वतिमविज्ञान ध्वरिनविज्ञान के अन्तर्गत रखा जा सकता है, यों रूपों से सम्बद्ध होने के कारण लोग इसे रूपविज्ञान में भी प्रायः रखते रहे हैं। इधर इसका महत्त्व इतना बढ़ गया है कि इसे स्वतंत्र स्थान भी दिया जाने लगा है।

स्वयं आकलन के प्रश्न :

1. रूप परिवर्तन की किसी एक दिशा का नाम लिखिए।
2. रूप परिवर्तन कोई कारण लिखिए।

6.4 सारांश

संक्षेप में कह सकते हैं कि रूप विज्ञान के स्वरूप की चर्चा हुई है। किस तरह से रूप विकास करता है और रूप परिवर्तन की कौन-कौन सी दिशाएं हैं। इन दिशाओं के कौन-कौन से कारण माने जाते हैं।

6.5 कठिन शब्दावली : -

रूपिम - भाषा की अर्थवान लघुतम इकाई। इसे पदग्राम भी कहते है।

पद - शब्द जब वाक्य में प्रयुक्त होता है।

6.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर :

1. उतर - पुराने संबंध।
2. उतर - सरलीकरण।

6.7 संदर्भित पुस्तकें :

1. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, सैद्धांतिक एवं अनुपयुक्त भाषा विज्ञान।
2. हरिशचंद्र वर्मा, भाषा और भाषा-विज्ञान।
3. नरेश मिश्र, भाषा और भाषा-विज्ञान।

6.8 सात्रिक प्रश्न :

1. रूप प्रक्रिया का स्वरूप लिखिए।
2. रूप परिवर्तन की दिशाएं लिखिए।

*****

इकाई-7

व्याकरण का स्वरूप

संरचना

7.1 भूमिका

7.2 उद्देश्य

7.3 व्याकरण का स्वरूप

7.3.1 व्याकरण की कोटियां

7.3.1.1 लिंग

7.3.1.2 वचन

7.3.1.3 पुरुष

7.3.1.4 कारक

7.3.1.5 क्रिया

7.3.1.6 काल

स्वयं आकलन के प्रश्न

7.4 सारांश

7.5 कठिन शब्दावली

7.6 स्वयं सकलन प्रश्नों के उत्तर

7.7 सन्दर्भित पुस्तकें

7.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-7
व्याकरण का स्वरूप

7.1 भूमिका :-

व्याकरण भाषा को व्यवस्थित करने का साधन है। व्याकरण के माध्यम माध्यम से हम भाषा व्यवहार सीखते हैं। व्याकरण भाषा की क्रमबद्धता तथा भाषा प्रयोग को देखता है। व्याकरण की कोटियां भिन्न-भिन्न प्रकार की है जिनका विवरण निम्न प्रकार दिया गया है।

7.2 उद्देश्य

(1) भाषा की व्यवस्था की जानकारी।

(2) व्याकरण की परिभाषा का बोध।

(3) व्याकरण की कोटियों का ज्ञान।

(4) लिंग, वचन का बोध।

7.3 व्याकरण का स्वरूप

भावों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा का आश्रय लिया जाता है। भाषा में वाक्य ही वह लघुतम इकाई है, जो भावों को व्यक्त करने में समर्थ होता है। प्रत्येक वाक्य में पद-विभाग की कोटियाँ सम्मिलित रहती हैं। इनके परस्पर संबन्ध को बताने के लिए सम्बन्ध-तत्त्वों की आवश्यकता पड़ती है। सम्बन्ध-तत्त्व जिन भावों की अभिव्यक्ति करते हैं, वे हैं-लिंग, वचन, पुरुष, काल, वृत्ति (मूड, Mood), कारक आदि। लिंग, वचन आदि को व्याकरणिक कोटियाँ कहते हैं। इनका कार्य है- भाषा में अभिव्यंजना-सम्बन्धी सूक्ष्मता और निश्चयात्मकता लाना। इनके लिए ही सम्बन्ध-तत्त्वों का प्रयोग किया जाता है।

7.3.1 व्याकरण की कोटियां

व्याकरणिक कोटियों के विषय में तीन बातें उल्लेखनीय हैं-

1. प्रत्येक भाषा में शब्द निर्माण और रचना-पद्धति में भेद होता है। संस्कृत, चीनी, अरबी तथा अंग्रेजी की रचना-पद्धति भिन्न है।
2. प्रत्येक भाषा की व्याकरणिक कोटियाँ काल-सापेक्ष हैं। कालक्रमानुसार इन कोटियों में परिवर्तन होता रहता है। जैसे-संस्कृत के तीन लिंग और तीन वचन के स्थान पर प्राकृत और अपभ्रंश में दो लिंग, दो वचन शेष रहे।

3. प्रत्येक भाषा के गठन के आधार पर व्याकरणिक कोटियों का निर्माण और वर्गीकरण होता है। इसके आधार पर ही भाषा का विवेचन विश्लेषण होता है तथा नये शब्दों के निर्माण में इनसे सहायता मिलती है।

7.3.1.1 (लिंग) (Gender)

लिंग का अर्थ है-चिह्न, जिससे किसी वस्तु को पहचाना जा सके। लिंग दो प्रकार के हैं-1. प्राकृतिक या जन्म-सिद्ध, 2. व्याकरणिक। प्राकृतिक लिंग में पुरुष और स्त्री का कुछ अवयव-संस्थानों के द्वारा निर्णय किया जाता है। स्तन, केश आदि के द्वारा स्त्री। रोम, मूंछ आदि के द्वारा पुरुष। इन दोनों के अभाव में नपुंसक। व्याकरणिक लिंग प्राकृतिक लिंग का अनुसरण अनिवार्य रूप से नहीं करते हैं। प्रत्येक भाषा में इसके अपवाद मिलते हैं। सामान्यतया तीन लिंग संस्कृत, जर्मन आदि भाषाओं में प्रचलित हैं। इनके लिए अलग चिह्न भी निदिष्ट है। इनके नाम है- पुंलिंग, स्त्री-लिंग, नपुंसक लिग। कोई भी भाषाशास्त्री आज तक इस कार्य में सफल नहीं हो सका है कि वह शब्दों के लिंग-निर्णय का कोई उचित आधार बता सके।

यदि संस्कृत भाषा का उदाहरण लें तो इसमें पत्नी के लिए तीनों लिंगों के शब्द हैं जैसे, दार (पत्नी) पुंलिंग बहुवचन में ही प्रयुक्त होता है, दाराः, दारान् (पत्नी)। स्त्री, नारी, पत्नी, भार्या आदि स्त्रीलिंग में आते हैं। कलत्रम् (पत्नी) नपुंसक लिंग है। इस प्रकार पत्नी के लिए तीनों लिग में शब्द मिलते हैं। प्राकृतिक दृष्टि से केवल स्त्रीलिंग होना चाहिए था। इसी प्रकार निर्जीव जल के लिए आपः (जल, स्त्रीलिग, बहु०), जलम्, नपुंसक लिंग। एक ही अर्थ में ग्रन्थः पं०, पुस्तकम् नपु० है। इसी प्रकार का अंतर अन्य भाषाओं में भी पाया जाता है। जैसे जर्मन में पत्नी (wife) -वाचक शब्द वाइब (weib) नपुंसक लिंग है Das weib (डास वाइव)। इसी प्रकार जर्मन में सूर्य स्त्रीलिंग है - Die sonne (डी जोने, सूर्य) और चन्द्रमा पुलिंग है- Der mond (डेर मोन्ट, चन्द्रमा)। इसके विपरीत फ्रेंच में सूर्य पुंलिग है- Le Soleil (ल सोलेय्, सूर्य) और चन्द्रमा स्त्रीलिंग (La lune, ला ल्यून, चन्द्रमा)

रूसी भाषा में सूर्य-वाचक 'सोन्त्से' नपुंसक लिंग है और चंद्रमा वाचक 'लूना' पुलिंग है। संस्कृत में सूर्य-वाचक 'मित्र' शब्द पुलिंग है, परंतु वही 'मित्रम्' मित्र अर्थ में नपुंसक लिंग है। उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि लिग के विषय में कोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता है। संस्कृत में तट शब्द तीनों लिंगों में आता है-तटः, तटी, तटम्। कुटी (कुटिया) शब्द स्त्रीलिंग है, किन्तु कुटीरः (कुटी) पुंलिग है। हिम (बर्फ) नपुं० है, किन्तु ग्लेशियर या हिम-समूह का वाचक 'हिमानी' शब्द स्त्रीलिंग है। इसी प्रकार जंगल-वाचक 'अयम' शब्द नपुंसलिंग है, किन्तु महावन-वाचक 'अरण्यानी' (बड़ा जंगल) शब्द स्त्रीलिंग है। मनुष्य के लिए अयं जनः, इयं व्यक्तिः, पुंलिंग और स्त्रीलिंग दोनों प्रका के प्रयोग मिलते हैं। इसी प्रकार एक ही वस्तु के लिए इदं वस्तु, अयम् अर्थः, ये दोनों नपुंसक और पुंलिंग प्रयोग मिलते हैं। पाणिनि ने इस विषय में लोक-व्यवहार को ही प्रामाणिक माना है। पतंजलि और भर्तृहरि ने लिंग का आधार विवक्षा (वक्ता के कहने की इच्छा) को माना है।

प्रत्येक भाषा में लिंग का आधार प्राकृतिक लिंग ही नहीं है। अमेरिका और अफ्रीका की कुछ भाषाओं में भी चेतन और अचेतन के आधार पर लिंग-विभाजन होता है। अलगोन्किन् और स्लावी भाषा में चेतन और अचेतन के आधार पर हो लिंग हैं। पूर्वी अफ्रीका के मसई लोगों की भाषा में लम्बी और सबल वस्तुओं के लिए अलग लिंग (पुंलिंग) है और छोटी या निर्बल के लिए अलग लिंग (स्त्रीलिंग)।

भाषा में लिंग के आधार पर ही व्याकरणिक अन्विति होती है। पुंलिंग के लिए पुंलिग शब्द, स्त्रीलिंग के लिए स्त्रीलिंग शब्द। जैसे- शोभनः बालकः, शोभना बालिका, शोभनं पुष्पम्। हिन्दी में-बालक पढ़ता है, बालिका पढ़ती है।

लिंग का भाव दो प्रकार से व्यक्त किया जाता है-**१. प्रत्यय लगाकर**-संस्कृत में आ या ई लगाकर पुंलिंग से स्त्रीलिंग। बालकः-बालिका, सुन्दरः-सुन्दरी, गौरः- गौरी (गोरी), प्रेयस्-प्रेयसी (प्रिया)। हिन्दी में-आ, ई, इन, इया, आनी, नी आदि लगाकर । जैसे-बालिका, नारी, धोबिन, कुतिया, नौकरानी, हथिनी, शेरनी आदि। अंग्रेजी में स् या एस् (ss, ess) लगाकर स्त्रीलिंग बनाते है। प्रिस - प्रिंसेस् (Prince-Princess, राज-कुमारी); गॉड-गॉडेस् (God-Goddess, देवी), लायन- लायनेस् (Lion-शेर, Lioness-शेरनी)। **२. स्वतन्त्र शब्द लगाकर** - पुंलिंग के लिए 'ही' (He), स्त्रीलिंग के लिए 'शी' (She)। He-goat (ही गोट, बकरा), She-goat (शी गोट, बकरी)। इसी प्रकार मैन (Man), वूमन (Woman), मेड (Maid) आदि शब्द अंग्रेजी में लगते हैं। जैसे - Washer-man (वाशर मैन, धोबी), Washer-woman (वाशर वूमन, धोबिन), Maid servant (मेड सर्वेन्ट, नौकरानी)।

संस्कृत में लिंग का प्रभाव, विशेषण, सर्वनाम और क्रिया पर भी पड़ता है। भी शामिल है। यथा-तानि सर्वाणि सुन्दराणि पुस्तकानि पठितव्यानि सन्ति (वे सब सुंदर पुस्तकें पढ़ने योग्य हैं)। हिन्दी में क्रिया पर लिंग का प्रभाव पड़ता है। जैसे लड़के जाते हैं, लड़की जाती है, लड़कियाँ जाती हैं। हिन्दी में विशेषण और सर्वनाम पर लिंग-भेद का प्रभाव नहीं होता है।

7.3.1.2 वचन (Number)

संस्कृत में तीन वचन होते है- एकवचन द्विवचन बहुवचन । वैदिक और लौकिक संस्कृत में द्विवचन का प्रयोग है। प्राचीन फारसी और अवेस्ता में इसका अत्यधिक व्यवहार होता था। प्राचीन स्लावी में यह अभी तक प्रयोग में आता

है। केल्टी भाषा में केवल आयरी के प्राचीन रूपों में द्विवचन मिलता है। लिथुयानी आदि भाषाओं में भी द्विवचन मिलता है। इस द्विवचन का धीरे-धीरे लोप हो गया है। पाली, प्राकृत आदि में द्विवचन नहीं है। ग्रीक आदि में भी द्विवचन का लोप हो गया है। लैटिन में द्विवचन प्रारम्भ से ही नहीं था। हिन्दी में द्विवचन नहीं है । सम्भवतः हाथ, आँख, नाक, कान, पैर आदि के जोड़े को देखकर द्विवचन की कल्पना हुई थी। परन्तु बाद में इसके कम प्रयोग को देखकर, इसे व्याकरण से हटाया गया। इसके लिए दो शब्द का प्रयोग होने लगा। दो आँख, दो कान आदि। संस्कृत में इसके लिए युग, युगल, द्वय, द्वयी आदि शब्द प्रयोग में आने लगे। जैसे-करयुगम्, करयुगलम्, करद्वयम्, करद्वयी (दो हाथ), आदि।

संख्या का महत्त्व बताते हुए भर्तृहरि ने वस्तुओं के भेद और अभेद का कारण संख्या को बताया है, और 'एक' संख्या को ही 'दो' आदि का कारण मानक संस्कृत में विशेषण आदि में भी वचन का प्रभाव रहता है। द्वे शोभने बालिके, त्रीणि पठनीयानि पुस्ताकानि, तिस्त्रः बालिकाः चत्वारि फलानि फलानि। संस्कृत में द्विवचन और बहुवचन बनाने के लिए शब्द रूपों में औ, जस् (अः) आदि लगते हैं। क्रिया-रूपों में तह, अन्ति आदि। हिन्दी में बहुवचन बनाने के लिए शब्द-रूपों में ऐ ओं आदि लगते हैं। जैसे-बालिकाएं, पुस्तकों आदि। अंग्रेजी में s, es लगते हैं।

बहुत्व अर्थ को दो प्रकार से व्यक्त किया जाता है:- 1. व्यक्ति या वस्तु के अनुसार, 2. समूह के अनुसार। व्यक्तिगत बहुत्व में बहुवचन होता है। समूहगत बहुत्व में एकवचन का भी व्यवहार होता है। जैसे दो के लिए जोड़ा (2) दर्जन (Dozen, 12) , ग्रोस (Gross) 12 दर्जन या 144) आदि। संस्कृत में व्यक्ति समूह में जाति की एकता मानकर एकवचन का भी प्रयोग होता है। जैसे -सज्जनः नमस्यः (सज्जनों को नमस्कार करें)। हिन्दी में कुत्ता स्वामिभक्त पशु है। यहां कुत्तों के अर्थ में कुत्ता का प्रयोग है। जाति शब्द समस्त जाति का बोधक हो जाता है। संस्कृत में 10 से आगे की गिनतियां एकवचन में ही प्रयुक्त होती है। (विशत्याद्याः सदैकत्वे सर्वाः संख्येयसंख्योः)। विंशतिः बालकाः शतं जनाः, सहत्रं योधाः। संस्कृत में एक से चार तक संख्यावाचक शब्दों के रूप में विशेष्य के तुल्य चलते हैं। परंतु पंचन् (पांच) के आगे एक ही रूप रहता है। क्रिया में भाव वाच्य में केवल एकवचन ही होता है। बालकेन सुप्यते (बालक सोता है), बालकेन पठितव्यम् (बालक को पढ़ना चाहिए।)

संस्कृत में कुछ शब्दों का प्रयोग केवल द्विवचन में होता है। जैसे - दम्पति (पति-पत्नी), पितरौ (माता-पिता), अश्विनौ (2 अश्विनी कुमार)। इसी प्रकार संस्कृत में कुछ शब्द सदा बहुवचन में ही आते हैं। जैसे दाराः (पत्नी), लाजाः (खील), असवः प्राणाः (प्राण), आपः (जल), वर्षाः (वर्षा), सुमनसः (फूल)। संस्कृत में आदरार्थे बहुवचनम्-आदर अर्थ प्रकट करने में एकवचन के स्थान पर बहुवचन होता है। गुरवः पूज्याः गुरु पूज्य है।

7.3.1.3 पुरुष (Person)

भाषा में पुरुष की कल्पना का आधार है- १. वक्ता, २. श्रोता, ३. इनसे भिन्न व्यक्ति या वस्तु। १. वक्ता - उत्तम पुरुष, २. श्रोता-मध्यम पुरुष, ३. अन्य व्यक्ति या वस्तु-प्रथम या अन्य पुरुष। संस्कृत और अंग्रेजी में क्रिया के रूप चलाने में मौलिक अन्तर है। संस्कृत में क्रम है - प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष एवं उत्तम पुरुष- वह, तू, मैं। अंग्रेजी में इसके विपरीत क्रम है- उत्तम पुरुष (First Person), मध्यम पुरुष (Second Person), अन्य पुरुष (Third Person) । यह क्रम-भेद दोनों भाषाओं का मनोवैज्ञानिक अन्तर बताता है। संस्कृत के क्रम में अन्य पुरुष (वह) ब्रह्म, ईश्वर आदि का बोधक है, अतः ब्रह्म को क्रिया में प्रधानता दी गई है। अतः उसके पश्चात् श्रोता को द्वितीय स्थान पर रखा गया है। वक्ता या मैं को अन्तिम स्थान दिया गया है। इसके विपरीत अंग्रेजी में 'मैं' और 'हम' को सर्वप्रथम रखा गया है। 'वह' को अन्त में।

पुरुष के आधार पर क्रिया के रूपों में परिवर्तन होता है। संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी में पुरुष के आधार पर क्रिया-रूपों में अन्तर होता है। जैसे-पठ् से सः पठति, त्वं पठसि, अहं पठामि। अंग्रेजी में अधिकांश रूपों में मूल रूप से काम चल जाता है। I go, we go, they go केवल एकवचन में s या es लगाया जाता है। जैसे-He walks, He goes । कभी-कभी सहायक क्रिया is, am, was, were रखकर काम चलाया जाता है। अधिकांशतः अन्य

पुरुष एकवचन में अन्तर होता है। अरबी और फारसी आदि में इसी प्रकार पुरुष-भेद में अन्तर किया जाता है। चीनी आदि भाषाओं में यह अन्तर नहीं है। पुरुष का एकवचन (मैं, तू, वह) अन्य- व्यावर्तक होता है और बहुवचन (हम, तुम, वे) अन्य-संग्राहक। जैसे-'मैं' के अतिरिक्त कोई नहीं। 'हम'- मैं तथा अन्य व्यक्ति भी। इस प्रकार द्विवचन और बहुवचन अन्य-संग्राहक है।

7.3.1.4 कारक (Case)

पतंजलि ने (महाभाष्य १-४-२३) 'कारक' की व्याख्या की है कि--कारक अन्वर्थ (सार्थक) शब्द है। कारक का अर्थ है-'करोति इति कारकम'। जो क्रिया का निष्पादक होता है, उसे कारक कहते हैं। कैयट और भर्तृहरि का कथन है कि क्रिया साध्य है और कारक साधन है। इस प्रकार क्रिया को सिद्ध करने वाले को 'कारक' कहते हैं। संस्कृत व्याकरण के अनुसार सात कारक माने गए है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण और सम्बोधन। सम्बन्ध या षष्ठी को कारक नहीं माना जाता है, क्योंकि क्रिया की सिद्धि में उसका साक्षात् योग नहीं होता है।

जैसे-राज्ञः पुरुषः आगच्छति (राजा का पुरुष आता है), इसमें राजा का सम्बन्ध पुरुष से है, न कि क्रिया से। गंगा का जल मधुर है, में गंगा का सम्बन्ध जल से है, क्रिया से नहीं। सम्बोधन को भी प्रथमा एकवचन का सम्बोध न का रूप माना जाता है।

सकी भी स्वतंत्र सत्ता नहीं है। इस प्रकार ६ कारक ही होते हैं। कुछ प्राचीन आचार्यों ने सम्प्रदान और अपादान को भी क्रिया से साक्षात् सम्बद्ध न मानकर कारकों की संख्या केवल चार मानी है। अतएव कारकत्व की पहचान 'कृ' धातु केवल चार कारकों में है-कर्ता, कर्म, करण, अधिकरण।

कारकों की संख्या विभिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न है। अंग्रेजी में दो कारक हैं। लैटिन और जर्मन में पाँच। प्राचीन स्लाविक में छः, संस्कृत प्रोक और लियुभानी में सात, हिन्दी में आठ और जार्जी भाषा में २३ कारक है।

7.3.1.5 क्रिया (Verb)

विभिन्न आधारों को लेकर क्रिया के अनेक भेद किए गए हैं। जैसे-कर्म का होना या न होना; क्रिया के फल का भोक्ता कौन है; क्रिया को पूर्णता-अपूर्णता; क्रिया की निरंतरता या उसका अभाव आदि। भारोपीय परिवार की भाषाओं में ये भेद मिलते हैं:--

(क) सकर्मक-अकर्मक- जिस क्रिया में कर्म होता है, उसे सकर्मक कहते है। जिसमें कर्म नहीं होता, उसे अकर्मक कहते हैं। कर्म का भाव (होना) और अभाव ही इनके भेद का आधार है। वान्द्रिऐज (Vendrye) का यह कथन उपयुक्त है कि:- 'सकर्मक और अकर्मक क्रियाओं का भेद सम्भवत: निम्नलिखित ढंग से अधिक स्पष्टतया समझ में आ सकता है। क्योंकि सकर्मक का अर्थ हो यह है कि उसमें कर्म होना चाहिए, अत: उन सभी क्रियाओं को सकर्मक कहना चाहिए, जिनके कार्य के उद्देश्य की सूचना वाक्य में रहे, और इसके विरुद्ध अकर्मक उनको कहना चाहिए जिनका प्रयोग बिना कर्म की अभिव्यक्ति के हो। भारोपीय परिवार की विभिन्न भाषाओं में सकर्मक और अकर्मक के भेद का आधार सुनिश्चित नहीं है। लेटिन में वह क्रिया सकर्मक है, जिसमें कर्म के साथ कर्म कारक का प्रयोग हो। फ्रांसीसी में उस क्रिया को सकर्मक कहते हैं, जिसके तुरन्त पश्चात् कर्म आवे। विभिन्न भाषाओं में एक ही भाव को किसी भाषा में सकर्मक तो किसी में अकर्मक क्रियाओं द्वारा व्यक्त किया जाता है। संस्कृत में भी कुछ धातुएँ सकर्मक होते हुए भी, कर्म का प्रयोग न होने के कारण, अकर्मक मानी जाती है। जैसे- नदी वहति (नदी बहती है), मेघः वर्षति (बादल बरसता है), हितात् न शृणोति (हितकारी की बात नहीं सुनता है)। सामान्यतया वह, वृष् और श्रु धातुएँ सकर्मक है।

(ख) आत्मपदेन-परस्मैपद- संस्कृत में कर्मफल के भोक्ता के आधार पर दो पद माने जाते हैं **(1) आत्मनेपद** -'आत्मने' का अर्थ है अपने लिए अत: आत्मनेपद का अर्थ होता है जिस क्रिया का फल कर्त्ता को स्वयं मिलता है जैसे भोजनं कुरुते (भोजन करता है), कर्त्ता को भोजन क्रिया का फल मिलता है। (2) **परस्मैपद**- यदि

फल का भोक्ता कोई दूसरा व्यक्ति हो तो परस्मैपद होता है जैसे – पुत्राय मोदक्म आनयति (पुत्र के लिए लड्डू लाता है), शिष्याय फलं ददाति, फल का भोक्ता दूसरा है। अतः परस्मैपद हुआ। जिन धातुओं से दोनों पद होते हैं, उन्हें उभयपदी कहते हैं। संस्कृत के परकालीन साहित्य में दोनों पदों का यह भेद लुप्त हो गया दोनों पद समान रूप से प्रयुक्त होने लगे। जैसे–

सः कार्य करोति कुरुते वा (वह कार्य करता है)।

(ग) वाच्य (Voice) भारोपीय भाषाओं में तीन वाच्य मिलते हैं –

कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य । क्रिया में कर्ता की प्रधानता होने पर कर्तृवाच्य, कर्म की प्रधानता होने पर कर्मवाच्य और केवल भाव या क्रिया (यापार) की प्रधानता होने पर भाववाच्य। जैसे–

कर्तृवाच्य –रामः गृहं गच्छति (राम घर जाता है)

कर्ममावाच्य – रमेण गृहं गम्यते (राम के द्वारा घर जाया जाता है।)

भाववाच्य – रामेण सुप्यते (राम के द्वारा सोया जाता है)

सकर्मक क्रिया के दो वाच्य होते हैं–कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य। अकर्मक क्रिया का कर्मवाच्य नहीं होता है, केवल कर्मवाच्य और भाववाच्य होता है। जैसे– सः स्वपिति (वह सोता है), तेन सुप्यते (उसके द्वारा सोया जाता है।)। भाव–वाच्य में संस्कृत में क्रिया में केवल प्रथम पुरुष एकवचन का प्रयोग होता है और शब्द में नपुंसक लिंग एकवचन। जैसे–तेन पठयते, तेन पठितव्यम!। संस्कृत में कार्य की सरलता के आधार पर कर्म को कर्ता मानकर कर्म–कर्तृवाच्य नाम दिया गया है। इसमें क्रिया कर्मवाच्य के तुल्य रहती है और कर्ता कर्तृवाच्य के तुल्य प्रथमा में रहती है। जैसे– पच्यते ओदनः (भात पकता है), भिद्यते काष्ठम् (लकड़ी फटती है)।

भारोपीय परिवार की अधिकांश भाषाओं में कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य की क्रिया की भावना प्रयत्नमात्र है। कर्मवाच्य से प्रायः ऐसी क्रिया का बोध होता है जो समाप्त हो गई हो। अतएव फ्रांसीसी में ऐत्र (Etre, होना) धातु की सहायता के बिना कई क्रियाएँ भूतकाल के अर्थ का बोध नहीं करा सकती हैं। यही बात लैटिन में भी थी। लैटिन में कर्मवाच्य का एक अन्य प्रयोग भी था, जिसको अवैयक्तिक वाच्य या भाववाच्य कहा जाता है।

7.3.1.6 काल (Tense, Mood)

काल के सामान्यतया तीन भेद किए जाते हैं–१. वर्तमान, २. भूत, ३. भविष्यत्। इसका आधार है–कार्य की निष्पत्ति के होने का समय। यदि घटना अबकी है तो वर्तमान काल, पहले की है तो भूतकाल, आगे होने वाली हो तो भविष्यत् काल। इन कालों की क्रिया की पूर्णता अपूर्णता आदि, प्रकार या वृत्ति (मूड, Mood) के आधार पर अनेक भेद उपभेद हो गए हैं। प्रत्येक भाषा में काल की धारणा भिन्न–भिन्न है। काल के लिए टेन्स (Tense) शब्द का प्रयोग होता है और प्रकार या वृत्ति के लिए मूड (Mood) शब्द। संस्कृत में दोनों के लिए 'लकार' शब्द का प्रयोग होता है। संस्कृत में दस लकार है। इनको काल और वृत्ति के विभाजन के अनुसार इस प्रकार कहा जाएगा। (1) वर्तमान–लट्। (2) भूतकाल–तीन प्रकार का है। (क) सामान्यभूत–लुङ्,

(ख) अनद्यतन (आज का न हो) भूत–लङ्, (ग) परोक्ष–भूत–लिट्।

(3) भविष्यत्–तीन प्रकार का है। (क) सामान्य भविष्य–लट् (ख) अनद्यतन भविष्यत–लट्। (ग) हेतुहेतुमद् भविष्यत् – लङ्। इसके अतिरिक्त 3 वृतियां हैं– (1) आज्ञा–अर्थ–लोट्, (2) चाहिए अर्थ–विधिलिङ्, (3) आशीर्वाद अर्थ–आशिर्लिङ्। वेद में लेट् लकार का प्रयोग आता है। यह अभिलाषा, संभावना विधि (आज्ञा) या प्रार्थना अर्थ में होता है। हिन्दी में तीन काल हैं– वर्तमान, भूत, भविष्य। 1. निश्चयार्थ, 2. आज्ञार्थ और 3. संभवनार्थ, इन तीन मुख्य अर्थो को लेकर तथा व्यापार की सामान्यता पूर्णता एवं अपूर्णता के आधार पर हिन्दी में कालों की संख्या 16 है। इसका विवरण निम्न प्रकार से है:–

भूत	वर्तमान	भविष्य
1. भूत सामान्य निश्चयार्य	1. वर्तमान सम्भावनार्थ	1. भवि० निश्चयार्थ
2. भूततसामान्य सम्भावनार्थ	2. वर्तमान आज्ञार्थ	2. भविष्य आज्ञार्थ
3. भूत अपूर्ण निश्चयार्च	3. वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्य	3. भविष्य अपूर्ण निश्चयार्थ
4. भूत अपूर्ण सम्भावनार्थ	4. वर्तमान अपूर्ण सम्भावनार्थ	4.
5. भूत पूर्ण निश्चयार्थ	5. वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ	5. भविष्य पूर्ण निश्चयार्थ
6. भूत पूर्ण संभावनार्थ	6. वर्तमान पूर्ण संभावनार्थ	6.

इस प्रकार हिन्दी में भूत के ६ भेद, वर्तमान के ६ भेद तथा भविष्य के ४ भेद है।

संस्कृत में पूर्वोक्त लकारों के अतिरिक्त क्रिया के अनेक स्वतन्त्र रूप होते थे।

जैसे-

1. प्रेरणार्थक - (अय) - कृ > कारयति (वह करवाता है)
2. इच्छार्थक (सन्) - कृ > चिकीषति (वह करना चाहता है)
3. भृशार्यक (य) - कृ > चेक्रीयते (वह बार-बार करता है।)

इनके अतिरिक्त नामधातु भी होते हैं। ये शब्दों से क्रिया-शब्द बनते हैं। जैसे -पुत्र > पुत्रोयति (वह पुत्र चाहता है), कृष्ण > कृष्णायते (कृष्ण की तरह आचरण करता है), कुमारी>कुमारायते (कुमारी की तरह आचरण करता है)

हिन्दी में केवल प्रेरणार्थक रूप मिलते हैं। प्रेरणार्थक रूप आ या वा लगाकर बनते हैं। जैसे-जलना > जलाना, जलवाना, करना > कराना, करवाना।

भारोपीय क्रियाओं का वर्गीकरण तुलनात्मक व्याकरण के आधार पर इस प्रकार किया गया है :- सातत्यद्योतक (ड्यूरेटिव), प्रगतिद्योतक (मूमेण्टरी), पूर्णार्थक (पर्फेक्टिव), अपूर्णार्थक (इम्पर्फॅक्टिव), उपक्रामक (इन्कोहेटिव), पुनरर्थक (इट्रेटिव), समाप्ति-द्योतक (मिनेटिव) आदि। काल-विभाजन की दृष्टि से फ्रेंच भाषा सर्वाधिक पूर्ण है। इसमें काल के सूक्ष्म भेदों के लिए विविध लकार हैं। इसमें भूत में भी भविष्य और भविष्य में भी भूत की अभिव्यक्ति हो सकती है।

स्वयं आकलन के प्रश्न

(1) व्याकरण की परिभाषा बताओं।

(2) व्याकरण की दो कोटियों के नाम बताओ।

7.4 सारांश -

सारांश रूप में हम कह सकते है कि व्याकरण भाषा व्यवस्था का साधन है। व्याकरण के आधार पर भाषा प्रयोग तथा भाषा क्रमबद्धता का ज्ञान होता है। भाषा के विविध साधन जिनमें लिंग, वचन, क्रिया तथा काल आदि सम्मलित है, उनका व्याकरण के माध्यम से अध्ययन किया जाता है। यह सभी भाषा को विकसित करने में सहायक रहते हैं।

7.5 कठिन शब्दावली -

व्याकरण - भाषा व्यवस्था का साधन/लिंग-किसी व्यक्ति के पुरुषत्व या महिला का बोध करवाना। क्रिया-काम को करने के समय की जानकारी/काल-क्रिया किस समय हुई इसकी जानकारी देना।

7.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

(1) उत्तर - व्याकरण वह साधन है जिसके आधार पर हम भाषा की जानकारी, भाषा व्यवस्था का बोध हो।

(2) उत्तर - लिंग, वचन।

7.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र, डॉ. कपिल देव द्विवेदी ।

(2) देवेन्द्रनाथ शर्मा, भाषा विज्ञान की भूमिका ।

(3) नरेश मिश्रा - भाषा और विज्ञान ।

7.8 सात्रिक प्रश्न

(1) लिंग की परिभाषा तथा भेद लिखो ।

(2) व्याकरण की कोटियों का वर्णन करें ।

*****

इकाई–8

वाक्य का स्वरूप

8.1 भूमिका

8.2 उद्देश्य

8.3 वाक्य की स्वरूप

8.3.1 वाक्य की परिभाषा

8.3.2 वाक्य के तत्व

8.3.3 वाक्य के भेद/प्रकार

8.3.4 वाक्य के अंग

8.3.5 वाक्य विश्लेषण

स्वयं आकलन प्रश्न

8.4 सारांश

8.5 कठिन शब्दावली

8.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

8.7 संदर्भित पुस्तकें

8.8 सात्रिक प्रश्न

8.1 भूमिका

वाक्य-विज्ञान में भाषा में प्रयुक्त विभिन्न पदों के परस्पर संबन्ध का विचार किया जाता है। अतएव वाक्य-विज्ञान में इन सभी विषयों का समावेश हो जाता है- वाक्य का स्वरूप, वाक्य की परिभाषा, वाक्य की रचना, वाक्य के अनिवार्य तत्त्व, वाक्य में पदों का विन्यास, वाक्यों के प्रकार, वाक्य का विभाजन, वाक्य में निकटस्थ अवयव, बाक्य में परिवर्तन, परिवर्तन की दिशाएँ, परिवर्तन के कारण, पदिम (Taxeme) आदि। इस प्रकार वाक्य-विज्ञान में वाक्य से संबद्ध सभी तत्त्वों का विवेचन किया जाता है।

8.2 उद्देश्य

1) वाक्य की जानकारी।

2) वाक्य के स्वरूप की जानकारी।

3) वाक्य के अंग की जानकारी।

4) वाक्य के भेदों की जानकारी।

8.3 वाक्य का स्वरूप

पद-विज्ञान और वाक्य-विज्ञान में अन्तर यह है कि पद-विज्ञान में पदों की रचना का विवेचन होता है। अतः उसमें पदविभाजन (संज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि), कारक, विभक्ति, वचन, लिंग, काल, पुरुष आदि के बोधक शब्द किस प्रकार बनते हैं, इस पर विचार किया जाता है। वाक्य-विज्ञान उससे अगली कोटि है। इसमें पूर्वोक्त विधि से बने हुए पदों का कहाँ, किस प्रकार प्रयोग होता है, पदों को किस प्रकार रखना या सजाना चाहिए, उनको विभिन्न प्रकार से रखने से अर्थ में क्या अन्तर होता है, आदि विषयों का विवेचन है। ध्वनि निर्णायक तत्त्व हैं। जैसे मिट्टी, कपास आदि; पद बने हुए वे तत्व हैं, जिनका उपयोग किया जा सकता है, जैसे-ईंट, वस्त्र आदि; वाक्य वह रूप है, जो वास्तविक रूप में प्रयोग में आता है, जैसे-मकान, सिले वस्त्र आदि। पद ईंट है तो वाक्य मकान या भवन।

तात्त्विक दृष्टि से ध्वनि, पद और वाक्य में मौलिक अन्तर है। ध्वनि मूलतः उच्चारण से संबद्ध है। यह शारीरिक व्यापार से उत्पन्न होती है, अतः ध्वनि में मुख्यतया शारीरिक व्यापार प्रधान है। पद में ध्वनि और सार्थकता दोनों का समन्वय है। ध्वनि शारीरिक पक्ष है और सार्थकता मानसिक पक्ष है।

8.3.1 वाक्य की परिभाषा

वाक्यानां रचना भेदाः, परिवृत्तिः पदक्रमः।

वाक्य-विश्लेषणं चैव, वाक्यविज्ञानमिष्यते॥

(वाक्य-विज्ञान में निम्नलिखित बातों का विवेचन किया जाता है-वाक्यों की रचना, वाक्यों के प्रकार (भेद), वाक्यों में परिवर्तन, वाक्यों में पदक्रम (पद- विन्यास) और वाक्यों का विश्लेषण।)

पतंजलि ने महाभाष्य में वाक्य के 5 लक्षण दिए है:- 1. एक क्रिया पद वाक्य है। 2. अव्यय, कारक और विशेषण से युक्त क्रिया-पद वाक्य है। 3. क्रिया-विशेषण-युक्त क्रिया-पद वाक्य है। 4. विशेषण-युक्त क्रिया-पद वाक्य है। 5. क्रियापद-रहित संज्ञा-पद भी वाक्य होता है। जैसे-तर्पणम् (तर्पण करो), पिडीम् (ग्रास खाओ)। मीमांसको, नैयायिकों और साहित्यशास्त्रियों ने साकांक्ष पद-समूह को 'वाक्य' माना है। आचार्य विश्वनाथ ने 'आकांक्षा', योग्यता और आसत्ति से युक्त पद-समूह को वाक्य माना है।

आचार्य 'भर्तृहरि' ने अपने पूर्ववर्ती वैयाकरणों और दार्शनिकों के मतों का संग्रह 'वाक्यपदीय' में करते हुए वाक्य की निम्नलिखित परिभाषाएं दी हैं।

(1) क्रिया-पद को वाक्य कहते हैं।

(2) क्रिया-युक्त कारकादि के समूह को वाक्य कहते हैं।

(3) क्रिया एवं कारकादि-समूह में रहने वाली 'जाति' वाक्य है।

(4) क्रियादि-समूह-गत एक अखण्ड शब्द (स्फोट) वाक्य है।

(5) क्रियादि-पदों के क्रम-विशेष को वाक्य कहते हैं।

(6) क्रियादि के बुद्धिगत समन्वय को वाक्य कहते हैं।

(7) साकांक्ष प्रथम पद को वाक्य कहते है।

(8) साकांक्ष पृथक् पृथक् सभी पदों को वाक्य कहते हैं।

पतंजलि और बॉक्स-ईसा से पूर्व भाषाशास्त्रीय तत्त्व-चिन्तकों में भारत में पतंजलि (150 ई० पू० के लगभग) और यूरोप में 'डायोनिसियस थॉक्स' (प्रथम) शताब्दी ई० पू०) का नाम उल्लेखनीय है। दोनों ही आचायों ने वाक्य की परिभाषा इस प्रकार दी है-**'पूर्ण अर्थ की प्रतीति कराने वाले शब्द-समूह को वाक्य कहते हैं।'**

इसमें दो बातों पर विशेष बल दिया गया है:

(क) वाक्य शब्दों का समूह है।

(ख) वाक्य पूर्ण अर्थ की प्रतीति कराता है।

समीक्षा-भाषाशास्त्री वाक्य की उपर्युक्त दोनों विशेषताओं को पूर्णतया स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। उनके तर्क ये हैं

(1) भाषा की इकाई वाक्य है, न कि शब्दसमूह या पद।

(2) यह आवश्यक नहीं है कि वाक्य शब्दों का समूह ही हो। एक पद वाले भी वाक्य प्रयोग में आते हैं। 'चलोगे ?' 'हाँ', 'कहाँ से ?' 'घर से', 'कुत:' 'नद्या:' आदि।

(3) अनेक भाषाओं में एक समस्त पद ही पूरे वाक्य का काम देता है।

(4) वाक्य भाषा का एक अंग है, वह पूर्ण की प्रतीति नहीं करा सकता। एक ग्रन्थ या भाषण में सहस्रों वाक्य होते हैं, तब पूर्ण की अभिव्यक्ति होती है। एक-एक वाक्य विचारधारा की एक-एक तरंग मात्र है।

वाक्य की व्यावहारिक परिभाषा - वाक्य की निर्विवाद शास्त्रीय परिभाषा देना संभव नहीं है। व्यावहारिक दृष्टि से वाक्य की परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं-

'भाषा की लघुतम पूर्ण सार्थक इकाई को वाक्य कहते हैं।'

साथै लघिष्ठं पूणार्थ वाक्यं स्याद् भाषणाङ्कम् (कपिलस्य)

अर्थात् 'पूर्ण अर्थ की बोधक सार्थक लघुतम इकाई को वाक्य कहते है। यह भाषण या विचारों का एक अंग होता है।'

कोई भी वाक्य तात्विक रूप से पूर्ण अर्थ का बोध नहीं कराता है। वह विचार-धारा का एक अंश होता है। पूरा भाषण या पूरा ग्रन्थ हो पूर्ण अर्थ का बोधक होता है। उसे हम 'महावाक्य' कह सकते है। वाक्य उसका अंग होगा। पतंजलि ने वाक्य की सत्ता के साथ ही 'महावाक्य' की सत्ता भी मानी है और वाक्य को अंग माना है।

सा चावश्यं वाक्यसंज्ञा वक्तव्या, समानवाक्याधिकारश्च

8.3.2 वाक्य के तत्त्व

अभिहितंवादी आचार्य कुमारिल भट्ट आदि ने क्या कहा है कि तीन तत्वों को अनिवार्य रूप से बताया गया है–1. आकांक्षा, 2. योग्यता, 3. आसत्ति (संनिधि)। इसको ही आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में निम्नलिखित रूप प्रस्तुत किया है। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

(1) आकांक्षा – आकांक्षा का अर्थ है–अपेक्षा या जिज्ञासा की असमाप्ति। वाक्य में प्रयुक्त शब्दों को एक दूसरे की अपेक्षा रहती है। कर्ता को कर्म और क्रिया की अपेक्षा रहती है। कर्ता को कर्म और क्रिया की अपेक्षा रहती है। कर्ता को कर्म और क्रिया की पअेक्षा रहती है। कर्म को कर्ता एवं क्रिया की तथा क्रिया को कर्ता एवं कर्म की। अपेक्षा को 'जिज्ञासा' भी कह सकते हैं। इस अपेक्षा या जिज्ञासा की पूति होने पर ही वाक्य बनता है। आकांक्षा की पूर्ति के बिना वाक्य अपूर्ण रहता है। इसलिए वाक्य में पदों का साकांक्ष होना अनिवार्य है। साकांक्षता के कारण वाक्य में पद परस्पर संबद्ध (Inter-related) होते हैं। जैसे– केवल 'राम' कहने से वाक्य पूरा नहीं होता है। जिज्ञासा होती है कि वह क्या करता है ?, 'पढ़ता है' कहने पर जिज्ञासा होती है कि 'कौन पढ़ता है? क्या पढ़ता है?।' इसी प्रकार केवल 'पुस्तक' कहने से भी वाक्य की पूर्ति नहीं होती। पुस्तक का क्या होता है ? रामः पुस्तकं पठति (राम पुस्तक पढ़ता है), वाक्य में कर्ता 'राम', 'पुस्तक' नाम के कर्म को, 'पढ़ना' क्रिया करता है। ये तीनों पद 'रामः पुस्तकं पठति' परस्पर आकांक्षा–युक्त (साकांक्ष, अपेक्षायुक्त) है, अतः वाक्य पूर्ण हुआ। आकांक्षा के द्वारा श्रोता की जिज्ञासा को पूति होती है, साकांक्ष पद ही वाक्य होते हैं। आकांक्षा–रहित गाय, अश्व, मनुष्य आदि शब्द वाक्य नहीं होते।

(2) योग्यता – योग्यता का अर्थ है–पदों में पारस्परिक संबन्ध का योग्यता या क्षमता । अर्थात्–पदों के द्वारा जो अर्थ कहा जा रहा है, उसको क्रिपात्मक रूप देने की योग्यता या क्षमता होनी चाहिए। इसका अभिप्राय यह होता है कि पदों के अन्वय में कोई बाधा न हो। पदों के अन्वय में दो प्रकार से बाधा पड़ती है- (क) अर्थ- मूलक, (ख) व्याकरण–मूलक।

(क) अर्थमूलक बाषा या अयोग्यता–कोई वाक्य व्याकरण की दृष्टि से ठीक हो, परन्तु अर्थ या प्रतीति की दृष्टि से अयोग्य या अनुपयुक्त हो तो वह वाक्य नहीं होगा। जैसे–स वह्निना सिञति (वह आग से सींचता है), स वायुना लिखति (वह हवा से लिखता है)। आग से सींचा नहीं जा सकता है और न हवा से लिखा जा सकता है, अतः ये दोनों वाक्य व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध होने पर भी अर्थ की दृष्टि से अयोग्य है, अतः वाक्य नहीं हैं, यहाँ पर अर्थ या प्रतीति–संबन्धी बाधा है।

(ख) व्याकरण–मूलक बाधा या अयोग्यता – वाक्य यदि अर्थ की दृष्टि से ठीक हो और ब्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध हो तो यह वाक्य नहीं माना जाएगा। लिंग, विभक्ति, वचन, विशेषण आदि में 'व्याकरणिक अन्विति' या एकरूपता होनी चाहिए। निम्नलिखित वाक्यों में व्याकरण की दृष्टि से अयोग्यता है:– 1. सुशीला जाता है। 2. राम आती है । 3. मैं सुन्दरी पुस्तक देखता है । 4. राम ने बोला। इनमें लिंग, विभक्ति, विशेषण आदि की अयोग्यता है।

अंग्रेजी में व्याकरणिक दृष्टि से एकरूपता को Congruence या Concord कहते हैं। हिन्दी में व्याकरणिक एकरूपता को 'अन्विति' या 'पदों की अन्विति' कहते है। अंग्रेजी के Congruence या Concord का अभिप्राय संस्कृत के 'योग्यता' शब्द में समाहित है।

(3) आसत्ति (संनिधि) – आासत्ति का अर्थ है–समीपता। इसको ही संनिधि भी कहते हैं। समीपता से अभिप्राय है कि वाक्य में प्रयुक्त पद लगातार या क्रमबद्ध रूप से उच्चरित हों। बीच में आवश्यकता से अधिक समय देने पर उन पदों का क्रम टूट जाएगा और वे वाक्य नहीं बनेंगे । 'मैं खाना खाता हूँ' में 'मैं खाना' आज बोला गया और २ घंटे या १ दिन बाद कहा गया– 'खाता हूँ' समय का अधिक व्यवधान हो जाने से यह वाक्य नहीं बनेगा और न इससे कोई अर्थ निकलेगा। इसलिए समय की समीपता या सांनिध्य अनिवार्य है, जिससे वाक्य क्रमबद्ध हो सके।

इस प्रकार आचार्य विश्वनाथ ने आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति से युक्त पदों के समूह को वाक्य कहा है। इसी प्रकार उक्त गुणों से युक्त वाक्यों के समूह को 'महा-वाक्य' नाम दिया है। सभी काव्य, महाकाव्य आदि ग्रन्थ 'महावाक्य' है। कुमारिल ने तन्त्रवातिक में वाक्यों से महावाक्य बनने में जंगांगिभाव से अपेक्षा होने से पुनः समन्वय होकर एकवाक्यता मानी है।'

कुछ विद्वानों ने कहा, आकांक्षा, योग्यता और अन्विति। वस्तुतः ये दोनों तत्व 'योग्यता' में ही आ जाते हैं।

1. सार्थकता-वाक्य में प्रयुक्त शब्द सार्थक होने चाहिएं। पद तभी वाक्य बनते हैं, जब वे सार्थक हों। 'योग्यता' के द्वारा पदों की सार्थकता भी आवश्यक है। सार्थक पद ही अर्थ-प्रतीति की योग्यता रखते हैं। अतः सार्थकता का पृथक् उल्लेख अनावश्यक है।

2. अन्वति (अन्वय) - अन्वति का अर्थ है-व्याकरण की दृष्टि से एक-रूपता। लिंग, वचन, विभक्ति, विशेषण आदि समरूप हों। लिंगभेद, वचनभेद, विभक्तिभेद आदि से व्याकरण संबंधी अनुरूपता विच्छिन्न होता है, अतः अन्विति की आवश्यकता है। ऊपर 'योग्यता' में व्याकरणमूलक बाघा का अभाव भी अनिवार्य बताया गया है। अतः अन्विति या अन्वय को पृथक मानना आवश्यक नहीं है। व्याकरण संबंधी अन्विति को अंग्रेजी में congruence, Concord, Agreement कहते हैं।

8.3.3 वाक्यों के प्रकार

विभिन्न दृष्टिकोण से विचार करने पर भाषा में प्रयुक्त वाक्यों के अनेक प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं। इनको संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है-

1. आकृति-मूलक भेद।
2. रचना-मूलक भेद।
3. अर्थ-मूलक भेद।
4. क्रिया-मूलक भेद।
5. शैली-मूलक भेद।

1. आकृतिमूलक भेद - विश्व की भाषाओं का आकृतिमूलक-भेद (Morpho& logical classification) किया जाता है। प्रकृति (Root) और प्रत्यय (Affix) या अर्थतत्त्व ओर संबन्धतत्त्व किस प्रकार मिलते हैं, इसके आधार पर वाक्य भी चार प्रकार के मिलते हैं-

(क) अयोगात्मक (Isolating) वाक्य।

(ख) श्लिष्ट योगात्मक (Inflectional) वाक्य।

(ग) अश्लिष्ट योगात्मक (Agglutinative) वाक्य।

(घ) प्रश्लिष्ट योगात्मक (Incorporating) वाक्य।

(क) अयोगात्मक वाक्य - अयोग का अर्थ है प्रकृति और प्रत्यय अथवा अर्थतत्व और संबंधतत्व का मिला हुआ न होना। अयोगात्मक भाषाओं में प्रकृति प्रत्यय अलग-अलग रहते हैं। इनमें कारक चिह्न आदि स्वतंत्र शब्द होते हैं। चीनी भाषा अयोगात्मक भाषा है। इसमें पद-क्रम निश्चित है-कर्ता, क्रिया, कर्म। विशेषण कर्ता के पूर्व आता है। जैसे--

1. ता जेन (बड़ा आदमी), (ता-बड़ा, जेन-आदमी)
   जेन ता (आदमी बड़ा है) (इसमें 'ता' विधेय हो गया है)

2. बो ता नी   (मैं तुझे मारता हूँ) (बो–मैं, ता–मारना, नी–तुम)

नी ता बो   (तू मुझे मारता है) (नी–तू, ता–मारना, वो– मैं)

(ख) शिलष्ट योगात्मक वाक्य – ऐसे वाक्य में प्रकृति और प्रत्यय शिलष्ट (मिले हुए, जुड़े) होते हैं। इनमें प्रकृति (शब्द, धातु) और प्रत्यय को अलग–अलग करना कठिन होता है। भारोपीय परिवार की प्राचीन भाषाएँ संस्कृत, लैटिन, ग्रीक, अवेस्ता आदि इसी प्रकार की है। संस्कृत के उदाहरण है–

वृक्षात् पत्रम् अपतत् (पेड़ से पत्ता गिरा)

अहं गुरुं दृष्टुम् अगच्छम्। (मैं गुरु को देखने गया)

यहाँ वृक्ष + पंचमी एक०, पत्र + द्वितीया एक०, पत् + लङ् प्र० पु० एक० है। अस्मद् + प्रथमा एक०, गुरु द्वितीया एक०, दृश् + तुम्, गम् + लङ् प्र० पु० एक० है। इन वाक्यों में प्रकृति और प्रत्यय को सरलता से अलग नहीं किया जा सकता है।

(ग) अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य – ऐसे वाक्यों में प्रकृति और प्रत्यय अथवा अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्व अश्लिष्ट (घनिष्ठता से न मिलना) ढंग से मिले हुए होते हैं। प्रकृति और प्रत्यय जुड़े होने पर भी तिल–तण्डुल–वत् (तिल और चावल की तरह) अलग–अलग देखे जा सकते हैं। तुर्की भाषा में इसके सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। जैसे–एल्–इम्–डे–कि (मेरे हाथ में है, एल्–हाथ, इम्–मेरा, डे–में, कि–होना) (El-im-de-ki)

(घ) प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य – ऐसे वाक्यों में प्रकृति और प्रत्यय इतने अधिक घनिष्ठ रूप में मिल जाते हैं कि पदों को पृथक् करना कठिन होता है। पूरा वाक्य एक शब्द–सा हो जाता है। ऐसे उदाहरण दक्षिण अमेरिका की चेरीकी भाषा, पेरीनीज पर्वत के पश्चिमी भाग में बोली जानेवाली बास्क भाषा आदि में मिलते है।

1. चेरीकी में-नाघोलिनिन (हमारे पास नाव लाओ)
2. बास्क में-हकारत (मैं तुझे ले जाता हूँ)

हिन्दी आदि की बोल–चाल की भाषा में ऐसे उदाहरण मिलते हैं–

1. भोजपुरी–सुनलेहलीहूं (मैंने सुन लिया है)
2. मेरठ की बोली–उन्नेका (उसने कहा)
3. गुजराती–मकुंबे (मैं कह्य जे, मैंने यह कहा कि)

(2) रचना-मूलक भेद – वाक्य की रचना या गठन के आधार पर वाक्य के तीन भेद होते हैं।

(क) सामान्य (सरल या साधारण) वाक्य (Simple sentence)

(ख) मिश्र वाक्य (Complex sentence)

(ग) संयुक्त वाक्य (Compound sentence)

(क)सामान्य वाक्य– इसमें एक उद्देश्य होता है और एक विधेय अर्थात् एक संज्ञा और एक किया। जैसे– वह पुस्तक पढ़ता है।

(ख)मिश्र वाक्य – इसमें एक मुख्य उपवाक्य होता है और उसके आश्रित एक या अनेक उपवाक्य होते हैं। जैसे–

1. यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः।
2. यस्यार्थाः तस्य मित्राणि।
3. जिसके पास धन होता है, उसके सभी मित्र होते हैं।
4. जिसके पास विद्या है, उसका सर्वत्र आदर होता है।

(ग) संयुक्त वाक्य- इसमें एक से अधिक प्रधान उपवाक्य होते हैं। इनके साथ आश्रित उपवाक्य एक या अनेक होते, है अयवा नहीं भी होते हैं। जैसे-

1. जब मैं गुरु की कुटी पर पहुँचा तो वे स्नान करने नदी पर गए थे।

2. यदाऽहं गुरुगृहं प्रापम्, तदा स स्नानाचं नदीं ग त आसीत्।

(3) अर्थमूलक भेद - अर्थ या भाव (Mood) की दृष्टि से वाक्य के प्रमुख 8 भेद किए जाते हैं।

1. विधि-वाक्य	कृष्ण काम करता है।
2. निषेध-वाक्य	कृष्ण काम नहीं करता है।
3. प्रश्न-वाक्य	क्या कृष्ण काम करता है ?
4. अनुज्ञा-वाक्य	तुम करो !
5. सन्देह-वाक्य	कृष्ण काम करता होगा।
6. कामना वाक्य	ईश्वर, सद्बुद्धि दे।
7. संकेतार्थक वाक्य	यदि कृष्ण पढ़ता तो अवश्य उत्तीर्ण होता।
8. विस्मयार्थक वाक्य	अरे तुम उत्तीर्ण हो गए !

सुर आदि के आधार पर अन्य भेद भी किए जा सकते है।

(1) क्रिया-मूलक भेद-वाक्य में क्रिया के आधार पर दो भेद होते हैं :-

(क) क्रियायुक्त वाक्य। (ख) क्रियाहीन वाक्य।

(क) क्रियायुक्त वाक्य- सामान्यतया सभी भाषाओं में एक वाक्य में एक क्रिया होती है। वह विधेय के रूप में होती है। अधिकांश वाक्य इसी कोटि में आते हैं। जैसे-सः पुस्तकं पठति (यह पुस्तक पढ़ता है)।

वाच्य (आवाज) के आधार पर क्रियायुक्त वाक्य तीन प्रकार के होते हैं। 1. कर्तृवाच्य, 2. कर्मवाच्य, 3. भाववाच्य।

1. कर्तृवाच्य में कर्ता मुख्य होता है। कर्ता में प्रथमा होती है। जैसे रामः पुस्तकं पठति। (राम पुस्तक पढ़ता है) **2. कर्मवाच्य** में कर्म मुख्य होता है। अतः कर्म में प्रथमा होती है और कर्ता में तृतीया। जैसे - मया पुस्तकं पठ्यते (मेरे द्वारा पुस्तक पढ़ी जाती है)। **3. भाववाच्य** में क्रिया मुख्य है। कर्म नहीं होता। कर्ता में तृतीया होती है और क्रिया में सदा प्रथम पुरुष एकवचन होता है। जैसे मया हस्यते। (मेरे द्वारा हंसा जाता है।), मया हसितम् (मैं हंसा)।

(ख) क्रियाहीन वाक्य - प्रचलन के आधार पर कई भाषाओं में क्रियाहीन वाक्यों का भी प्रयोग होता है। वहाँ क्रियापद गुप्त रहता है।

1. प्रचलन-मूलक - प्रचलन के आधार पर संस्कृत, रूसी, बंगला आदि में सहायक क्रिया के बिना भी वाक्यों का प्रयोग होता है। क्रिया अन्तनिहित (Under-stood) मानी जाती है। हिन्दी, अंग्रेजी में सामान्यतया सहायक क्रिया का होना अनिवार्य है। जैसे-

संस्कृत-इदं मम गृहम् (यह मेरा घर है)

रूसी-एता मोय दोम (यह मेरा घर है)

बंगला-एइ आमार बाड़ी (यह मेरा घर है)

2. प्रश्न-वाक्य-प्रश्न-वाक्यों में प्रश्न और उत्तर दोनों स्थलों पर या केवल उत्तर-वाक्य में क्रिया नहीं होती। जैसे-

प्रश्न-कस्मात् त्वम् (कहां से ?)।

उत्तर-प्रयायात् (प्रयाग से)।

यहाँ पर पूरा प्रश्न वाक्य होगा–तुम कहाँ से आ रहे हो ? उत्तर––मैं प्रयाग से आ रहा हूँ। प्रयत्नलाघव के कारण क्रियाहीन वाक्य का प्रयोग होता है।

3. मुहावरों में – लोकोक्तियों या मुहावरों में क्रियाहिन वाक्यों का प्रयोग होता है। जैसे यथा राजा तथा प्रजा (जैसा राजा वैसी प्रजा) गुणाः पूजास्थानम् (गुण पूजा के स्थान है) प्रज्ञाहीन अन्ध एव (बुद्धिहीन अन्धा है), घर का जोगी जोगना आन गांव का सिद्ध, आम गुठली के दाम, सत्यं शिवं सुन्दरम् जैसे नागनाथ वैसे सांपनाथ।

4. विज्ञापनों, समाचार-पत्रादि के शीर्षकों में- 'बूढ़े से जवान', 'नक्कालों से सावधान', 'देश में दुभिक्ष', 'युवकों पर हमला', 'हिन्दुओ सावधान', 'इस्लाम खतरे में' आदि।

5. आतंक, भय, विस्मय आदि के सूचक पदों में-आग!, चोर चोर!, हाय दुर्भाग्य!, बाढ़-बाढ़!, भूकम्प!

6. शैली मूलक भेद - शैली के आधार पर वाक्यों के तीन भेद किए जाते है-१. शिथिल वाक्य, २. समीकृत, ३. आवर्तक

1. शिथिल वाक्य- इसमें अलंकृत या मुहावरेदार वाक्य की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है। वक्ता या लेखक मनमाने ढंग से बात कहता है। जैसे- 'एक थी रानी कुन्ती, उसके पाँच पुत्तर, एक का नाम युधिष्ठिर, एक का नाम भीम, एक का नाम कुछ और, एक का नाम कुछ और, एक का नाम भूल गया।' यह कथावाचकों आदि की शैली होती है।

2. समीकृत वाक्य- इसमें संतुलन और संतुलन होता है। जैसे, यस्यार्थाः तस्य मित्राणि (जिसके पास पैसा उसी के मित्र) यतो धर्मस्ततो जयः इतो भ्रष्टततो भ्रष्टः यथा राजा तथा प्रजा, जिसकी लाठी उसकी भैंस, न घर का न घाट का। समीकृत वाक्य विरोधमूलक भी होते हैं। जैसे-कहां हंस कहां बगुला, कहां राजा कहां रंक, कहां शेर कहां सूअर। समीकृत वाक्य संतुलन आदि गुणधर्म के कारण लोकोक्ति के रूप में अनुकरणीय हो जाते हैं।

3. आवर्तक वाक्य - इसमें कथनीय वस्तु अन्त में दी जाती है। श्रोता की जिज्ञासा अन्तिम वाक्य सुनने पर ही पूर्ण होती है। यदि, अगर आदि लगाकर वाक्यों को लंबा किया जाता है। जैसे-'यदि सुख चाहिए, यदि शान्ति चाहिए, यदि कीर्ति चाहिए, यदि अमरता चाहिए तो विद्याध्ययन में मन लगाओ।'

8.3.4 वाक्य के अंग

पद-क्रम को इन सूक्ष्मताओं के होते हुए भी सामान्यतता भाषाओं के वाक्यों को दो भागों में विभक्त किया जाता है-

1. उद्देश्य (Subject) - जिसके विषय में कुछ कहा जाता है। जैसे- बालक आदि।

2. विधेय (Predicate) - जो कुछ कहा जाता है। जैसे-पढ़ता है, जाता है, आदि।

अंग्रेजी के भाषाशास्त्री इसे 'Actor-Action Construction' (कर्ता-क्रिया वाली रचना) कहते हैं। कर्ता के स्थान पर आने वाले शब्दों को 'Nominative Substantive Expressions' (संज्ञा-स्थानीय शब्द) कहते हैं। क्रिया के स्थान पर आने वाले शब्दों को 'Finite Verb Eñpressions' (क्रिया-स्थानीय शब्द) कहते है। क्रिया शब्द क्रिया का ही काम करते हैं, परन्तु संज्ञाशब्द 'विधेय' के पूरक के रूप में भी आ सकते है। जैसे- वह है राम। मैं हूँ मोहन।

(क) उद्देश्य को दो भागों में बांटा जाता है- 1. कर्ता, 2. कर्ता का विस्तार।

(ख) विधेय के अनेक भाग हैं-कर्ता, कर्म, करण आदि कारकों का विस्तार, क्रिया, क्रिया-विशेषण, पूरक, पूर्वकालिक क्रिया आदि।

रचना के आधार पर वाक्य के तीन भेद किए जाते हैं:-

(क) सामान्य वाक्य (Simple Sentence)

(ख) मिश्र वाक्य (Compleñ Sentence)

(ग) संयुक्त वाक्य (Compound Sentence)

8.3.5 वाक्य विश्लेषण -

विश्व की समस्त भाषाओं को वाक्य-रचना-पद्धति एक प्रकार की नहीं अतः उनके वाक्यों का विभाजन भो एक प्रकार से नहीं किया जा सकता है। प्रत्येक भाषा में कर्ता, कर्म, क्रिया, विशेषण आदि का स्थान निश्चित नहीं है। संस्कृत और हिन्दी में सामान्यतया क्रम है-१. कर्ता, २. कर्म, ३. क्रिया। कर्ता के विशेषण कर्ता से पूर्व और क्रिया-विशेषण क्रिया से पूर्व आते हैं। अंग्रेजी में क्रम-भेद है। अंग्रेजी में है-कर्ता, क्रिया, कर्म।

संस्कृत	**हिन्दी**	**अंग्रेजी**
बालकः पुस्तकं पठति	बालक पुस्तक पढ़ता है	The boy reads the books

संस्कृत में क्रम बदलकर भी बोला जाता है - पुस्तकं पठति बालकः, पठति बालकः पुस्तकम्। हिन्दी में भी अब क्रमभेद मिलता है। जैसे कह रहे थे तुम। उठा लो बोझ। पढ़ ली न तुमने पुस्तक ? आ गए धुर्वाधिराज। न आये बादल, न पड़ी वर्षा।

आकलन के प्रश्न

1) वाक्य किसे कहते है ?

2) वाक्य के कितने अंग हैं ?

3) रचना के आधार पर वाक्य के कितने भेद है।

8.4 सारांश :

सारांश रूप में हम कह सकते हैं कि वाक्य भाषा की सार्थक इकाई है। पदों के सार्थक समूह को वाक्य कहते है। वाक्य के आधार पर व्यक्ति, व्यक्ति के साथ व्यक्ति समाज के साथ अपने भाव की अभिव्यक्ति करता है। भाषा की यह अभिव्यक्ति अर्थवान होती है।

8.5 कठिन शब्दावली

वाक्य - पदों के सार्थक समूह।

उद्देश्य - जिसके विषय में वाक्य में बात कही जाए। विधेय - जिसके विषय में जो कहा जाए।

8.6. स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तरः-

1) उत्तर - शब्दों/पदों के सार्थक समूह को वाक्य कहते हैं ।

2) उत्तर- वाक्य के दो अंग है - उद्देश्य और विधेय ।

3) उत्तर- तीन : सरलवाक्य, संयुक्त वाक्य, मिश्र वाक्य ।

8.7 संदर्भित पुस्तकें

1) डॉ. भोलानाथ तिवारी - भाषा विज्ञान।

2) डॉ. कपिल द्विवेदी - भाषा विज्ञान एवं भाषा शाखा।

8.8 सात्रिक प्रश्न

1) वाक्य का अर्थ एवं परिभाषा लिखिए।

2) वाक्य का स्वरूप स्पष्ट करें।

3) रचना के आधार पर वाक्य के भेदों का वर्णन करें।

*****

इकाई-9

अर्थ विज्ञान का स्वरूप

संरचना

9.1 भूमिका
9.2 उद्देश्य
9.3 अर्थ विज्ञान का स्वरूप
9.3.1 अर्थ का लक्षण
9.3.2 अर्थ ज्ञान की प्रक्रिया
9.3.3 अर्थ विज्ञान का नामकरण
9.3.4 अर्थ विज्ञान का इतिहास
9.3.5 अर्थ का महत्त्व
9.3.6 अर्थ ज्ञान का साधन
9.3.7 अर्थ ज्ञान के बाधक तत्व
स्वयं आकलन हेतु प्रश्न
9.4 सारांश
9.5 कठिन शब्दावली
9.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
9.7 संदर्भित पुस्तकें
9.8 सात्रिक प्रश्न

9.1 भूमिका :

भाषा अभिव्यक्ति हेतु अर्थ महत्त्वपूर्ण तत्व है। शब्द यदि भाषा शरीर है तो अर्थ आत्मा है इसलिए अर्थ के बिना भाषा शब्द जीवित नहीं है। अर्थ भाषा शब्द का आन्तरिक ज्ञान करवाता है। हम कह सकते है कि जिस प्रकार शब्द और वाक्य का अध्ययन करने के लिए शब्द विज्ञान और वाक्य का अध्ययन करने के लिए वाक्य विज्ञान, उसी प्रकार अर्थ का अध्ययन करने के लिए अर्थ विज्ञान की आवश्यकता रहती है। जिसमें अर्थ के विकास क्रम भेद और परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है।

9.2 उद्देश्य :

(1) अर्थ के स्वरूप की जानकारी

(2) अर्थ की परिभाषा का बोध।

(3) अर्थ के नामकरण की जानकारी

(4) अर्थ परिवर्तन की दिशाओं का बोध।

(5) अर्थ परिवर्तन के कारणों का ज्ञान।

9.3 अर्थ विज्ञान का स्वरूप

विकासोऽर्चस्प तद्भेदः, परिवृत्तेन हेतवः।

एकानेकार्थसंज्ञानम्, अर्थविज्ञानमिष्यते।।

(अर्थ-विकास, अर्थविकास के भेद, अर्थ-परिवर्तन के कारण, एकार्थक और अनेकार्थक शब्दों के अर्थ का निर्णय, अर्थविज्ञान है।)

अर्थ शब्द की आत्मा है, शब्द-शरीर है। ध्वनि-विज्ञान, पद-विज्ञान और वाक्य-विज्ञान भाषा के शरीर है। इनमें भाषा के शरीर या बाह्यरूप का विवेचन, विश्लेषण किया जाता है। अर्थ आत्मा है। अर्थविज्ञान में शब्दार्थ के आन्तरिक पक्ष का विवेचन, विश्लेषण किया जाता है। अर्थ क्या है? अर्थ का ज्ञान कैसे होता है? शब्द और अर्थ में क्या संबन्ध है? संकेतग्रह कैसे होता है? मन में बिम्ब-निर्माण कैसे होता है? बिम्ब से अर्थबोध की प्रक्रिया आदि भाषा के आन्तरिक पक्ष है। अर्थविज्ञान में शब्दों के अर्थ में विकास, अर्थविकास की दिशाएँ, अर्थपरिवर्तन के कारण, एकार्थक और अनेकार्थक शब्दों के अर्थ का निर्णय, संकेतग्रह के साधन आदि अर्थविज्ञान के बाह्य पक्ष है।

जिस प्रकार शरीर के ज्ञान के बाद आत्मा का ज्ञान अपेक्षित है, उसी प्रकार. ध्वनि, पद, वाक्य के ज्ञान के बाद अर्थरूपी आत्मा का ज्ञान अपेक्षित एवं अनिवार्य है। अतएव भर्तृहरि ने वाक्यार्थरूपी प्रतिभा को आत्मा कहा है-

यन्नेत्रः प्रतिभाात्माऽयं भेदरूपः प्रत्ययते। वाक्यदीप।

9.3.1 अर्थ का लक्षण

अर्थ के अनेक लक्षण दिए गए हैं। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में १८ और ओग्डेन एवं रिचार्ड ने Meaning of Meaning में अर्थ के १६ लक्षण दिए है।' भर्तृहरि ने संक्षेप में अर्थ का सुन्दर लक्षण दिया है कि-**'शब्द के द्वारा जिस अर्थ की प्रतीति होती है, उसे ही अर्थ कहते हैं'।** अर्थ का अन्य लक्षण नहीं है।'

यस्मिस्तुच्चरिते शब्दे यदा योऽर्थः प्रतीयते।

तमाहुरर्थ तस्यैव नान्यदर्थस्य लक्षणम्।।

इससे स्पष्ट है कि अर्थ का सामान्य लक्षण 'प्रतीति' है। प्रत्येक व्यक्ति शब्द को सुनकर कुछ अर्थ समझता है। उसकी यह व्यक्तिगत अनुभूति 'प्रतीति' ही उसका अर्थ होता है।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रत्येक भाषा में एक ही अर्थ के लिए पृथक-पृथक शब्द है। शब्दों के अर्थ स्वाभाविक नहीं, अपितु सांकेतिक एवं यदृच्छामूलक है। एक ही शब्द का विभिन्न भाषाओं में विभिन्न अर्थ होता है। प्रत्येक भाषा का वक्ता और श्रोता अपनी भाषा में संकेतित अर्थ को ही ग्रहण करता है।

9.3.2 अर्थ ज्ञान की प्रक्रिया

ज्ञान, प्रत्यय या प्रतीति भाषा का मानसिक पक्ष है। मन में विचार उठते हैं, वक्ता शब्दों के द्वारा उन्हें प्रेषित करता है, श्रोता कान से उन शब्दों को सुनता है, मन को उनके अयों को प्रतीति होती है। इसका विवरण अध्याय २-६ में दिया गया है। इस प्रकार भाषा का उद्‌गम और अर्थ-ज्ञान (अर्यावगम) रूपी परिणति दोनों भाषा के मानसिक पक्ष है। भाषा वक्ता से लेकर श्रोता तक आदि से अन्त तक, मानसिक पक्ष में अनुस्यूत है।

9.3.3 अर्थविज्ञान का नामकरण

प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में अर्थसंबन्धी विवेचन को अर्थविज्ञान नाम दिया है।

शुश्रूषा श्रवणं चौव ग्रहणं धारणं तथा।

उहापोहोऽयं विज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः॥ महाभारत, वनपर्व २-१९

यथा च चोदनाशब्दो वैदिक्यामेव वर्तते।

शब्दज्ञानार्थविज्ञानशब्दौ शास्त्रे तथा स्थितौ॥ श्लोकवार्तिक, शब्दपरिच्छेद-13

भाषाविज्ञान के अर्थ-विषयक विवेचन को आजकल अंग्रेजी में Semantics (सीमेन्टिक्स) कहते हैं। यह नाम फ्रेन्च विद्वान् मिशेल ब्रेआल (Michel Bre'al) द्वारा प्रचारित हुआ है। हिन्दी में इसके लिए अर्थविचार, शब्दार्थविचार, शब्दार्थ-विज्ञान आदि नाम भी प्रचलित रहे है। संप्रति अर्थविज्ञान नाम ही सर्वप्रिय है। अंग्रेजी में इसके लिए प्रारम्भ में अनेक नाम चले। जैसे - Rhematology (रहेमेटोलॉजी), Semasialogy (सीमेसिआलॉजी), Rhematics (हेमेटिक्स), Sematology (सीमेटोलॉजी), आदि। एक दर्जन से अधिक नामों में से अब Semantics (सीमेन्टिक्स) नाम ही शेष रह गया है।

9.3.4 अर्थविज्ञान का इतिहास

विषय के रूप में 'अर्थविज्ञान' नया विषय है। प्रारम्भ में अनेक भाषा-शास्त्रियों ने इसे दर्शन का विषय कहकर भाषाविज्ञान में रखने पर आपत्ति की थो। परन्तु अब यह भाषाशास्त्र का एक अंग बन गया है। भारतवर्ष में शब्द और अर्थ का विवेचन दर्शनशास्त्र का विषय रहा है। न्यायदर्शन और मीमांसादर्शन में शब्दशक्ति, शब्दार्थज्ञान, स्वतः प्रामाण्य-परतः प्रामाण्य आादि का गहन विवेचन हुआ है। वैदिक साहित्य में इन्द्र, वृत्र, वृत्रहा, नदी, उदक, तीर्थ आदि शब्दों की निरुक्ति (Etymo-logy) मिलती है। ऋग्वेद में अर्थ के महत्त्व पर कुछ मन्त्र है। २ यास्ककृत निरुक्त ही अर्थविज्ञान का सर्वप्रथम भारतीय ग्रन्थ है। जिसमें निर्वचन के नियम, अर्थ का महत्त्व, मन्त्रार्थ की विधि, प्रकरण आदि का महत्व बताया गया है। इसके पश्चात् पतंजलि कृत 'महाभाष्य' और भर्तृहरि-कृत 'वादयपदीय' इस विषय के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। अर्थविज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करने काले पाश्चात्य विद्वान् है-फ्रेंच विद्वान् मिशेल ब्रेआल, जर्मन विद्वान पाल, के. रीजिंग, ए. बेनरी, पोस्टगेट, स्वीट आदि।

9.3.5 अर्थ का महत्त्व

आचार्य पाणिनि ने भाषा का सार 'अर्थ' माना है। अतएव 'अर्थवान्' या सार्थक शब्दों को ही 'प्रतिपदिक' (मूल संज्ञाशब्द या प्रकृति) माना है।

अर्थवधातुरप्रत्ययः प्रतिपदिकम्।

यास्क ने अपने ग्रन्थ 'निरुक्त' अर्थात् निर्वचन, निरुक्ति (Etymology) का आधार ही अर्थ को माना है। अर्थ-ज्ञान के बिना निर्वचन असंभव है।

अर्थनित्यः परीक्षिते। निरुक्त 2-1

यास्क ने कई स्थानों पर अर्थ का महत्व घोषित किया है। उनका कथन है कि जो वेद पढ़कर उसका अर्थ नहीं जानता, वह ठूंठ है, भारवाहक पशु है। जो अर्थ जानता है, उसे ही समस्त कल्याण प्राप्त होता है। वही ज्ञान की ज्योति से पापों को नष्ट करके ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है।

स्वाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम।

योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधुतपापमा।।

पतंजलि ने भी महाभाष्य में यही भाव व्यक्त किया है कि- 'अर्थज्ञान के बिना जो शब्द मूलपाठ के रूप में दुहराया जाता है, यह उसी प्रकार ज्ञान को प्रज्वलित नहीं करता है, जैसे बिना अग्नि में डाला हुआ सूखा इन्धन'।

यदधीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते।

अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कहिंचित्।।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में 'अर्थन' को अजेय योद्धा बताया गया है और अर्थज्ञान-हीन को बिना दूधवाली गाय एवं फल-फूलहीन वाणी का संग्रहकर्ता बताया है**:**

उत त्वं सख्ये स्थिरपितामहूनैनं हिनवंत्यपि वाजिनेषु।

अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवां अफलामपुष्पाम्।।

यास्क ने भी अर्थ को वाणी का फल-फूल माना है।

अर्थ वाचः पुष्पफलमाह।

इससे स्पष्ट है कि भाषा की सार्थकता अर्थ से है। अर्थ ही भाषा का सर्वस्व है। अर्थहीन भाषा सन्तानहीन स्त्री के तुल्य है।

अर्थज्ञान के दो साधन- अर्थ का ज्ञान प्रत्यय या प्रतीति के रूप में होता है। इस प्रतीति या ज्ञान के दो साधन है:- (१) आत्म-प्रत्यक्ष (स्व-प्रत्यक्ष या आत्म-अनुभव), (२) पर प्रत्यक्ष (पर-अनुभव)।

(१) आत्म-प्रत्यक्ष- आत्म-प्रत्यक्ष का अर्थ है-स्वयं किसी वस्तु आदि को अपनी आँखों आदि से देखना या अनुभव करना। जैसे-मनुष्य, स्त्री, गाय, अश्व, पक्षी आदि को देखकर स्वयं ज्ञान प्राप्त करना। इसी प्रकार संतरा, नीबू आदि का रस स्वयं चखकर उनके रस का अनुभव करना। यह आत्म-प्रत्यक्ष है। आत्म-प्रत्यक्ष स्पष्ट, अधिक प्रामाणिक और स्थायी होता है। आत्म-प्रत्यक्ष के भी दो भेद है- (क) बाह्य-इन्द्रिय-जन्य, (ख) अन्तरिन्द्रिय-जन्य।

(क) बाह्य-इन्द्रिय-जन्य-बाह्य इन्द्रियाँ है-आँख, नाक, कान, स्वचा और जिह्वां। आँख से देखी हुई वस्तु, नाक से सूंघी हुई गन्ध, कान से सुना हुआ शब्द, त्वचा से छुआ हुआ पदार्थ और जीभ से चखा हुआ स्वाद, बाह्य-इन्द्रिय-अन्य ज्ञान या अनुभव है। इनका ज्ञान और इनको प्रामाणिकता इन्द्रियों ने स्वयं प्रत्यक्ष की है।

(ख) अन्तरिन्द्रिय जन्य ज्ञान-अन्तरिन्द्रिय या अन्तःकरण मन है। कुछ सूक्ष्म चीजों का ज्ञान बाह्य इन्द्रियाँ नहीं कर पातीं, उनका ज्ञान मन करता है। जैसे-सुख या दुःख का अनुभव, शोक और क्रोध का अनुभव, भूख-प्यास का अनुभव आदि। शोक, दुःख, हर्ष, क्षोभ आदि का अनुभव व्यक्ति स्वयं मन से करता है। यह अन्तरिन्द्रिय-जन्य आत्म-प्रत्यक्ष है। अन्तरिन्द्रिय से होने वाला प्रत्यक्ष सूक्ष्म होने के कारण कम स्पष्ट और कुछ अंश तक अनिर्वचनीय एवं अवर्णनीय होता है।

(२) पर-प्रत्यक्ष-पर-प्रत्यक्ष का अर्थ है-जिसे पर या दूसरे ने देखा है। जिन देशों, स्थानों, पर्वतों, समुद्रों आदि को हमने स्वयं नहीं देखा है, उनका ज्ञान हम दूसरों के प्रत्यक्ष से करते हैं, जिन्होंने स्वयं उसे देखा है। पर-प्रत्यक्ष के आधार पर ही हम भूगोल में सभी देशों, नगरों, नदियों, समुद्रों, दर्शनीय स्थलों का ज्ञान प्राप्त करते है। पर प्रत्यक्ष में ही आप्तवाक्य, आप्त-वचन या प्रामाणिक व्यक्तियों के कथन भी आते हैं। अतएव वेद, शास्त्र, स्मृतियों आदि से हम पाप-पुष्प, धर्म-अधर्म, स्वर्ग- नरक, मोक्ष, ईश्वर, जीव, आत्मा-परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करते है।

9.3.6 संकेतग्रह (अर्थज्ञान) के साधन

आचार्य जगदीश ने 'शब्दशक्ति प्रकाशिका' में संकेतग्रह या अर्थज्ञान 8 साधन माने हैं-

शक्तिग्रहं व्याकरणोपमान-कोशाप्तावाक्याद् व्यवहारतश्रच

वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति सांन्निध्यतः सिद्धपदस्यः वृद्धाः॥

1. व्याकरण, 2. उपमान, 3. कोश, 4. आप्तवाक्य, 5. व्यवहार, 6. वाक्यशेप (प्रकरण), 7. विवृत्ति (विवरण, व्याख्या) 8. प्रसिद्ध पद का सांनिध्य।

(1) व्याकरण - व्याकरण शब्दों के अर्थ के ज्ञान में अत्यंत सहायक है। उससे ही प्रकृति-प्रत्यय, शब्दरूप, समास, तद्धित, कृत स्त्रीलिंग प्रत्ययों आदि का बोध होता है। कर्ता-कृ (करना) + तु (ता प्रत्यय, वाला अर्थ), कर्ता-करने वाला, अर्थ ज्ञात हुआ। पठ् से पठति, अपठत्, पठिष्यति-पढ़ता है। पढ़ा, पढ़ेगा का अंतर व्याकरण ही बतायेगा। वासुदेव-वसुदेव+अ (पुत्र अर्थ में) वसुदेव का पुत्र, अर्थ व्याकरण से ही स्पष्ट होगा।

(2) उपमान :- उपमान का अर्थ है सादृश्य। सदृश वस्तु बताकर किसी शब्द का अर्थ बताना। जैसे गौरिव गवयः (गाय के तुल्य नील गाय होती है)। इस उपनाम से गवय (नील गाय) का अर्थ ज्ञात हो जाता है।

(3) कोश- कोशग्रंथों से शब्दों का अर्थ ज्ञात करने में बहुत सहायता मिलती है। वृत्रहा, त्रिपुरारि, मध्वरि, काय आदि का अर्थ हमें ज्ञात नहीं है तो कोश-ग्रंथ की सहायता से इनका अर्थ इंद्र, शिव, विष्णु, शरीर आदि ज्ञात हो जाता है।

(4) आलवाक्य :- ययार्यवक्ता को 'आत' कहते है। वेद, शास्त्र, गुरु, माता, पिता आदि आप्त में गिने जाते है। बालक माता-पिता को आप्त मानकर ही बचपन में सारी भाषा सीखता है। ईश्वर, जीव, पाप, पुण्य, मोक्ष आदि का ज्ञान हमें वेद आदि से ही होता है।

(5) व्यवहार - व्यवहार का अभिप्राय है- लोक-व्यवहार। बालक से लेकर वृद्ध तक लोक-व्यवहार से ही सबसे अधिक अर्थ-ज्ञान या संकेतग्रह करते है। संसार की सभी वस्तुओं के नाम हम लोक-व्यवहार से ही जानते हैं। माता-पिता, गुरु, साथी, मित्र आदि के व्यवहार से ही संबन्धियों के नाम, संबन्ध (भाई, चाचा, मामा आदि) का ज्ञान, पशु-पक्षियों के नाम, बाजार की सभी चीजों के नाम आदि जानते हैं। लोक-व्यवहार अर्थज्ञान का सर्वोत्तम साधन है।

(6) वाक्यशेष (प्रकरण) वाक्यशेष का अर्थ है-प्रकरण। प्रकरण या प्रसंग नानार्थक शब्दों के अर्थ-निर्णय में सर्वोत्तम सहायक है। 'रस' और 'ध्वनि' शब्द के अनेक अर्थ हैं। प्रसंग के अनुसार अर्थ का निर्णय होता है। जैसे-1. 'रसो वै सः' में रस का अर्थ 'आनंद' लिया जाएगा। परमात्मा आनंदरूप है। 2. 'वाक्यं' रसात्मकं काव्यम्। (रसयुक्त वाक्य काव्य है) में रस का अर्थ 'काव्य रस है।' 'सरसं भोजनम्' (रसयुक्त भोजन) में रस का अर्थ भोज्य षड्रस है। 4 'ध्वनि रात्मा काव्यस्य' (काव्य की आत्मा ध्वनि है) में ध्वनि का अर्थ 'व्यंजना' है। 5 'कोकिल ध्वनि' में ध्वनि का अर्थ 'शब्द या कूजन' है।

(7) विवृति (विवरण, व्याख्या) - विवरण या ब्याख्या में अनेक शब्दों का अर्थ स्पष्ट होता है। विशेषरूप से पारिभाषिक, तकनीकी या दार्शनिक आदि शब्दों को बिना व्याख्या के नहीं समझा जा सकता है। जैसे-तन्त्र, विधान, विधि, शासन-पद्धति, अर्थशास्त्र, ज्योतिष, व्याकरण-दर्शन, अद्वैत, द्वैत, त्रैत, विशिष्टाद्वैत आदि।

(8) प्रसिद्ध (या ज्ञात) पद का सांनिध्य- प्रसिद्ध या ज्ञात पदों की सभी-पता से अज्ञात शब्द का अर्थ ज्ञात होता है। जैसे- 'बलाहक और विद्युत् का संयोग' में विद्युत् (बिजली) का अर्थ ज्ञात होने से बलाहक का अर्थ 'बादल' ज्ञात हुआ। 'पायोधि में मगर' मगर का अर्थ ज्ञात होने से पायोधि का अर्थ 'समुद्र' ज्ञात होता है। 'सुधा' के - दो अर्थ है-अमृत और चूना। 'सुधा-सिक्त भवन' में भवन के सांनिध्य से 'चूना' अर्थ लिया जाएगा (चूने से पुता मकान), 'सुधा-पान से अमर देवगण' में देवगण के सांनिध्य से सुधा का अर्थ 'अमृत' लिया जाएगा।

पाश्चात्य विद्वानों ने अर्थबोध के तीन साधन माने हैं:-

1. व्यवहार (Demonstration)- किसी वस्तु का बोध कराने के लिए उसे बार-बार दिखाना या उसकी ओर इंगित करना। इस तरह ब्लैकबोर्ड, पेन्सिल, कलम, चाक, पुस्तक, कापी, छात्र आदि शब्दों का बोध कराया जाता है।

2. विवरण (Circumlocution) - किसी वस्तु का विवरण देकर उसका बोध कराना। जैसे - समुद्र, पहाड़, जंगल, ताजमहल, किला आदि शब्दों का ज्ञान विवरण देकर कराया जाता है।

3. अनुवाद (Translation) - एक ही भाषा के कठिन शब्दों को या अन्य भाषा के शब्दों को अनुवाद के द्वारा समझाया जाता है। जैसे- शतक्रतु = इन्द्र, विव- स्वान् = सूर्य। अंग्रेज को सेब = Apple, आम = Mango कहकर समझाया जाता है।

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा निर्दिष्ट अर्थबोध के ये तीन साधन उपर्युक्त आठ साधनों की तुलना में बहुत न्यून प्रतीत होते हैं।

9.3.7 संकेतग्रह के बाधक तत्त्व

निम्नलिखित तत्त्व संकेतग्रह में बाधक होते हैं -

समरूपता का अभाव - वक्ता और श्रोता में सम-रूपता, एक प्रकार का स्तरर सामानाधिकरण्य (समान-एक, अधिकरण-आश्रय) का अभाव संकेतग्रह में बाधक होता है। यह तीन प्रकार का होता है-

(क) भाषागत समरूपता - वक्ता और श्रोता यदि एक-दूसरे की भाषा समझते होंगे तभी संकेतग्रह या अर्थबोध होगा, अन्यथा नहीं। अतएव रूसी, चीनी, जापानी भाषा वाले से हिन्दी बोलने वाले का वार्तालाप दुभाषिये के बिना असंभव होता है। दोनों में भाषा की समता नहीं है।

(ख) बौद्धिक समरूपता- वक्ता और श्रोता का बौद्धिक स्तर समान होगा, तभी दोनों एक दूसरे का अभिप्राय ठीक समझ सकेंगे। गँवार के सम्मुख रस-निरूपण, ध्वनि-सिद्धान्त या वक्रोक्ति की चर्चा 'भैंस के आगे बीन बजाना होगा'। यहाँ दोनों का बौद्धिक स्तर समान नहीं है।

(ग) भावात्मक समरूपता-वक्ता और श्रोता में यदि भावात्मक या हार्दिक समानता नहीं होगी तो अर्थबोध नहीं होगा। 'सहृदय' ही रसध्वनि को समझ सकेगा। नीरस व्यक्ति के लिए ऐसा काव्य अर्थहीन है।

2. अशुद्ध अर्थज्ञान- यदि शब्द का अशुद्ध अर्थ समझ रखा है तो उससे अर्थ-बोध नहीं होगा। यदि किसी ने 'बर्फी' का 'ब्रह्मचारी, शिष्य' के स्थान 'रंगवाला' अर्थ समझा है, या 'श्रोत्रिय' (वेदविद्) का अर्थ 'सुन्दर कानवाला' या 'शालीन' (शिष्ट) का अर्थ 'सुन्दर मकान वाला' समझा है तो उससे अर्थबोध नहीं होगा।

3. संकेत का भूल जाना- शब्द का अर्थ स्मरण किया था, परन्तु वह अनभ्यास के कारण भूल गया है तो उससे अर्थज्ञान नहीं होगा। 'अन्वयव्यतिरेक' 'अपोद्धार (विश्लेषण)' 'परिदेवना (विलाप)' का अर्थ भूल गया है तो इन शब्दों के प्रयोग से अर्थबोध नहीं होगा।

4. आवृत्तिजन्य दृढ़ता का अभाव - बार-बार आवृत्ति न करने पर शब्द का अर्थ विस्मृत हो जाता है। आवृत्ति से शब्द का अर्थ मस्तिष्क में बद्धमूल हो जाता है। मस्तिष्क में शब्द का अर्थ बद्धमूल न होने पर वह अर्थ तुरन्त उपस्थित नहीं होगा और अर्थबोध नहीं होगा।

ईश्वरकृष्ण ने सांख्यकारिका में प्रत्यक्ष ज्ञान के बाधक ८ कारण गिनाए है। ये भी संकेतग्रह के बाधक तत्य के रूप में लिए जा सकते हैं। वे है--

अतिदूरात् सामीप्याद् इन्द्रियघटानमनोऽनवस्थानात।

सौक्ष्ययाद् व्यवधानादभिभवात् समानाभिहाराज्च॥

5. अतिदूरता-वक्ता और श्रोता के एक-दूसरे से बहुत दूर होने पर संकेतग्रह नहीं हो सकेगा। दूरी के कारण दोनों को एक दूसरे की आवाज स्पष्ट नहीं सुनाई पड़ने से अर्थबोध नहीं होगा।

6. अतित्समीपता:-अत्यधिक समीपता होने पर भी संकेतग्रह नहीं हो पाता। कोई कान के बिलकुल पास जोर-जोर से बोले तो वे शब्द स्पष्ट नहीं सुनाई पड़ते, अत: अर्थबोध नहीं होता।

7. इन्द्रियघात :- इन्द्रियपात का अभिप्राय है ज्ञानेन्द्रिय में किसी प्रकार की न्यूनता आ जाना। कान से शब्द सुना जाता है। यदि वक्ता या श्रोता अथवा दोनों कान के बहरे हों तो शब्द न सुन सकने के कारण संकेतग्रह न होने से अर्थबोध नहीं होगा।

8. मन की अस्थिरता या अनवाधनता- यदि वक्ता या श्रोता अथवा दोनों के मन एकाग्र नहीं है और वे ध्यान से एक-दूसर को बात नहीं सुन रहे है तो शब्द से संकेतग्रह नहीं होगा और न अर्थज्ञान होगा। रूप, रस, 0शब्द आदि सभी प्रकार के ज्ञान के लिए मन की एकाग्रता अनिवार्य है।

9. अतिसूक्ष्मता :- यदि ध्वनि बहुत सूक्ष्म या धीमी है तो यह श्रोता के कान तक नहीं पहुँच पाती। अतएव संकेतग्रह के अभाव में अर्थबोध नहीं होता। बड़ी सभाओं आदि में आवाज धीमी होने से पीछे तक नहीं पहुँचती। पीछे बैठे श्रोता इसीलिए हल्ला करते हैं।

10. व्यवधान - वक्ता और श्रोता के मध्य किसी प्रकार का (दीवार, पर्दा आदि) व्यवधान आने से वक्ता की ध्वनि श्रोता तक नहीं पहुँचती है, अत: अर्थ-बोध नहीं होता है।

11. अभिभव :- अभिभव का अर्थ है-तिरस्कृत होना, दब जाना। पास में हल्ला या ऊँची आवाज हो रही हो तो धीमी आवाज दब जाएगी। वक्ता के पास विद्यमान कोई व्यक्ति जोर-जोर से बोल रहा हो तो वक्ता की ध्वनि दब जाएगी और श्रोता को उसकी बात स्पष्ट सुनाई न पड़ने से अर्थबोध नहीं होगा।

12. समानाभिहार :- समानाभिहार का अर्थ है-समाने अर्थात् सदृश वस्तु में, अभिहार-मिल जाना। एक साथ कई बाजे बज रहे हों तो प्रत्येक की ध्वनि स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ेगी, क्योंकि सबकी आवाज मिल गई है। इसी प्रकार स्टेज पर कई वक्ता एक साथ बोलने लगें तो उन सबकी आवाज मिश्रित हो जाएगी और श्रोता को किसी की भी बात स्पष्ट समझ में नहीं आएगी। इसको समानाभिहार कहते हैं।

अतएव भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में स्पष्ट निर्देश किया है कि शब्द केवल सत्ता-मात्र से अर्थ के बोधक नहीं होते, अपितु वे जब तक कान और मन के विषय नहीं हो जाते, तब तक अर्थ का बोध नहीं कराते हैं।

विषयत्वमनापन्नै: शब्दैनार्थ: प्रतीयते।

न सत्तयैव तेऽरायणंगृहीता: प्रकाशका:।।

स्वयं आकलन के प्रश्न

1) अर्थ विज्ञान किसे कहते है ?

2) अर्य ज्ञान के दो साधन लिखे।

3) अर्थ ज्ञान के विरोधक तत्व के दो नाम लिखो।

9.4 सारांश :

सारांश रूप में हम कह सकते है कि अर्थ भाषा की आत्मा है। अर्थ की सटीक अभिव्यक्ति ही भाषण की सफलता और असफलता निर्भर करती है। कि शब्द के माध्यम से ही कार्य की अभिव्यक्ति होती है। उपर्युक्त अध्ययन में कार्य के विकास क्रम और विविध परिस्थितियों में अर्थ परिवर्तन रहता है इन सभी को स्पष्ट किया गया है।

9.5 कृष्ण कठिन शब्दावली :

1) अर्थ विज्ञान- अर्थ के विकास क्रम का अध्ययन करने वाला विज्ञान।

2) आत्म-प्रत्यक्ष - स्वयं का अध्ययन करना। पर-प्रत्यक्ष-दूसरो का अनुभव।

9.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1) उत्तर- अर्थ विज्ञान में अर्थ का विकास, परिवर्तन, कारण की स्थितियों का अध्ययन किया जाता है।

2) 1. शब्द कोष 2. व्याकरण

3) उत्तर- 1. भाषागत समरूपता, 2. भावानागत समरूपता।

9.7 संदर्भित पुस्तकें

1) कपिल द्विवेदी - भाषा विज्ञान और भाषा शास्त्र।

2) भोलानाथ तिवारी - भाषाविज्ञान।

9.8 सात्रिक प्रश्न

1) अर्थ विज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट करें।

2) अर्थ ज्ञान के तत्व को स्पष्ट करो।

*****

इकाई-10
अर्थ परिवर्तन की दिशाएं

संरचना

10.1 भूमिका

10.2 उद्देश्य

10.3 अर्थ परिवर्तन की दिशाएं

10.3.1 अर्थ विस्तार

10.3.2 अर्थ संकोच

10.3.3 अर्थादेश

10.3.4 अर्थोत्कर्ष

10.3.5 अर्थाथकर्ष

10.3.6 शब्द और अर्थ का संबंध

स्वयं आकलन प्रश्न

10.4 सारांश

10.5 कठिन शब्दावली

10.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

10.7 संदर्भित पुस्तकें

10.8 सात्रिक प्रश्न

10.1 भूमिका :

प्रकृति का नियम परिवर्तनशील है। संसार की सभी वस्तुएं परिवर्तनशील हैं। जब किसी समाज या व्यक्ति की भाषा परिवर्तनशील है या बदलती रहती है तो समय और स्थिति को देखकर शब्दों में भी परिवर्तन आ जाता है। यह परिवर्तन केवल भाषा और शब्द में ही नहीं बल्कि शब्द और भाषा के अर्थ में भी आ जाता है यह परिवर्तन किसी भाषा और शब्द के अर्थ का विकास का सूचक है। अर्थ में यह परिवर्तन विविध प्रकार से होता है।

10.2 उद्देश्य :

(1) अर्थ की जानकारी।

(2) अर्थ के परिवर्तन की दिशाओं का ज्ञान

(3) अर्थ विस्तार का बोध

(4) अर्थ समोंच का बोध

10.3 अर्थपरिवर्तन (अर्थविकास) की दिशाएँ

संसार की सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील है। भाषा भी परिवर्तनशील है। जिस प्रकार ध्वनियों में परिवर्तन होता है, उसी प्रकार प्रत्येक भाषा के शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन होता रहता है। इस अर्थ-परिवर्तन को विकास-सिद्धान्त की दृष्टि से 'अर्थविकास' भी कहा जाता है। यह अर्थ-परिवर्तन तीन प्रकार का होता है-१. कहीं पर अर्थ का विस्तार होता है, २. कहीं पर अर्थ में संकोच होता है, ३. कहीं पर पुराने अर्थ के स्थान पर नया अर्थ आ जाता है। इन्हें ये नाम दिए गए है :-

(1) अर्थ-विस्तार (Expansion of Meaning)

(2) अर्थ-संकोच (Contraction of Meaning)

(3) अर्थादेश (Transference of Meaning)

इन तीनों के जो उदाहरण मिलते हैं, उन पर विचार करने से ज्ञात होता है कि कुछ स्थानों पर अर्थ अपने मूल अर्थ से उत्कृष्ट हो गया है और कहीं पर वह अपने मूल अर्थ से निकृष्ट, अपकृष्ट या घटिया हो गया है। इस दृष्टि से भी इनको दो भागों में रखा जाता है। ये उपर्युक्त तीनों भेदों में आते हैं; परन्तु सुविधा के लिए इन पर अलग भी विचार किया जाता है। ये भेद है-(क) अर्थोत्कर्ष (Elevation of Meaning)

(ख) अर्थापकर्ष (Deterioration of Meaning)

10.3.1 अर्थविस्तार :

कुछ शब्द मूल रूप में किसी विशेष या संकुचित अर्थ में प्रयुक्त होते थे। बाद में उनके अर्थ में विस्तार हो गया। जैसे-

1. कुशल : कुशल शब्द का अर्थ था-कुशान् लाति (कुशों को लाना या लेना)। कुश का अग्रभाग तीक्ष्ण होता है, उससे हाथ में छेद होने या कटने का भय रहता था। अत: कुश लाना चतुरता का सूचक था। अतएव तीक्ष्ण बुद्धि को 'कुशाग्रबुद्धि' कहा जाता है। यह शब्द धीरे-धीरे 'कुश लाना' अर्थ को छोड़कर 'चतुरता' और 'निपुणता' का अर्थ देने लगा। इस प्रकार इसके अर्थ में विस्तार हो गया। 'वह संगीत में कुशल है' वह शास्त्रों में कुशल है, वह खेलने में कुशल है, आदि।

2. प्रवीण :-'प्रवीण' का अर्थ था-प्रकृष्टो वीणायाम् (वीणावादन में श्रेष्ठ या निपुण)। यह शब्द वीणा-वादन की निपुणता को छोड़कर केवल 'निपुण' या दक्ष (चतुर) अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है। इसमें भी अर्थविस्तार हुआ है। जैसे-यह कृषिकर्म में प्रवीण है, यह साहित्य या दर्शन में प्रवीण है, यह कला में प्रवीण है, आदि।

3. तेल :- सबसे पहले 'तिल' को (पर तैल (तेल) नाम पड़ा। इसका अर्थ-विस्तार हुआ और अब यह तेल या द्रव- मात्र के लिए प्रयुक्त होने लगा है। सरसों का तेल, मूंगफली का तेल, बादाम का तेल आदि। यहाँ तक कि मिट्टी का तेल भी तेल में है। तिल के तेल के लिए 'तिलतैलम्' कहना पड़ा।

4. गोशाला, गोष्ठ :- गायों के रहने के स्थान को गोशाला या गोष्ठ कहते थे। उसमें बैल, भैंस, बकरी आदि भी बँधते है, फिर भी गोशाला नाम है। इस प्रकार गोशाला का अर्थ बड़ा। इसी प्रकार गोष्ठ (गोठ) का भी अर्थ बढ़ा। गोष्ठ से गोष्ठी बना है उसमें केवल बैठना अर्थ रह गया है। गोष्ठी में पशु के स्थान पर छात्र, अध्यापक, मनुष्य, विद्वान् सभी बैठते हैं। गोष्ठ शब्द इतना प्रचलित हुआ कि इसमें गो (गाय) का अर्थ जाता रहा और गो-गोष्ठम् (गाय-शाला), अविगोष्ठम् (भड़-शाला), अजा-गोष्ठम् (बकरी-शाला) कहना पड़ा।

5. महाराज :- यह राजा या महाराजा से लिए था, परन्तु इतना अर्थ-विस्तार हुआ कि किसी भी भद्र पुरुष को 'महाराज' कह सकते हैं। 'महाराज' रसोइया के अर्थ में बहुत प्रसिद्ध है।

6. गवेषणा :- प्रारम्भ में 'गाय चाहना' अर्थ में था। फिर यह 'गाय ढूंढना' अर्थ में आया। अब इसमें से गाय अर्थ हटकर केवल ढूंढना, खोज करना, अर्थ रह गया है। अब शोधकार्य के अर्थ में इसका प्रयोग होता है।

इसी प्रकार मषी या स्याही (काली स्याही) का अर्थ विस्तृत होने से सभी प्रकार की स्याही को 'स्याही' कहते हैं। 'अधर' नीचे के ओठ के लिए था। अब दोनों ओठों के लिए हो गया। इसी प्रकार बैल, पशु, गधा, उल्लू आदि शब्दों का अर्थ विस्तृत हुआ और वे 'मूर्ख' का भी अर्थ बताने लगे।

10.3.2 अर्थसंकोच

अर्थविस्तार के विपरीत कुछ शब्दों के अर्थों में संकोच हुआ है। उनका विस्तृत अर्थ संकुचित या सीमित हो गया है। यास्क ने निरुक्त में वस्तुओं के नामकरण पर विचार करते हुए-गो, अश्व, पृथ्वी आदि के उदाहरण देकर बताया है कि इनका व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ बहुत विस्तृत है, परन्तु ये किसी विशेष अर्थ में रूढ़ हो गए हैं। 'गच्छतीति गो:' चलने वाले को 'गो' (गाय) कहते हैं। मनुष्य भी चलता है, उसे गो (गाय) नहीं कह सकते। 'अश्नुते अध्वानम् इति अश्व:' सड़क पर चलने वाले की 'अश्व' (घोड़ा) कहते हैं। सभी सड़क पर चलने वालों को 'अश्व' (घोड़ा) नहीं कह सकते। 'प्रथनात् पृथ्वी' फैली होने के कारण 'पृथ्वी' (भूमि) नाम पड़ा। फैली हुई चादर, तम्बू, शामियाना को पृथ्वी नहीं कहेंगे। 'मनुष्य: मननात' मनन या चिन्तन करने वाले को 'मनुष्य' कहते हैं। मनुष्य जातिवाचक नाम हो गया, अत: चिन्तक ओर मूर्ख सभी मनुष्य है। इससे ज्ञात होता है कि नामकरण का आधार तात्कालिक कोई गुण या तत्त्व होता है। बाद में वह शब्द किसी विशेष अर्थ में रूढ़ हो जाता है। उसका व्युत्पत्ति के आधार पर सर्वत्र प्रयोग नहीं कर सकते हैं। अतएव आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में कहा है कि 'शब्दों की व्युत्पत्ति का आधार दूसरा है और प्रयोग का आधार दूसरा'। लोक-व्यवहार के आधार पर ही प्रयोग होता है, व्युत्पत्ति के आधार पर नहीं। इसको हो 'अर्थसंकोच' कहते है।

'अन्यद्धि शब्दानां व्युत्पत्ति-निमित्तम्, अनचच्च प्रवृत्तिनिमित्तम्'

इसके सैकड़ों उदाहरण है। सभी वस्तु-नाम अर्थसंकोच के उदाहरण हैं। व्युत्पत्ति के आधार पर उनका व्यापक अर्थ है, परंतु वस्तु-नाम होने पर वे उस अर्थ में रूढ़ हो गए हैं। जैसे (1) जगत्, संसार, संस्कृति (संसार) इनके व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ हैं। गतिशील, संसारशील। परन्तु इस शब्द 'संसार' का अर्थ रूढ़ हो गए हैं। **(2)** वारिज, अम्बुज, सरसिज, सरोज, पंकज, नीरज-इनका शाब्दिक अर्थ है जल, तालाब या कीचड़ में होने वाला। परंतु ये शब्द 'कमल' अर्थ में रूढ़ हो गए है। मछली, काई, कीड़े आदि को नहीं कह सकते।

(३) जलद, तोयद, अम्बुद, वारिवाह (बादल) का अर्थ है-जल देने वाला, जल धारण करने वाला। ये 'बादल' अर्थ में रूढ़ हो गए है, **(४) वारिधि, नोरधि, अम्बुधि, तोयधि (समुद्र)** का अर्थ है-जल धारण करने वाला । ये शब्द 'समुद्र' अर्थ में रूढ़ हो गए है। बाल्टी, कंडाल, होज को वारिधि नहीं कह सकते। **(५) सर्प**-रेंगने वाले।

यह 'सांप' अर्थ में रूढ़ हो गया है। रेंगने वाले केंचुए आदि को सर्प नहीं कहेंगे। **(६) पर्वत**-पर्व (गांठ) बाला। 'पहाड़' अर्थ में रूढ़ हो गया है। पर्व वाले गन्ने को पर्वत नहीं कहेंगे। **(७) तटस्थ, मध्यस्थ, उदासीन**-किनारे पर खड़ा, बीच में खड़ा, ऊपर बैठा हुआ, ये शाब्दिक अर्थ है। परन्तु इनका प्रयोग 'निष्पक्ष' के अर्थ में होता है। **(८) मन्दिर** - का अर्थ भवन था। यह देवमन्दिर अर्थ में प्रसिद्ध हो गया है। **(९) मृग**- पशु-मात्र के लिए था। अब केवल 'हिरन' अर्थ रह गया है। अंग्रेजी का Deer भी पशु-मात्र का वाचक था, अब 'हिरन' अर्थ रह गया है। **(१०) सभ्य**-सभा में बैठने वाला। अब सुसंस्कृत, शिष्ट के लिए है। **(११) श्राद्ध**-श्रद्धायुक्त कर्म। अब मृतक श्राद्ध में ही प्रचलित है। **(१२) तर्पण**-तृप्त करना। यह भी मृतकों के लिए रह गया है। **(१३) अनुकूल, प्रतिकूल**-किनारे के इधर, किनारे के उधर। इसमें से कूल (किनारे) का अर्थ हट गया। अब केवल 'हितैषी' और 'विरोधी' अर्थ रह गए। **(१४) वेदना** - सुख और दु:ख दोनों के अनुभव के लिए था। अब केवल 'दु:ख' अर्थ रह गया है। **(१५) घृणा** - दया और घृणा दोनों अर्थों में था। अब केवल 'घृणा' अर्थ है, 'दया' नहीं।

प्रो. मिशेल ब्रेआल का यह कथन ठीक है कि राष्ट्र या जाति जितनी अधिक विकसित होगी, उसकी भाषा में 'अर्थसंकोच' के उदाहरण उतने ही अधिक मिलेंगे। इसका अभिप्राय यह है कि संस्कृति और सभ्यता के विकास से सामान्य शब्द विशेष 'अर्थसंकोच' हो जाता है। 'अर्थसंकोच' के कुछ कारण ये हैं।

(क) समास-समास से अर्थ-संकोच हो जाता है। कृष्णसपं:-सांप की एक जाति। राजपुरुष: - सरकारी कर्मचारी। मनसिज:, मनोज:-कामदेव। चतुर्मुख: (ब्रह्मा), दशानन: (रावण), पीताम्बर: (कृष्ण), नीलाम्बर: (बलराम), शितिवसा: (बलराम), गजवदन (गणेश), पुरारि: (शिव)। पश्यतोहर: (सुनार, देखते-देखते चुराने वाला।

(ख) उपसर्ग - उपसर्ग लगाने से अर्थ संकुचित हो जाता है। जैसे-योग, संयोग, वियोग, उपयोग, आयोग, नियोग, प्रयोग। गम-आगम, निगम, सुगम, दुर्गम, संगम, उद्गम। कार-प्रकार, आकार, विकार, संस्कार, प्रतिकार। हार-आहार, विहार, प्रहार, संहार। चार-प्रचार, आचार, विचार, संचार।

(ग) प्रत्यय- प्रत्यय से अर्थ-संकोच होता है। मन-मति, मनन, मत, मान, मानक। युज्-योग, योजना, आयोजन, प्रयोजन। कृ-कार, कारक, करण, कृति, कर्तव्य, कर्म। भुज-भोग, भोजन, भोजक। व्यंज-व्यक्ति, व्यंजन, व्यंजना, व्यक्त। भज्-भाग, भजन, भक्ति।

(घ) विशेषण - विशेषण लगाने से अर्थ-संकोच हो जाता है। जन-दुर्जन, सज्जन। आचार-दुराचार, सदाचार, कदाचार (कुत्सित आचरण)। कमल-नील-कमल, श्वेत कमल, रक्त कमल। पुरुष-भद्र पुरुष, दुष्ट पुरुष, नीच पुरुष।

(ङ) नामकरण-किसी वस्तु का नाम रख देने से अर्थसंकोच हो जाता है। मानव, दानव, सुर, असुर, देव, गन्धर्व, अप्सरा आदि। कृष्ण, कृष्णा, गौरी, नकुल, भीम, युधिष्ठिर, राम, लक्ष्मण, अशोक, बुद्ध आदि। गंगा, यमुना, हिमालय, नर्मदा, विन्ध्य, हिन्द महासागर, प्रशान्त महासागर।

(च) पारिभाषिकता - शब्दों का पारिभाषिक वर्षो में प्रयोग। भाषाविज्ञान-स्वन, स्वनिम, ध्वनि, ध्वनिग्राम। काव्यशास्त्र-रस, लक्षणा, व्यंजना। व्याकरण-गुण, वृद्धि, आगम, आदेश, धातु, प्रत्यय।

10.3.3 अर्थादेश -

अर्थादेश का अर्थ है, एक अर्थ के स्थान पर दूसरे अर्थ का आ जाना। आदेश का अर्थ है-एक को हटाकर दूसरे का आना। अर्थादेश में शब्द का प्राचीन अर्थ लुप्त हो जाता है और नया अर्थ आ जाता है। जैसे- **(१) असुर**-मूल अर्थ असु+र ((प्राणशक्तिसंपन्न) 'देवता' था। बाद में सुर (देवता) का उल्टा अ + सुर (राक्षस) अर्थ हो गया। **(२) वर**-मूल अर्थ 'श्रेष्ठ' था। अब केवल 'दूल्हा' अर्थ रह गया है। **(३) सहू**- वेद में सह, धातु का अर्थ 'जीतना' था। अब 'सहन करना' अर्थ अर्थ 'मुनि-कर्म' या मुनियों का आचरण था। अब अशोक की उपाधि अब 'चुप रहना' अर्थ रह गया है। **(४) मौन** - मूल अर्थ 'मुनि-कर्म' या मुनियों का आचरण था। अब 'चुप रहना' अर्थ रह गया है। **(५) देवानां प्रिय:**- देवों का प्रिय। अशोक की उपाधि थी। बौद्धों से द्वेष के कारण ब्राह्मणों ने 'देवानां प्रिय:' का अर्थ 'मूर्ख'

कर दिया। **(६) बौद्ध**-बुद्ध-बौद्ध धर्मावलम्बी को बौद्ध कहते थे। उसके अपभ्रंश रूप 'बुद्ध' का अर्थ 'मूर्ख' हो गया। **(७) पाषण्ड**-अशोक के समय में एक संप्रदाय था। इन्हें दान दिया जाता था। इसके रूपान्तर 'पाखण्ड' का अर्थ 'डोंग, दिखावा' रह गया है। **(८) आकाशवाणी**-देवताओं की वाणी लिए था। अब All India Radio के लिए प्रयुक्त होता है। **(९) साहस** - साहस का प्राचीन अयं चोरी, डकैती आादि था। अब इसका 'उत्साहपूर्ण कार्य' अर्थ में प्रयोग होता है। **(१०) खाद्य**-खाद-खाद्य शब्द 'भक्ष्य' (खाने योग्य वस्तु) के लिए था। उसका रूपान्तर 'खाद' केवल कृषि के लिए उर्वरक है। **(११) भद्र**-भद्दा-भद्र का अर्थ था 'सुशील, विनीत, उच्च'। इसके विकसित रूप 'भद्दा' का अर्थ 'गन्दा, बुरा' हो गया है। **(१२) मुग्ध**- मूल अर्थ या 'मूर्ख'। इसका अर्थ हो गया है- 'मोहित होना'। सौन्दर्य पर मुग्ध होना। (१३) **वाटिका-बाड़ी**- संस्कृत में वाटिका का अर्थ था बागीचा। बंगला में यह बाड़ी (घर) हो गया है। (१३) **कर्पट-कपड़ा** - कर्पट का प्राचीन अर्थ था-फटा वस्त्र। इसका विकसित रूप कपड़ा है। यह अच्छे कपड़े के रूप में प्रयुक्त होने लगा है।

(४) अर्थोत्कर्ष - अर्थ की दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि अर्थविकास की जो तीन दिशाएँ बताई गई है, उनमें कुछ शब्दों में अर्थपरिवर्तन से अर्थ में उत्कर्ष आया है और कुछ में अर्थ में अपकर्ष (निकृष्टता)। जिन शब्दों में अथर्वोत्कर्ष हुआ है, उनके कुछ उदाहरण ये हैं:- **(१) मुग्ध**-मूर्ख अर्थ में था, अब 'मोहित होना' अच्छे अर्थ में प्रयुक्त होता है। **(२) साहस-साहसी**-साहस-डाका डालना, चोरी, व्यभिचार आदि अर्थ में था, अब यह 'साहस'- उत्साहयुक्त कार्य और 'साहसी' -उत्साही अर्थ में प्रयुक्त होने से अर्योत्कर्ष हुआ है **(३) कर्दट-कपड़ा**-'कर्पट' फटे चीथेड़े के लिए था, अब 'कपड़ा' अच्छे वस्त्र के अर्थ में आता है। **(४) फिरंगी** - पुर्तगाली डाकू के लिए था, अब 'यूरोपियन' के लिए है। **(५) गोष्ठ-गोष्ठी** - गोष्ठ गोशाला के लिए था, उससे बना 'गोष्ठी' सभ्य समाज की सभा के लिए है। **(६) गवेषणा**-गाय ढूंढना अर्थ था, अब 'अनुसंधान' अर्थ हो गया है। **(७) सभ्य**-सभा में बैठने वाले के लिए था, अब 'सुसंस्कृत' के लिए है।

10.3.4 अर्थकारक

इसी प्रकार अर्थपरिवर्तन से कुछ शब्दों के अर्थों में अपकर्ष (हीनता, निकृष्टता) आया है। जैसे- **(१) असुर**-ऋग्वेद में देव-वाचक या, संस्कृत में 'राक्षस' हो गया। **(२) जुगुप्ता** - पालन करना, छिपाना अर्थ था, अब 'घृणा' अर्थ रह गया। **(३) शौच**- पवित्र कार्य के लिए था (शुचि > शौच), अब 'मलत्याग' अर्थ हो गया। **(४) देवानां प्रियः** - देवों का प्रिय, अशोक अर्थ था, अब 'मूर्ख' अर्थ रह गया। **(५) घृणा** - संस्कृत में घृणा का 'दया' अर्थ भी था, अब केवल 'घृणा' अर्थ रह गया। **(६) महाराज**-बड़े राजा के लिए था, अब 'रसोइया' रह गया। **(७) भद्र-भद्दा**-भद्र 'सुशील' के अर्थ में था। उसका विकसित रूप 'भद्दा' 'गंदा-बुरा' अर्थ में रह गया। **(८) चतुर्वेदी चौबे**- चतुर्वेदी 'चारों वेदों के ज्ञाता' के लिए था, उसका विकसित रूप 'चोबे' केवल 'अधिक खाने वाला' अर्थ में रह गया। **(९) हरिजन-शिल्पकार**-हरिजन 'भक्त' के अर्थ में था, शिल्पकार-शिल्पी के अर्थ में था, अब दोनों शब्द 'शूद्र या अछूत' के अर्थ में हैं। **(१०) लिंग** - 'विल' अर्थ या, अब 'इन्द्रिय- विशेष' के लिए हो गया है। **(११) उद्वार-उधार**-उद्दार 'उद्धार करना' 'उधार' (उधार लेना) रह गया। **(१२) मधुर** - मधुर (मीठा) भोजपुरी में 'माहुर' (विष) हो गया। **(१३) वज्रवटुक**-'पूर्ण ब्रह्मबारी' ने 'बजरबट्टू' (महा मूर्ख) हो गया। **(१४) आबदस्त** - नमाज पढ़ने से पूर्व हस्त-शुद्धि के लिए था, अब मलत्याग के वाद 'जल छूने' के लिए है।

10.3.5 अर्थ-परिवर्तन के कारण

अर्थ या शब्दार्थ यद्यपि काल्पनिक एवं सांकेतिक है, परन्तु अर्थबोध का साक्षात संबन्ध मन से है। मानव मन गतिशील, चंचल, भावुक, संवेदनशील एवं नवीनता का प्रेमी है। अतः विभिन्न परिस्थितियों में मानव मन की स्थिति एक सी नहीं होती है। यही कारण है कि राग-द्वेष, क्रोध, घृणा, आवेश आदि में उच्चरित शब्दों के अर्थों में अन्तर होता

है। यह अर्थ-परिवर्तन प्रारम्भ में व्यक्तिगत होता है, परन्तु बाद में समाज के द्वारा स्वीकृत होने पर भाषा में ग्रहण कर लिया जाता है और भाषा का अंग बन जाता है। इस प्रकार **अर्थ-परिवर्तन को समस्त प्रक्रिया मनोवैज्ञानिक है।**

मन की स्थितियों का भौतिक विश्लेषण नहीं किया जा सकता है, अतः अर्थ- परिवर्तन के कारणों को भी इयत्ता निर्धारित नहीं की जा सकती है। कभी-कभी अर्थ-परिवर्तन में एक के साथ दूसरा कारण भी संबद्ध होता है, अतः दोनों कारणों में उस उदाहरण को प्रस्तुत किया जाता है।

भारतीय काव्यशास्त्रियों - आचार्य मम्मट, विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ आदि ने अर्थभेद या अर्थपरिवर्तन के कारण रूप में लक्षणा और व्यंजना शक्तियों का सूक्ष्मतम विवेचन किया है। आगे दिए गए प्रायः सभी कारण लक्षणा और व्यंजना शक्तियों के भेदों में अन्तर्निहित हो जाते हैं। अन्य भाषा-प्रभाव आदि कारण उनके विचाराधीन नहीं थे। स्पष्टता के लिए काव्यशास्त्रीय पारिभाषिक नाम न देकर भाषा-शास्त्रीय कारण प्रस्तुत किए जा रहे है।

पाश्चात्य विद्वानों में प्रो. टकर एवं मिशेल ब्रेआल ने इसका विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है। डा. तारापुरवाला ने अपनी पुस्तक 'Elements of the Science of Language' में प्रो. टकर के अनुसार अर्थपरिवर्तन के १२ कारण माने हैं। अन्प अनुसन्धानों को भी समन्वित करते हुए अर्थ-परिवर्तन के १२ कारण माने जाते हैं। उनका संक्षिप्त विवरण नोचे दिया जाता है:--

(१) लाक्षणिक-प्रयोग (Metaphor) - भावों और अनुभूतियों की सरल सुन्दर एवं कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए लक्षणा शक्ति का आश्रय लिया जाता है इससे भाषा में रोचकता एवं मधुरता आ जाती है। इसके लिए अनेक प्रकार अपना जाते हैं। जैसे-

(क) सादृश्य-मूलक वर्णन - निर्जीव में भी मानवीय अंगों का वर्णन। नारियल की आंख, आरी के दाँत, सुराही की गर्दन, घड़े का मुंह, पर्वत की चोटी, चारपाई के पैर, छन्द के चरण या पाद, मकान की पीठ (छत), गुफा का पेट।

(ख) गोण-प्रयोग - गुण-साम्य के आधार पर प्रयोग-सुंदर कल्पना, कटु अनुभव, मधुर लय, मीठी मुस्कान, कटु सत्य, सरस साहित्य, नीरस भाषण, चटपटी बात आदि।

10.3.6 शब्द और अर्थ का संबंध

संकेतग्रह- शब्द और अर्थ में कोई संबन्ध है या नहीं ? यह प्रश्न स्वाभाविक है। 'गाय' कहने से 'गाय' पशु अर्थ ही क्यों लिया जाता है? अश्व आदि अन्य पशु क्यों नहीं ? इसका उत्तर यह है कि प्रत्येक सार्थक शब्द किसी अर्थ (वस्तु) विशेष का बोध कराता है। कौन सा शब्द किस अर्थ का बोध कराता है, यह संकेतग्रह पर निर्भर है। यह पहले कहा जा चुका है कि प्रत्येक भाषा में कोई शब्द किसी अर्थ को संकेतित करता है। प्रत्येक भाषा में इस शब्द का यह अर्थ होगा, यह संकेतित है। यह संकेत सामान्यतया स्वेच्छा-जन्य या यादृच्छिक (यदृच्छा-जन्य) होता है। प्रारम्भ में कोई व्यक्ति किसी विशेष अर्थ में किसी शब्द का प्रयोग करता है। बाद में वह शब्द उस समाज या उस भाषा में लोकप्रिय हो जाता है। वही उस शब्द का संकेतित अर्थ माना जाता है। एक ही शब्द (या ध्वनिसमूह) विभिन्न भाषाओं में विभिन्न अर्थ बताता है- अंग्रेजी Know (नो, जानना) संस्कृत और हिन्दी में निषेधार्थक 'नो' माना जायेगा, दम (नी, घुटना) संस्कृत के अनुसार 'नी' (ले जाना) होगा। अतः यह माना जाएगा कि किसी एक ध्वनि का कोई एक अंग नहीं है। किसी शब्द से किसी अर्थ का संबन्ध स्थापित करना 'संकेतग्रह' है। इसी प्रकार किसी ध्वनि-समूह से किसी वस्तु का संबन्ध स्थापित करना या बोध कराना 'संकेतग्रह' है। यह संकेतग्रह लोक-व्यवहार एवं अनु से होता है।

आवाप-उद्वाप या अन्वय व्यतिरेक : 'तत्सत्वे तत्सत्वम् अन्वयः' 'तदभावे तदभावः व्यतिरेकः' जिस शब्द के होने पर जो अर्थ बना रहेगा उसे **'अन्वय'** कहेंगे जिस शब्द के न होने पर जो अर्थ नहीं रहेगा। उसे **'व्यतिरेक'** कहेंगे। 'अन्वय' को **'आवाप्'** और 'व्यतिरेक' को **'उद्वाप'** कहते हैं। बालक के अर्थहीन की प्रक्रिया को देखें तो ज्ञात होगा कि वह अन्वय-व्यतिरेक की पद्वति से भाषा सीखता है। 'गाय' लाओ 'गाय ले जाओ', 'घोड़ा लाओ', 'घोड़ा ले जाओ'।

इन चार वाक्यों से बालक 4 शब्द सीखता है-गाय, घोड़ा लाओ, ले जाओ। प्रथम दो वाक्यों में 'गाय' शब्द है। 'लाओ' कहने पर 'गाय' पशु लाया गया। 'ले जाओ' कहने पर वह श्गयाश हटा दिया गया। दोनों वाक्यों में 'गाय' शब्द का अर्थ यह गाय-नामक पशु है। अन्य दो वाक्यों से 'घोड़ा' का अर्थ स्पष्ट हुआ। 'लाओ' से लाना होता है, 'ले जाओ' से होता है, यह स्पष्ट हुआ। इस अन्वय-व्यतिरेक पद्धति से बालक को एक-एक शब्द का अर्थज्ञान होता है।

बिम्बनिर्माण :- मनोविज्ञान की दृष्टि से मनुष्य के मस्तिष्क पर प्रत्येक शब्द का बिम्ब (चित्र) अंकित होता है। यह बिम्ब स्थायीरूप से मस्तिष्क में बना रहता है। 'गाय' देखने पर गाय का बिम्ब अंकित हुआ। पुनः गाय देखने पर वह बिम्ब उद्‌बुद्ध हो जाता है और हम गाय को पहचान लेते हैं। इसी प्रकार वस्तु का बिम्ब मन पर अंकित होता है, साथ ही उसका वाचक शब्द (गाय आदि) भी संस्काररूप में अंकित हो जाता है। इस शब्द (गाय शब्द) और अर्थ या वस्तु (गाय-पशु) के स्थिर मानसिक संस्कार को **बिम्ब-निर्माण** कहते हैं। इस बिम्बनिर्माण का फल यह होता है कि 'गाय' शब्द से श्गायश अर्थ संबद्ध हो गया और भविष्य में 'गाय' पशु को देखते ही 'गाय' शब्द उपस्थित हो जाता है।

दार्शनिक दृष्टिकोणः- दार्शनिक या भाषाशास्त्रीय दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि शब्द और अर्थ अन्योन्याश्रित (Interrelated) है। शब्द शरीर है; अर्थ आत्मा है। दोनों को मिलाकर 'सार्थक शब्द' बनता है। अर्थ के बिना शरीर 'निर्जीव' है और शब्द के बिना 'अर्थ' अग्राह्य या अप्रयोज्य (प्रयोग के अयोग्य) है। शब्द मूर्तरूप देता है और अर्थ उसमें चेतनता देता है। अतः सार्थक प्रयोग के लिए दोनों का समन्वितरूप में उपस्थित होना अनिवार्य है। अतएव भर्तृहरि ने बाक्यपदीय में शब्द और अर्थ को एकतत्व के ही दो अभिन्न अंग माने हैं।

एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्यवप्रयस्थित् वाक्य

भर्तृहरि ने शब्द और अर्थ का वाचक-वाच्य संबन्ध माना है। वे 'अर्मिवा' शक्ति के अन्दर हो 'लक्षणा' और 'व्यंजना' का भी अन्तर्भाव मानते हैं।

अस्यऽयं वाचको वाच्य इति षष्ठया प्रतीयते।

योगः शब्दार्थयोस्तत्त्वमप्यतो व्यपदिष्यते॥

स्वयं आकलन के प्रश्न :

(1) अर्थ परिवर्तन की दिशाओं के नाम लिखों।

(2) अर्थ संकोच का क्या अर्थ है।

(3) अर्थ विस्तार से क्या अभिप्राय है।

10.4 सारांश :

सारांश रूप है हम कह सकते हैं कि अर्थ भाषा और शब्द के विकास के साथ-साथ परिवर्तित होता रहता है। अर्थ कभी संकोच होता जाता है और कहीं पर अर्थ का विस्तार होता रहता है। शब्द और अर्थ के बीच घनिष्ट संबंध है। शब्द यदि शरीर है तो अर्थ उसी की आत्मा है।

10.5 कठिन शब्दावली :

अर्थ दिशाएं- जिन दिशाओं के आधार पर अर्थ में परिवर्तन होता है। अर्थ संकोच-अर्थ का सिकुड़ना। अर्थ-विस्तार-अर्थ के माध्यम से विविध स्थिति को व्यक्त करना। अर्थादेश-एक अर्थ को हटाकर दूसरे अर्थ का आना।

10.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

(1) उत्तर - तीन।

(2) उत्तर - अर्थ संकोच का क्या अर्थ है।

(3) उत्तर - एक से अधिक वस्तुओं के लिए एक अर्थ का प्रयोग होना।

10.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) तिलक सिंह - नवीन भाषाविज्ञान।

(2) कपिल देव शास्त्री - भाषा एवं भाषाविज्ञान।

(3) भोलानाथ तिवारी - भाषाविज्ञान।

10.8 सात्रिक प्रश्न

(1) अर्थ परिवर्तन की दिशाओं के नामों का विस्तृत वर्णन करें।

(2) अर्थ संकोच को सौदाहरण स्पष्ट करें।

(3) अर्थ विस्तार को सोदाहरण लिखें।

*****

इकाई–11
अर्थ परिवर्तन के कारण

संरचना

11.1 भूमिका

11.2 उद्‌देश्य

11.3 अर्थ परिवर्तन के कारण

स्वयं आकलन के प्रश्न

11.4 सारांश

11.5 कठिन शब्दावली

11.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

11.7 संदर्भित पुस्तकें

11.8 सात्रिक प्रश्न

11.1 भूमिका :

पिछले अध्याय में हमने अर्थ स्वरूप, अर्थ परिवर्तन पर विस्तृत चर्चा की है। अब हम अर्थ परिवर्तन के कारणों का अध्यय करगें। अर्थ परिवर्तन के अनेक कारण है लेकिन प्रमुख रूप सामाजिक, भौगोलिक, रीति तथा परम्परा आदि माने जाते है। इन सभी कारणों की विस्तृत चर्चा निम्न प्रकार से है।

11.2 उद्देश्य

(1) अर्थ परिवर्तन के सामाजिक कारणों का बोध।

(2) अर्थ परिवर्तन के भौगोलिक तथा वातावरण कारणों की जानकारी

(3) अर्थ परिवर्तन के वर्ण उच्चारण करने के कारणों का बोध

11.3 अर्थ-परिवर्तन के कारण

अर्थ परिवर्तन अनेक कारणों से हो सकता है इनमें से कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं

(1) बल का अपसरण - किसी शब्द के उच्चारण में यदि केवल एक ध्वनि पर बल देने लगे तो धीरे-धीरे शेष ध्वनियाँ कमजोर पड़कर लुप्त हो जाती हैं। उपाध्यायजी परिवर्तित होकर ओझा इसी बल के अपसरण के कारण हुए हैं। ध्वनि की ही भांति अर्थ में भी यह 'बल' कार्य करता है। किसी शब्द के अर्थ के प्रधान पक्ष से हटकर, बल यदि दूसरे पर आ जाता है तो धीरे-धीरे वही अर्थ प्रधान हो जाता है, और प्रधानार्थ अर्थ बिल्कुल लुप्त हो जाता है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि बल कैसे प्रधान पक्ष से हटकर गौण पर आता है। इसका निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भाव-साहचर्य का ही यह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव है जिसमें समीपवर्ती दो भावों में एक भाव विजयी बन जाता है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि बल कैसे प्रधान पक्ष से हटकर गौण पर आता है। इसका निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भाव-सहचर्य का ही यह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव है, जिसमें समीपवर्ती दो भावों में एक भाव विजयी बन जाता है। यहां कुछ उदाहरण लिये जा सकते हैं। 'गोस्वामी' शब्द का आरम्भ का अर्थ था 'बहुत-सी गायों का स्वामी'। बहुत-सी गायों का स्वामी 'धनी' होगा, अत: 'माननीय' भी होगा। इसी प्रकार, धीरे-धीरे इसका अर्थ माननीय हुआ। वहीं एक और भावना कार्य करने लगी। यह भावना यह थी कि जो अधिक गायों की सेवा करेगा, वह धर्मपरक भी होगा। इस प्रकार, बल के अपसरण से 'गोस्वामी' शब्द 'गायों के स्वामी' के अर्थ से चलकर माननीय धार्मिक व्यक्ति का वाचक हो गया। इसी अर्थ में यह मध्ययुगीन बातों के नाम (गोसाई तुलसीराम) के साथ प्रयुक्त होता है। यों बाद में 'गोस्वामी की व्याख्या' 'इंद्रियों का स्वामी' के अर्थ में भी की गई, लेकिन वह बाद की व्याख्या मात्र है, मूल अर्थ वह था नहीं। अब तो गोस्वामी या गोसाई नाम की एक जाति भी हो गई है। 'जुगुप्सा' शब्द का अर्थ-परिवर्तन भी इसका अच्छा उदाहरण है। यह शब्द 'गुप्' धातु से बना है, जिसका आरम्भ का अर्थ या 'रक्षा करना', 'पाठ करना'। 'रक्षा' या 'पालन' छिपाकर भी किया जाता है, अत: इसमें छिपाने का भाव आने लगा और कुछ दिनों में यही भाव प्रधान हो गया। अधिकतर वही क्रिया या वस्तु छिपाई जाती है, जो घृणित होती है, अतएव घृणा के लिए इसका प्रयोग चल पड़ा। आज भी जुगुप्सा का प्रयोग घृणा के लिए होता है। अरबी का शब्द 'गुलाम' तथा अंग्रेजी का 'नेव', ये दोनों भी इसी प्रकार के हैं। दोनों का आरम्भ का अर्थ लड़का है, किंतु बल के अपसरण के कारण दोनों का अर्थ अब बहुत नीचे गिर गया है। लड़के नौकर रखे जाते थे तथा वे प्राय: बन्दी जैसे रहते थे, अत: उसी पर बल पड़ते-पढ़ते अरबी का 'गुलाम' उधर पहुंचा और नौकर शरारती और बदमाश होते है, अत: उस पर बल पड़ते-पड़ते 'नेव' बेचारा शरारती और बदमाश का अर्थ देने लगा। 'ड्रेस' का प्राचीन अर्थ है सीधा। फ्रेंच में अब भी यह अर्थ है। अंग्रेजी में to dress timber में यह अर्थ सुरक्षित है। लठे या शहतीर को सीधा करने के लिए काटना-छांटना पड़ता था, अत: सफाई करना अर्थ हुआ। फोड़े घाव की ड्रेसिंग

में वही अर्थ है (ड्रेसिंग रूम)। चमड़े की सफाई भी की जाती थी, जूता आदि बनाने के लिए, अतः ड्रेस में तैयार करने का अर्थ आया। सलाद को 'ड्रेस' अब भी करते हैं। बाल भी ड्रेस करने लगे, अतः इसमें सजाने का भाव आया और 'ड्रेस' सजाने वाला कपड़ा हो गया। हिन्दी में 'दरेसी' में कटाई-छंटाई का भाव अब भी है।

(2) वातावरण में परिवर्तन- वातावरण में परिवर्तन हो जाने के कारण भी कुछ शब्दों में अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। वातावरण कई प्रकार के हो सकते हैं, अतः सभी को अलग-अलग लेना उचित होगा।

(क) भौगोलिक वातावरण- इसके अन्तर्गत नदी, पर्वत, पेड़ आदि लिए जा सकते हैं। सब जगह एक ही प्रकार के पेड़ नहीं मिलते। थोड़ी देर के लिए मान लें कि हम एक ऐसे स्थान पर रह रहे हैं जहां 'क' नाम का पेड़ अधिक है और उसके हमें लाभ है। थोड़े दिन बाद हम किसी कारणवश वहां से हटकर कहीं और चले जायें जहां वह पेड़ तो नहीं है, पर एक दूसरा पेड़ उसी प्रकार बहुतायत में मिलता है, साथ ही उसी पेड़ की भांति लाभकर भी है। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक है कि हम उसी पुराने नाम से नये पेड़ को भी पुकारने लगें। वह ठीक उसी प्रकार है, जैसे छोटे लड़के यदि कहीं बाहर जाकर कोई नदी देखते हैं। तो उसे अपने अपने गांव या नगर की ही नदी समझते हैं, और उसे उसी नाम से पुकारने लगते हैं। अंग्रेजी में 'कॉन' शब्द का सामान्य अर्थ 'गल्ला' अथवा अन्न है, किंतु जहाँ जो चीज ज्यादा पैदा होती है, वहां इसका वही अर्थ हो गया है, अतः इंग्लैंड अमेरिका में इसका अर्थ 'मक्का' है तो स्कॉटलैंड में 'बाजरा'। इंग्लैंड में कुछ लोग गेहूं के लिए भी इसका प्रयोग करते हैं। जानवरों के विषय में भी यह बात देखी जाती है। वेदों की प्राचीनतम ॠचाओं में 'उष्ट्र' का प्रयोग एक प्रकार के जंगली बैल के लिए हुआ है पर बाद में संभवतः अब आर्य मरुभूमि में आ गये थे, इसका प्रयोग कैट के लिए होने लगा।

(ख) सामाजिक वातावरण - एक ही भाषा में एक ही समय में समाज के वातावरण के अनुसार शब्दों का अर्थ परिवर्तित होता रहता है। अंग्रेजी के मदर और सिस्टर शब्दों का अर्थ साधारणतः कुछ और है, गिरजाघरों में कुछ और है तथा अस्पतालों में कुछ और है। इसी प्रकार, सभा में भाषण देने वाले के 'भाई' और 'बहन' शब्द कुछ दूसरे अर्थ रखते हैं और घर में भाई-बहन का प्रयोग कुछ दूसरा अर्थ रखता है। किसी आफिस में कार्य करने वाले को रविवार के दिन देर तक सोते रहने पर जब उसकी पत्नी 'अरे भाई उठिए' कहकर जगाती है तो उसका आशय उन महाशय से साधारण 'भाई' का सम्बन्ध जोड़ने कभी नहीं रहता। इस प्रकार, वातावरण के अनुसार शब्दों का अर्थ परिवर्तित होता रहता है। नाई का खत काटना और शिशु कक्षा के लड़के का सरकंडे की कलम में 'खत काटना' भी एक अर्थ नहीं रखते। विद्यार्थी के प्रयोग में आने वाला 'कलम' शब्द तथा माली का 'कलम' शब्द भी एक नहीं है।

(ग) प्रथा या प्रचलन-सम्बन्धी वातावरण - लौकिक प्रथाएं तथा रस्म-रिवाज भी समय के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। वातावरण के परिवर्तन में ऐसा होता है कि पुरानी प्रथाओं के कुछ शब्द तो लुप्त हो जाते हैं, किंतु कुछ शब्द नये अर्थ में प्रयुक्त होने लगते हैं। वैदिक शब्द 'यजमान' यज्ञ करने वाले के लिए प्रयुक्त होता था। यज्ञ की प्रथा के लुप्त होने के साथ-साथ उसका वह अर्थ भी समाप्त हो गया। किंतु यजमान यज्ञ कराने वाले को कुछ देता था, अतः आज जो भी ब्राह्मण या नाई-धोबी को नियमित रूप से देता है, 'यजमान' कहलाता है। किसी ने यदि एक पैसा भी किसी ब्राह्मण को दे दिया तो तुरन्त ब्राह्मण देवता 'यजमान, भगवान् तुम्हारा भला करें कहकर आशीर्वाद देते हैं। इतना ही नहीं, देहातों में कई लोग आपस में गांव की हजामत बनाने के लिए क्षेत्र बांट लेते हैं और अपने हिस्से के गांव या घरों को अपनी 'जजमानी' (पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार) कहते हैं। इसी प्रकार, स्वयंबर (स्वयं चुनना) की प्रथा आज नहीं रही, पर 'वर' का प्रयोग 'दूल्हे' के लिए चल रहा है। अब 'वर' शब्द से चुने जाने का अर्थ निकल गया है। 'हिन्दी-क्षेत्र में 1000 ई. के आसपास 'गाड़ी' का अर्थ ठीक वही नहीं था जो आज है। ऐसे अर्थ परिवर्तन देहातों में प्रयुक्त होने वाले अनेकानेक शब्दों में मिलते हैं।

(3) नम्रता-प्रदर्शन – नम्रतावश ऐसे शब्दों का प्रयोग प्राय: ऐसे अर्थ में कर दिया जाता है, जो उस शब्द का वास्तविक अर्थ नहीं होता। उदाहरण के लिए किसी आदरणीय व्यक्ति को यह नहीं कहते कि आज आप मेरे घर पर आइए, अपितु कहते हैं कि 'आज आप मेरी कुटिया को पवित्र कीजिए।' वस्तुत: 'पवित्र करना' का अर्थ 'आना' नहीं है, किंतु नम्रता तथा 'आना' अथवा 'उपस्थित होना' अर्थ में इसका प्रयोग होने लगा है, अत: 'पवित्र करना' का अर्थ ऐसे संदर्भों में 'आना' या उपस्थिति होना भी हो गया है। इस प्रकार इसका अर्थ परिवर्तित हो गया है। राजा, बादशाह, बड़े अफसर, स्वामी या बड़े को संबोधित करने के लिए प्रयुक्त 'अन्नदाता', 'गरीब परवर', 'जहाँपनाह' में भी इसी प्रकार अर्थ-परिवर्तन हुआ है। ये लोग न तो 'अन्न देने वाले हैं', न 'गरीबों का भरण-पोषण करने वाले' न 'विश्व को शरण देने वाले'। 'आपका दौलतखाना कहां है', 'मेरा गरीबखाना यहां है', 'श्रीमान् किन-किन अक्षरों को सुशोभित करते हैं (क्या नाम है?)', आप कि देश की श्री क्षीण करके आ रहे हैं (कहां से आ रहे हैं?) आदि अनेकानेक जन प्रयोगों में भी काले अक्षरों में अंकित अंशों के अर्थ परिवर्तित हुए हैं। संबोधन आलमपनाह, पृथ्वीनाथ भगवान् के लिए भक्तवत्सल, दयासागर, करुणानिधान अपने लिए दास (दास का नाम अमुक है); मेरे घर झूठन गिराइए (मेरे घर खाइए), 'कैसे कृपा की' (कैसे आए), 'कैसे स्मरण किया' (बुलाया), आदि प्रयोग भी इसी के उदाहरण हैं।

(4) आधार-सामग्री के आधार पर वस्तु का नाम – कभी-कभी जब कोई नई वस्तु बनती है तो किसी अन्य अच्छे नाम के अभाव में उसे सामग्री के नाम से ही पुकारने लगते हैं, इस प्रकार सामग्री के नाम के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। शीशा मूलत: सामग्री का नाम है। पहले धातु के दर्पण बनते थे, किंतु वे बहुत अच्छे नहीं होते थे तथा उनका मूल्य भी अधिक होता था। बाद में दर्पण शीशे के बनने लगे तो दर्पण को भी 'शीश' कहने लगे। इस प्रकार 'शीशा' शब्द के अर्थ में परिवर्तन आ गया। ऐसे ही लैटिन भाषा में पंख को पेना कहते हैं। जब कलम पंख (पेना) की बनने लगी तो कलम को 'पेना' कहा जाने लगा। इस तरह 'पेना' शब्द में अर्थ-विस्तार हो गया। आज का 'पेना' शब्द उसी लैटिन 'पेना' का विकास है। ईरान में पुस्तक चमड़े पर लिखते रहे हैं। चमड़े को फारसी में पोस्त कहते हैं। उन्हों से सीखकर भारत में भी चमड़े पर लिखने लगे तथा 'पोस्ट' के आधार पर किस्ताब 'पुस्तक' तथा 'पुस्तिका' कहलाई। ग्लास (शीशा) से बनने के कारण बर्तन-विशेष 'गिलास' कहलाए, और 'ग्लास' (शीशा) में अर्थ-परिवर्तन हो गया।

(5) निर्माण-क्रिया के आधार पर वस्तु का नाम – कभी-कभी निर्माण क्रिया के आधार पर वस्तु का नामकरण कर देते हैं, और तब भी उस शब्द के अर्थ में परिवर्तन आ जाता है। संस्कृत में ग्रंथ धातु का अर्थ है 'गूथना', 'एक में सिलना', 'एक में बांधनाश, आदि। हमारे यहां भी भोजन पर लिखकर उन्हें एक में सिलते या ग्रंथित कर देते थे। इसीलिए पस्तक के लिए 'ग्रंथ' (जो गूथा गया हो) शब्द का प्रयोग चला।

(6) शब्द का एक भाषा से दूसरी भाषा में जाना – जब शब्द एक भाषा से दूसरी भाषा में जाता है तो उसमें प्राय: अर्थ-संकोच हो जाता है। इसका कारण यह है कि स्त्रोत भाषा में उसकी अर्थ-परिधि बड़ी होती है, और वह शब्द दूसरी भाषा में अपनी पूरी अर्थ-परिधि के साथ न आकर केवल सीमित अर्थ के साथ आता है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी का कोट शब्द लें। अंग्रेजी में इसका अर्थ कोट, आवरण, तह, लेप आदि है, किंतु हिंदी में यह शब्द केवल पहने जाने वाले 'कोट' के अर्थ में ही आया है। पिन शब्द में भी यही हुआ है। हिंदी में यह केवल 'आलपिन' या कुछ यंत्रों के उससे मिलते जुलते हिस्से का नाम है, किंतु अंग्रेजी में खूटी आदि अन्य अर्थ में भी है। इस प्रकार अंग्रेजी मूल शब्द 'कोट' तथा 'पिन' की तुलना में हिंदी 'कोट' तथा 'पिन' का अर्थ संकुचित हो गया है।

(7) जानबूझकर नये अर्थ में प्रयोग – आवश्यकता पड़ने पर कभी-कभी पुराने शब्द का किसी नये अर्थ में प्रयोग कर दिया जाता है, तथा शब्द में अर्थ परिवर्तन हो जाता है। उदाहरण के लिए, 'रेडियो' के लिए कोई ठीक शब्द न पाकर कविवर सुमित्रानंदन पंत ने 'आकाशवाणी' का प्रयोग किया और यह शब्द हिंदी में चल पड़ा। परिणामत: 'देववाणी' के साथ साथ इसका अर्थ रेडियों भी हो गया है। काव्यशास्त्र का 'यादृच्छिक' शब्द हिंदी के भाषा विज्ञान-साहित में Arbitary के लिए प्रयुक्त किया गया, अब इसका अर्थ भी सर्वस्वीकृत हो गया, यद्यपि कामशास्त्र

में पुराना आ भी चल रहा है। पश्चिम ने संस्कृत का संधि शब्द लिया तथा 'रूपध्वनिग्रामिक परिवर्तन' के अर्थ में उसका प्रयोग किया। आज 'संधि के अर्थ में काफी अर्थ-विस्तार हो गया है और 'रामावतार' में तो संधि है ही। इसी, सभी घुड़ में भी संधि मानी जाने लगी है। अर्थात् अ+आ= आ, स+ही+सी, ब+ही = भी, घोड़ा-दौड़-घुड़दौड़ - ये सभी संधि के ही रूप हैं। तकनीक शब्दों में इस प्रकार के अर्थ-परिवर्तन प्राय: होते हैं।

(8) अशोभन के लिए शोभन भाषा का प्रयोग - संसार में अशोभन बातें, भावनाएं ओर कार्य हैं, किंतु यथासाध्य मनुष्य का मस्तिष्क उनसे दूर रहना चाहता है। विडंबना यह है कि चाह कर भी दूर नहीं रह पाता, इसलिए उन भावनाओ को शोभन शब्दों से बैंक वह संतोष की सांस लेता है। इसका परिणाम यह होता है कि वे शोभन शब्द अपने शोभन अर्थों को छोड़कर अशोभन अर्थ बोने लगते हैं। इसे कई भागों में बांट कर विचार किया जा सकता है।

(क) अशुभ या बुरा - अशुभ कार्यों, बातों या घटनाओं को हम घुमा-फिर कर अच्छा बनाकर कहना पसन्द करते हैं। 'हुजूर की तबीयत खराब है' न कहकर 'हुजूर के दुश्मनों की तबीयत नासाज है' कहने की प्रथा है किसी के मर जाने पर मरना न कहकर गंगालाभ होना, स्वर्गवासी होना, पंचत्व को प्राप्त होना, असार संसार छोड़ना, मुक्त होना, गोलोक जाना, बैकुण्ठलाभ करना आदि कहते हैं। किसी के विधवा होने पर चूड़ी फूटना, सोहाग लुटना, सिन्दूर धुलना, मांग सफेद होना, इत्यादि कहा जाता है। लाश को मिट्टी या माटी, दुकान बन्द करने को बढ़ाना, तथा चिराग बुझाने को चिराग बढ़ाना कहते हैं। अंग्रेजी में भी मरने 'टू गिव अप द गोस्ट' (to give up the ghost) कहते हैं। इस प्रकार के शब्द से हमारे मनोविज्ञान पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इसका सीधा अर्थ यह है कि इन अवश्यंभावी बातों से हम इतना अधिक डरते हैं कि सीधे इनका नाम लेना पसन्द नहीं करते।

(ख) अश्लील - कुछ लोग तो संसार में कुछ भी अश्लील नहीं मानते। उनका कहना है कि जब ईश्वर उन कार्यों या वस्तुओं को पृथ्वी पर लाने लज्जित नहीं हुआ तो हम उनके उच्चारण या प्रयोग में क्यों लज्जित हों। पर विश्व के सभी लोग इसे नहीं मानते। अधिक लोग ऐसे ही हैं जो बहुत से नामों को उनसे सम्बन्धित कार्यों या शब्दों को अश्लील मानते हैं और इसलिए अश्लीलता छिपाने के लिए घुमा-फिरा कर अच्छे शब्दों द्वारा उन्हें प्रकट करते हैं। पखाना जाने को 'मैदान जाना', 'पोखरे जाना', 'नदी जाना', 'दिशा जाना' 'टट्टी जाना', 'शौच जाना' तथा 'विलायत जाना' आदि कहा जाता है। सन् 1930 के बाद भारतीयों को अपनी गुलामी अधिक खलने लगी थी और वे इंग्लैंड के प्रति घृणा की भावना रखने लगे थे। इसी कारण कुछ छात्रावासों में पेशाब करने जाना, 'छोटी विलायत जाना' और 'पाखाना जाने' को 'बड़ी विलायत जाना' सन् 1931 तक कहते रहे। इसमें अश्लीलता छिपाने तथा घृणा-प्रदर्शन की भावनाएं साथ-साथ काम कर रही हैं। गर्भिणी होना न कह पर 'पांव भारी होना' कहते हैं। अंग्रेजी में इसे 'टू बी इन फेमली वे' (to be in family way) कहा जाता है। पाखाना जाने को टू अटेन्ड द नेचर्ज काल' (to attend the natures call) तथा पेशाबघर और पाखाना को 'बाथरूम' या ट्वॉयलेट कहते हैं। टु ईज (to esae) का प्रयोग भी इसी दिशा में है। कामशास्त्र से सम्बन्धित अवयवों तथा कार्यों के विषय में भी प्रयोग प्राय: बहुत घुमा-फिरा कर किए जाते हैं।

(ग) कटुता या भयंकरता - अशुभ और अश्लील को भाति कटु और भयंकर भी मनुष्य को अप्रिय है। भोजपुरी प्रदेश में सांप को 'कीरा', 'चेवर' या 'सरी' तथा उसके काटने को 'छूना' या 'सूंघना' कहते हैं। बिच्छु को 'टेको' कहा जाता है। संपूर्ण उत्तरी भारत में चेचक निकलने को 'माता', माई या महारानी ने कृपा की हैश कहा जाता है। चेचक की बीमारी कई प्रकार की होती है और प्रत्येक में तरह-तरह के दाने निकलते हैं। जिस चेचक में गर्मी अधिक होती है, उसे 'शीतला' तथा जिसमें त्वचा पर कष्ट अधिक होता है, उसे 'दुलारो' कहने की प्रथा है। हैजे में कै और दस्त होने को 'मुंह और पेट चलना' कहा जाता है। पुर्तगाली में कैन्सर को 'ओबिचो साल्वो सेजा' (Obicho Salvo Seja & the little beast God forbid) कहते हैं। अंधे को सूरदास (एक प्रसिद्ध अंधकवि कहा जाता है।)

(घ) अन्धविश्वास- बहुत लोगों में ऐसा अंधविश्वास है कि पति, गुरू, और बड़े लड़के आदि का नाम लेना पाप है। आत्मनाम् गुर्रार्नाम् नामातिकृपणस्य च श्रेयस्कामो न गृहणीयात् ज्येष्ठापत्यकलत्रयो: मनु इसका परिणाम यह होता है कि उनका नाम नहीं लिया जाता। पति के विषय में तो यह नियम इतना कड़ा है कि ऐसे अन्य शब्दों का भी उच्चारण नहीं

किया जाता जिसमें पति के नाम का कोई अक्षर आता हो। मेरे गांव में मेरी एक दादी लगती थीं जिनके पति का नाम 'हनुमान' था। हनुमान तो हनुमान वे हलवा भी नहीं कहती थीं और उनके लिए 'पलसी' शब्द का प्रयोग करती थीं। परिणाम यह हुआ है कि आसपास के लड़कों ने 'हलुआ' के लिए 'पलसी' शब्द प्रचलित हो गया है। इसी प्रकार 'पंडितजी', 'ऊ लोग', 'बिटिया के बाबू', 'आदमी' और 'मलिकार' आदि शब्दों का अर्थ पति हो गया है क्योंकि स्त्रियां अपने पति के लिए इन शब्दों का प्रयोग करती हैं। पति लोग भी 'मालकिन' या अपने लड़के-लड़की के नाम के साथ मां या चाची आदि शब्द लगाकर अपनी स्त्री को बुलाते हैं। कहीं-कहीं इसी कारण 'घरवाली' का अर्थ पत्नी हो गया। कुछ लोग अपना नाम भी नहीं लेते, अतः अपने नाम वाले साथी को 'मितान' कहकर बुलाते हैं। मितान का अर्थ मित्र था, पर अब 'अपने नाम का आदमी' हो गया है। कुछ बीमारियों को भी अंधविश्वास के कारण लोग देवी मान बैठे हैं। 'देवी' ने मेरे घर कृपा की है का अर्थ है कि मेरे घर चेचक निकली है।

(ड) गंदे या छोटे कार्य- गंदे कार्य को भी हम अच्छे शब्दों द्वारा प्रकट करना चाहते है। पाखाना साफ करने के लिए 'कमाना' शब्द का प्रयोग होता है। भंगी को 'जमादार' 'हलवाखोर' या मेहत्तर (महत्तर) कहा जाता है। पंजाबी में नाई 'राजा' कहा जाता है और नाइन 'रानी'। बुलंदशहर के कुछ भागों में भंगी के लिए 'राजा' का प्रयोग चलता है। आस्ट्रेलिया में नौकर को 'सरवेंट' न कहकर 'होम एड', 'होम-ऐसोशिस्ट' कहते हैं। चोर को संस्कृत में तस्कर (वह करने वाला) कहते हैं। चोरी बुरा कार्य है, अतः उसका नाम लेना ठीक नहीं। चमार को रैदास (इसी नाम के एक चमार जाति के कवि) कहते हैं। खाना पकाना बुरा या गंदा कार्य तो नहीं है, किन्तु पकाने वाले को खाना बनाने वाली स्त्री के लिए महाराज (महाराज) जैसी बड़ी पदवी दी गई है। खाना बनाने वाली स्त्री के लिए महाराजिन, मिश्राइन आदि नाम भी ऐसे ही है। बंगला में नौकर या रसोइये को ठाकुर (मालिक) या बड़ा) कहते हैं। उत्तरी भारत में अफसर लोग साध ारण चलकों को बाबू इसी भावना से कहते हैं।

(1) अधिक शब्दों के स्थान पर एक शब्द का प्रयोग - मनुष्य में आलस्य अधिक है और इसलिए कम से कम परिश्रम से वह अपना काम निकालना चाहता है। बोलने में भी वह चाहता है कि कम से कम शब्दों में अपने अधिक से, अधिक भाव व्यक्त कर सके। इस प्रयास में अधिक प्रयोग में आने वाले शब्दों में कुछ अंश वह छोड़ देता है। ऐसा करने से शेष अंश ही पूरे का अर्थ देने लगता है और इस प्रकार अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। रेल (ट्रेन की पटरी) पर चलने के कारण ट्रेन को रेलगाड़ी कहा गया। अब 'गाड़ी' शब्द हटा दिया गया है, और केवल रेल' का अर्थ भी रेलगाड़ी है। पढ़े लिखों को छोड़कर अब तो कम लोग इसे जानते थे कि 'रेल पटरी' को कहते हैं। इस प्रकार के अर्थ में काफी परिवर्तन हो गया है। इसी प्रकार, तार का प्रयोग अब तार द्वारा भेजी गई खबर के लिए भी होने लगा है। पहले हाथी को 'हस्तिनमृग' (ऐसा जानवर जिसके हाथ अर्थात् सूंड हो) कहा जाता था, बाद में 'मृग' छोड़ दिया गया ओर केवल 'हस्तिन' ही पूरे अर्थ देने लगा। रेलवे स्टेशन के लिए 'स्टेशन' मोटरकार के लिए 'मोटर या कार जिनरिक्शा के लिए रिक्शा, साईकिल के लिए रिक्शा, 'कॉपी बुक' के लिए 'कॉपी' 'नया पैसा' के लिए 'पैसा' अथवा नया (पूरब में दस नये की ककड़ी है।), प्रिंसपल टीचर के लिए प्रिंसपल, कैपिटल सिटी के लिए कैपिटल, नेकटाई के लिए टाई तथा पोस्टल स्टैम्प के लिए स्टैम्प का प्रयोग अब सर्वत्र हो रहा है। टिन धातु से बने पीपे को 'टिन का पीपा न कहकर 'टिन' या 'पीपा' कहा जाता है। दो पहियों का होने के कारण बाइसिकिल नाम पड़ा। अब केवल साइकिल कहा जा रहा है, जिसका अर्थ 'पहिया' मात्र है। कुछ लोग तो 'बाइक' कहते हैं। मीट का अर्थ था खाद्य (Sweet meat) मीठा खाद्य या मिठाई)। 'फ्लेश मीट' का प्रयोग किया गया खाने में प्रयुक्त गोश्त के लिए। बाद में 'फ्लेश' हट गया और 'मीट' का ही प्रयोग 'गोश्त' के लिए होने लगा। इस प्रकार के रोज के प्रयोग में आने वाले बहुत से शब्द मिलते हैं जिनका अर्थ परिवर्तित हो गया है।

(10) सादृश्य - सादृश्य के कारण भी कभी-कभी अर्थ-परिवर्तन होता है, पर इसके उदाहरण अधिक नहीं मिलते। अंग्रेजी से हिन्दी में जो बहुत से शब्द आए हैं, उनमें 'टिकट' और 'टैक्स' भी हैं। इनमें 'टिकट' का रूप तो 'टिकिट' मिलता है और उसी के सदृश्य पर 'टैक्स' का रूप टिकस का टिक्कस (टिक्कस में घर-बार बिकानी -

भारतेंदुकालीन एक पक्ति) हो गया है। 'टिकट' और 'टिकस' के रूप-साम्य के कारण 'टिकस' के अर्थ में परिवर्तन हो गया है और अब देहात (भोजपुरी प्रदेश) में प्राय: लोग 'टिकिट' के स्थान पर उस अर्थ में 'टिकस' (रेल का डाक का रसीदी) का भी प्रयोग करते हैं। यहां ध्यान देने की बात है कि सादृश्य के कारण अर्थ-परिवर्तन अज्ञान का सहारा लेकर घटित होता है, यों भाषा के अधिकांश परिवर्तन अज्ञान के क्रोड़ में पलते हैं। आधुनिक काल में संस्कृत का कम ज्ञान रखने वाले अनेक साहित्यकारों ने बहुत से संस्कृत शब्दों के अर्थ में इस प्रकार परिवर्तन ला दिये हैं और कुछ शब्द तो खूब चल पड़े हैं। 'प्रश्रय' का संस्कृत में अर्थ था विनय, शिष्टता, नम्रता। 'आश्रय' शब्द इससे मिलता-जुलता है, अत: आश्रय या सहारा अर्थ में इसका प्रयोग होने लगा है।

इसी प्रकार, 'उत्कांति' (मूल अर्थ 'मृत्यु' या 'उछाल') का क्रांति के अर्थ में, या उत्क्रोश (मूल अर्थ एक पक्षी 'या' चिल्लपों) का आक्रोश के अर्थ में प्रयोग भी वर्ग के परिवर्तन से युक्त है। देहात में कनेक्शन के अर्थ में मैंने 'कन्सेक्शन' का भी प्रयोग सुना है। 'अभिज्ञ' और 'अविज्ञ' में सादृश्य से 'विज्ञ' के अर्थ में कुछ नया 'भिज्ञ' का तथा 'अविज्ञ' के अर्थ में 'अभिज्ञ' का प्रयोग करते हैं। यह तो सादृश्य का ध्वन्यात्मक रूप था। रूप-सादृश्य अथवा कार्य सादृश्य के कारण भी अथों का अर्थ बदल जाता है, बड़े का मुँह, सुराही की गर्दन, आरी के दांत, नदी का पेट, सितार के कान, सुई का मुँह, ईख की आंख, पेड़ की धड़, कुर्सी के हाथ, मेज के पैर में प्रयोग करने से।

(11) अज्ञान - गलत अर्थ में प्रयोग करने से भी शब्द का अर्थ बदल जाता है। संस्कृत के अनेक शब्दों का प्रयोग आधुनिक भाषाओं में इसी कारण बदल गया है। संस्कृत का अच्छा ज्ञान न रखने वाले साहित्यकारों ने इस क्षेत्र में बहुत योग दिया है। संस्कृत का धन्यवाद (प्रशंसा) हिंदी में शुक्रिया हो गया है। लोक-भाषाओं में गलती के कारण अर्थ-परिवर्तन के अच्छे उदाहरण मिलते हैं। जैसे अवधी में 'बूढ़ा' के लिए 'बुढ़ापा', भोजपुरी में कलंक के लिए 'अकलंक' 'फजल' के लिए बेफजल कई बोलियों में 'खालिस' के लिए निखालिस, गुजराती में 'जरूरत' के लिए जरूर अंग्रेजी में इससे मिलती-जुलती प्रवृत्ति है। मुहावरे एवं लोकोक्तियों के अथों के परिवर्तन में भी अज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान है। सादृश्य के अंतर्गत भी कुछ इस प्रकार की गलतियां ली गई है।

(12) पुनरावृत्ति - कभी-कभी शब्दों का दुहरा प्रयोग चल पड़ता है और इसके कारण भी उनके आधे भाग के अर्थ में परिवर्तन हो जाते हैं। अब 'विंध्याचल पर्वत' का प्रयोग चल पड़ा है। ऐसे प्रयोग करने वाले विन्ध्याचल का अर्थ विध्य पर्वत न लेकर उसे पर्वत का नाम मात्र समझते हैं। मलयगिरि के विषय में भी यही बात है। द्रविड़ भाषा में 'मलय' शब्द हो पहाड़ का अर्थ रखता है, हम लोगों ने 'मलय' का नाम समझ कर उसके साथ 'गिरि' जोड़ लिया है। कुछ लोग तो 'मलयगिरि पर्वत' भी कहते हैं। इसी प्रकार, कुछ लोग हिमालय पर्वत या 'फूलों का गुलदस्ता' भी कहते हैं। डबलरोटी को पावरोटी भी कहते हैं। इस दुहरे प्रयोग का परिणाम यह हुआ कि लोग 'पाव' का अर्थ 'डबल' लगाने लगे हैं, जबकि 'पाव' पुर्तगाली शब्द का अर्थ 'रोटी' होता है। दरअसल में, दरहकीकत में, किंतु फिर भी, पर भी, आदि प्रयोग भी ऐसे ही हैं वह ठीक उसके उलटा है, जिसमें दो शब्दों के लिए एक का प्रयोग (रेलगाड़ी के लिए रेल) होता है, क्योंकि यहां एक शब्द के लिए एक से अधिक का प्रयोग है। 'सज्जन व्यक्ति का प्रयोग भी इसी श्रेणो का है। अनुवादात्मक युग्म भी इसी प्रकार के होते हैं। 'सौदा सुलुफ' में सुलुफ का अर्थ लोग अब 'वगैरह जानने लगे हैं, यद्यपि उसका अर्थ है 'सौदा'।

(13) एक शब्द के दो रूपों का प्रचलन - जीवित भाषा में एक वस्तु कार्य के लिए ठीक अर्थ रखने वाले दो शब्द नहीं रह सकते। भाषा यह व्यर्थ का बोझ प्राय: स्वीकार नहीं करती। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक तत्सम के साथ-साथ उसके तदभव या अर्द्धतद्भव शब्द का भी प्रचलन हो जाता है। इस दशा में दो बातों में से कोई एक घटित होती हैं या तो दोनों शब्दों में से एक लुप्त हो जाता है, या फिर किसी एक का अर्थ कुछ भिन्न हो जाता है। हमें दूसरी बात पर विचार करना है। हिंदी में कुछ शब्दों के दो रूप चल रहे हैं और भाषा यह बोझ स्वीकार नहीं कर सकती, अत: दोनों के अर्थ में भेद हो जाते हैं। इस प्रकार, दो रूप के प्रचलन में भी अर्थ-परिवर्तन अवश्यंभावी हो जाता है। इन दो अर्थों में प्राय: देखा जाता है कि तत्सम शब्द तो कुछ प्राचीन या उच्च अर्थ रखते हैं, पर तद्भव शब्द कुछ हीन

या नया अर्थ। उदाहरण के लिए स्तन और धन एक ही है, पर दोनों के अर्थ में अब भेद हैं एक का प्रयोग स्त्री के लिए होता है तथा दूसरे का पशु के लिए। इसी प्रकार, स्थान और थान शब्द है। स्थान का प्रयोग देवी-देवताओं के लिए होता है और थान का प्रयोग हाथी या घोड़े के लिए। जैसे – 'यह ब्राह्मणजी का स्थान है।' या 'हाथी का थान यहां है। इस प्रकार के और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं : गर्भिणी (स्त्री), गाभिन (गाय-भैंस) ब्राह्मण (शिक्षित ब्राह्मण), बाम्हन (निरक्षर), साधू, साहू; परीक्षणक पारखी; तिलक, टिकुली (स्त्रियों के ललाट पर लगाने की काँच आदि की बिन्दी) सौभाग्य, सोहाग तथा वार्ता, बात इत्यादि।

अर्थ-विचार के प्रसिद्ध मनीषी ब्रील ने इसे भेदभाव का नियम कहा है। उनका यही कहना है कि सामान्य जनता का मस्तिष्क एक साथ एक ही अर्थ के दो शब्द नहीं ढो सकता। एक शब्द दो विचारों को व्यक्त करे, यह ठीक हो सकता है, किंतु एक विचार के लिए दो शब्द हों, यह व्यर्थ है। साहित्य में एक वस्तु या विचार के लिए कई शब्द चलते हैं, पर उनका बिल्कुल एक ही अर्थ नहीं होता। उनका प्रयोग अपना अलग-अलग महत्व रखता है। पंतजी ने 'पल्लव' की भूमिका में पवन, प्रभंजन, वायु, श्वसन तथा समीर आदि का अन्तर दिखलाया है। इस प्रकार एक शब्द के दो रूपों में अर्थ का अंतर प्राय: हो जाता है।

(14) शब्दों का अधिक प्रयोग – अधिक प्रयोग से शब्द घिस जाते हैं और उससे परिचय इतना अधिक बढ़ जाता है कि उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है। श्रीयुत श्रीमान् का श्री का प्रयोग आरम्भ में काफी सार्थक लगता था, किंतु अब वे प्रयोग से इतने घिस गये हैं कि निरर्थक से जान पड़ते हैं, और उनमें औपचारिकता मात्र रह गई है। समाजवाद, नेता, क्रांति, संस्कृति, कला, आदि भी अब उतनी शक्ति नहीं रखते जितनी पहले रखते थे। विशेषणों और क्रियाविशेषणों में यह बात और भी अधिक घटित है। 'बहुत' शब्द अब कुछ व्यर्थ हो रहा है। उनके स्थान पर अत्यन्त या 'अतिशय' आदि का प्रयोग अधिक जोरदार ज्ञात होता है। 'अधिक' शिथिल पड़ने पर 'अत्यधिक' या 'अधिकाधिक' के भी प्रयोग होने लगे हैं।

(15) किसी राष्ट्र, जाति, संप्रदाय, धर्म या वर्ग के प्रति सामान्य मनोभाव – किसी जाति, राष्ट्र या जन-समुदाय के प्रति जब जैसी भावना होती है उसकी छाया उनके शब्द के अर्थों पर भी पड़ती है। इस सम्बन्ध में कभी-कभी तो ऐसा भी देखा गया है कि अर्थ पूर्णत: उलटा हो जाता है। 'असुर' का पहले हमारे यहां 'देवता' अर्थ था। उस समय तक संभवत: ईरान वालों के प्रति हम लोगों के विचार बुरे नहीं थे। किंतु, ज्यों ही विचार बदले, हमने उस शब्द का अर्थ 'राक्षस' इसलिए कर लिया कि यह नाम ईरानियों के प्रधान देवता (अहुरमन्दा) का था। यही बात वहां भी हुई। हमारे 'देव' शब्द का अर्थ उन लोगों ने अपने यहां अदेव या राक्षस कर लिया। साम्प्रदायिक दंगों तथा पाकिस्तान के बंटवारे के समय मुसलमान शब्द का अर्थ यहां कुछ गिर गया था। 'हिंदू' शब्द की यह दशा पाकिस्तान में अब भी है। सनातनी हिन्दुओं में 'ईसाई' के अर्थ की भी यही दशा है। फारसी में 'हिन्दू' का अर्थ बहुत पहले से 'गुलाम', 'काफिर' और 'नापाक' आदि है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में 'तुर्क' का अर्थ खाद्य-अखाद्य का विचार न रखने वाला तथा उजबक का अर्थ हिंदी में मूर्ख है। अनायों के कुछ शब्दों का अर्थ भी आर्यों ने घृणा के कारण गिरे अर्थ में अपने यहां रखा। आर्येतर परिवार का 'पिल्ला' शब्द मूलत: लड़का या किशोर (किसी भी जीव का) का समानार्थी है, पर आर्यों ने उसे कुत्ते के बच्चों के लिए प्रयोग करना आरम्भ किया। आज भी लगभग सभी भाषाओं में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। आर्यसमाजियों का सनातनधर्मियों के प्रति श्रद्धा का भाव नहीं है। वे उन्हें धर्म की दुर्दशा करने वाले तथा ढोंगी मानते हैं इसका परिणाम यह हुआ है कि आर्यसमाजियों के मस्तिष्क में व्रत, कथा, श्राद्ध, माला, मूर्ति आदि का वह उच्च अर्थ नहीं है जो सनातनधर्मियों में है। कुछ त्योहारों के विषय में शिया और गन्नी मुसलमानों में भी यही अन्तर है, जिनके कारण उनसे सम्बन्धित शब्दों के अर्थ पर भी प्रभाव पड़ा है। बौद्धों के प्रति हमारी भावना ने ही 'बौद्ध' का विकास 'बुद्ध' में किया तथा 'देवानाप्रिय:' का अर्थ मूर्ख हो गया। जब से श्रेणी-संघर्ष का सिद्धान्त समाज के लिए आवश्यक समझा गया है, फ्रेंच शब्द बुरजुआ, हिंदी पूंजीवादी, सामंत, राजा, जमींदार, तालुकेदार, इलाकेदार, आदि का अर्थ कितना नीचे गिर गया है; स्वयं कांग्रेस शब्द में जो उच्चता, पवित्रता, स्वार्थ-त्याग और बलिदान आदि की भावना थी, आज समाजवादियों के प्रभाव एवं कांग्रेसियों के पतन के कारण बिल्कुल नहीं रह गई है।

(16) एक वर्ग के एक शब्द में अर्थ-परिवर्तन - शब्द अधिकतर वर्गों में रहते हैं। यदि वर्ग के किसी एक भी शब्द के में परिवर्तन हुआ तो उसका प्रभाव शेष शब्दों के अर्थ पर भी पड़ता है।

दुहिता का अर्थ था 'गाय दुहने वाली'। बाद में जब इसका अर्थ 'लड़की' हो गया तो इससे बनने वाले दौहित्र, दौहित्री, दौहित्रायण आदि शब्दों का अर्थ भी उसी के अनुसार परिवर्तित हो गया।

'अभियोग' का मूल अर्थ लगन, मनोनिवेश (अभि+युज्) था, तथा इसी के अनुरूप 'अभियुक्त' (काम में लगा), 'अभियोक्तृ' आदि का भी अर्थ था। स्मृति काल में अभियोग का अर्थ बदला तो अभियुक्त, अभियोगी आदि सभी संबंद्ध शब्दों का बदल गया। कुछ शब्दों के वर्ग, प्रयोग या संदर्भ के साथ के आधार पर भी होते हैं। अहिंसा, सत्य, कांग्रेस आदि एक वर्ग के शब्द है। धर्म-कर्म, पूजा-पाठ, जप-तप, ईश्वर-आत्मा आदि भी एक वर्ग के शब्द हैं। इधर धर्म के प्रति अनास्था के कारण उसकी पवित्रता अधिक लोगों के मस्तिष्क से निकल गई है। इसका प्रभाव पूजा, जप, माला, भजन तथा व्रत आदि पर इतना पड़ा है कि ये सभी प्राय: ढोंग समझे जाने लगे हैं। शब्दों के अर्थ को धातु के आधार पर भी वर्ग बनाये जा सकते हैं। उनमें भी उपर्युक्त बातें पाई जायेंगी।

(17) साहचर्य आदि के कारण नवीन अर्थ का प्रवेश- ऐसी दशा में अधिकतर अर्थादेश हो जाता है। सिन्धु का अर्थ बड़ी नदी या समुद्र था। आर्यो ने सिन्धु नदी को भारत में आने पर 'सिन्धु' कहा। कुछ दिन में नदी के आसपास की भूमि भी 'सिन्धु' कही जाने लगी। सिन्धु से 'सैंधव' शब्द बना जिसका अर्थ है, सिन्धु देश में होने वाला।' उस समय सिंधु देश की प्रधान वस्तु 'घोड़ा' और 'नमक' होने के कारण, सैंधर्व का प्रयोग इन दोनों के लिए होने लगा। उधर बाद में सिन्धु के निवासियों को भी सिंधु कहा जाने लगा जिसका फारसी रूप हिन्दू या हिन्दू हो गया। इस प्रकार, अनजाने धीरे-धीरे सिन्धु का अर्थ जड़ से चेतन हो गया।

'पत्र' शब्द का प्रयोग अब पत्र पर लिखे विचारों या शब्दों के लिए भी होने लगा है। पत्र में अशुद्धियाँ बहुत है अर्थ कागज की अशुद्धियाँ न होकर शब्द या वाक्य की अशुद्धियाँ हैं। 'पत्र रुला देने वाला है' में पत्र का अर्थ विचार है। आज के ये अर्थ मूल नहीं है, विकसित हो गये हैं।

(18) किसी शब्द, वर्ग या वस्तु में एक विशेषता का प्राधान्य - एक विशेषता के प्राधान्य के कारण, वही उस वस्तु या वर्ग आदि का प्रतीक समझी जाने लगती है। इसमें अर्थ-विस्तार और अर्थ-संकोच दोनों ही होता है। कम्युनिस्ट की प्रधान निशानी 'लाल झण्डा' है, अत: वे चारों ओर इस नाम से भी प्रसिद्ध हैं। देहात में तो इन्हें जैसे 'लाल झण्डा' की संज्ञा दे दी गई है। 'लाल झण्डा' की सभा है का अर्थ है 'कम्युनिस्टों की सभा है।' यहाँ लाल झंडा के अर्थ का विस्तार हो गया है। वह अब कम्युनिस्टों के पूरे समूह का अर्थ रखता है। इसी प्रकार, 'टोपी' का अर्थ कांग्रेस के लिया जाता रहा है। 'लाल पगड़ी' का प्रयोग पुलिस के लिए बहुत पहले से चल रहा है। 'सफेदी पगड़ी' पारसी पुरोहित का प्रतीक है। इन सबमें अर्थ-विस्तार हो गया है जिसका कारण है किसी एक विशेषता का प्राधान्य।

इसी कारण, अर्थ-संकोच के भी उदाहरण मिलते हैं। गैस को साधारणत: एक प्रकार का हल्का ईंधन समझा जाता है, अत: गैस शब्द सर्वसाधारण के लिए केवल उसी का बोध कराता है। पर, ऐसी भी गैसें हैं जो जलाने के काम नहीं आती। यहां गैस की एक विशेषता सर्वविदित होने के कारण उसके विस्तृत अर्थ में संकोच हो गया है।

फूल प्राय: सुन्दर, कोमल और सुगंधित होते हैं। अत: सर्वसाधारण में फूल नाम से इन्हीं तीनों गुणों का भाव जागृत होता है। यों संसार में ऐसे फूलों की भी कमी नहीं है, जो बदसूरत और दुर्गन्धपूर्ण (करियारी के फूल की गंध बड़ी बुरी होती है। घृतकुमारी का फूल तो और भी बुरा महकता है।) होते हैं। पर, फूल मना या शब्द में उनके गुणों या दुर्गुणों को स्थान नहीं है। यहाँ फूल में अर्थ-संकोच है।

(19) व्यंग्य - व्यंग्य के शब्दों में अधिकतर अर्थादेश हो जाता है और फिर वे उसी नये अर्थ में प्रचलित हो जाते हैं। हर भाषा में इसके उदाहरण काफी बड़ी संख्या में मिलते हैं। नीचे के उदाहरणों में प्राय: सभी का शाब्दिक अर्थ बुद्धिमान है, किंतु व्यंग्य के कारण प्रचलन में वे मूर्ख के लिए भी प्रयुक्त होते हैं। जैसे तीन हाथ की बुद्धि वाले, 'अक्ल के खजाना', 'अक्ल की पुड़िया', 'अक्ल की पोटरी', 'पूरे पंडित' या 'पूरे देवता' तथा गुजराती 'दोढ़ चतुर' (चतुर का डेढ़ा) अन्य उदाहरण है।

इसी प्रकार, 'पूरे युधिष्ठिर के अवतार' का अर्थ असत्यवादी, 'भाग्य के सबसे बड़े साथी' का अर्थ अभागा, 'लक्ष्मी के पति' का अर्थ दीन और 'धर्मावतार' का अर्थ अधर्मी, बुरा आदि लिया जाता है। गंदे आदमी को 'सफाई का अवतार' कहते हैं और भद्दे आदमी को 'कामदेव का भाई'। बड़ी जल्दी आ गए (देर से), कैसे रास्ता भूल पड़े (आए), बड़े परिश्रमी हो (तनिक भी नहीं), आदि भी व्यंग्य के कारण विपरीतार्थी हो जाते हैं। इस प्रकार, अच्छे गुणों के व्यंग्य-प्रयोग द्वारा विपरीतार्थ या दुर्गुणों को प्रकट करते हैं और दुर्गुण द्वारा गुण को। अपने साथी को बहुत साफ कपड़े पहने देखकर हम कह सकते हैं, 'कहो भाई आजकल धोबी तुम्हें नहीं मिल रहा है क्या?' स्वास्थ्य, भोजन, धन, बुद्धि, सौंदर्य, गुण तथा दशा आदि के विषय में ही ऐसा प्रयोग अधिक मिलते हैं।

(20) भावावेश - भावावेश में बहुत से शब्दों के विषय में हम असावधान हो जाते हैं और बहुधा बढ़ा-चढ़ाकर या विचित्र अर्थ में प्रयोग करते हैं। कभी-कभी तो इसके उदाहरण भी व्यंग्य से मिलते-जुलते और यथार्थत: एक प्रकार के व्यंग्य ही दिखाई पड़ते हैं। जब पिता प्रेम के आवेश में अपने लड़के को 'अरे तू तो बड़ा पाजी है।' कहता है तो पाजी का अर्थ वहां बुरा न होकर केवल प्यार होता है। इसी प्रकार लोग प्रेम में शैतान, नालायक, बेहूदा तथा गदहा आदि का प्रयोग करते हैं। आजकल के मित्र लोग प्रेम के आवेश में एक-दूसरे को 'साले' ही नहीं, जाने और क्या-क्या कह जाते हैं। कभी-कभी तो यह कहना (जैसे कहो बेटा!) इतनी बड़ी गाली होती है कि कथन की पृष्ठ भूमि में नैकट्य न हो तो खून की नदी बह जाय।

क्रोध के भावावेश में भी लोग इतने पागल हो उठते हैं कि शब्दों का विचित्र प्रयोग कर देते हैं। उसमें भी परिवर्तन दिखाई पड़ता है। 'अच्छा बच्चू फिर आना तो पता चलेगा' में 'बच्चू' शब्द प्यार में लिपटा हुआ 'बच्चा' शब्द का वाचक नहीं है। वहां बच्चू केवल इतना बतला रहा है कि क्रोध करने वाला क्रोध में उसे विपक्षी को नाचीज समझ रहा है। इसी प्रकार, करुणा और घृणा के आवेश में भी शब्दों का अर्थ विचित्र हो जाता है। 'राम-राम' ऐसे पवित्र शब्द का अर्थ घृणा है भावावेश के कारण 'छि:छि:' हो गया है। दूसरी ओर किसी दु:खी आदमी के मुंह से निकलता 'राम' शब्द जैसे करुणा का प्रतीक और रुला देने वाला है।

कुछ लोग, विशेषत: कलाकार बड़े भावुक होते हैं और चीज का वर्णन बढ़ा-चढ़ाकर करते है। इसी से यह होता है कि पढ़नेवाला अतिशयोक्त को निकाल कर समझता है और इस प्रकार शब्दों के अर्थ धूमिल पड़ जाते हैं।

कुछ जातियाँ अन्यों से अधिक भावप्रवण होती हैं। इस कारण उनके यहाँ के जोरदार शब्दों का अर्थ अन्य शब्दों से कम शक्तिमान् हो जाता है, क्योंकि वे भाव-प्रवणता में सर्वदा उसे इधर-उधर खींचते रहते है। फ्रेंच और बंगला में यह बात विशेष पाई जाती है। इस प्रकार, भाव प्रवणता के कारण कुछ भाषाओं के कुछ शब्दों के अर्थ बड़ी शीघ्रता के साथ परिवर्तित होते हैं।

इसके कारण घटित अर्थ-परिवर्तन ऊपर से तो क्षणिक दिखाई पड़ता है, किन्तु यथार्थत: इसका प्रभाव स्थायी होता है। इस प्रकार प्रयुक्त शब्दों का अर्थ कुछ नरम पड़ जाता है और उसके स्थान पर फिर नये शब्द आते हैं, फिर आगे चलकर उनकी यही दशा होती है।

(21) व्यक्तिगत योग्यता: - व्यक्तिगत योग्यता के अनुसार भी शब्दों के अर्थ में परिवर्तन होता रहता है। प्रत्येक व्यक्ति शब्दों को एक ही संदर्भ में नहीं समझता। चोर ने 'अच्छा' शब्द चोरी के प्रसंग में यदि सीखा हो तो अच्छा का उसके मस्तिष्क में अच्छा का अर्थ वहीं नहीं होगा जो एक साधु के मस्तिष्क में। सब तो यह है कि प्रतिदिन के काम में आने वाली स्थूल वस्तुओं के नाम को छोड़कर किसी भी शब्द का अर्थ मस्तिष्क में बिल्कुल एक ही नहीं रहता। एक सुयोग्य दार्शनिक के लिए 'ब्रह्म', कुछ और है, एक साधारण पढ़े-लिखे के लिए और है, और एक देहाती के लिए रूष्ट होकर आत्महत्या करने वाले ब्राह्मण की समाधि का 'चडर' मात्र ही ब्रह्म है।

टकर ने ठीक ही कहा है कि शब्द तो एक प्रकार का सिक्का है, पर ऐसा सिक्का जिसका मूल्य निश्चित नहीं। बोलने वाला उसे दो रूपये का समझ सकता है और सुनने बाला अपनी योग्यतानुसार उसे तीन या एक रुपये का समझ

सकता है। तुम विचारों तथा नैतिक भावनाओं के शब्दों के विषय में यह और अधिक सत्य है। धर्म, ईश्वर अच्छा-बुरा आदि शब्द उदाहरणस्वरूप लिए जा सकते हैं। इस प्रकार के शब्दों में अस्थायी रूप से अर्थिक उतार-चढ़ाव व्यक्तिगत स्तर पर शर्त हैं।

(22) शब्दों के अर्थ का अनिश्चय – ऊपर के कारण से यह मिलता-जुलता कारण है। कुछ शब्द ऐसे होते हैं, जिनका निश्चित अर्थ होता ही नहीं। 'अहिंसा' शब्द को हम लें। इसका एक ओर तो केवल यह अर्थ है कि किसी को जान से न मारना चाहिए, पर दूसरी ओर जीना भी हिंसा है, क्योंकि सांस के द्वारा या पैर से कुचलकर प्राय: हमसे न जाने कितने जीव मरते रहते हैं। इन दोनों अर्थों के अतिरिक्त ऐसी बात कहना भी हिंसा है जिससे किसी का भी दुखें और शायद ही कोई ऐसी बात होगी जो संसार में सबको अच्छी लगे। तो यहाँ सर्वदा मौन रहना भी अहिंसा पर चलने के लिए आवश्यक है। इस प्रकार, हिंसा और अहिंसा शब्द का बहुत निश्चित अर्थ नहीं। सत्य और कर्तव्य अर्थ भी इसी तरह अनिश्चित हैं। टकर साहब की ऊपर कही गई बात यहां भी लागू होती है। 'व्यक्ति योग्यता' तथा 'शब्द के अर्थ का अनिश्चय' इन दोनों कारणों में यथेष्ट एकता है। अंतर केवल इतना है कि एक व्यक्ति पर जोर देता है कि उसके मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक स्तर के अनुसार शब्दों का अर्थ परिवर्तित होगा, पर दूसरा शब्द पर ही जोर देता है। दूसरे के अनुसार, एक शब्द का अर्थ जितना ही अधिक अनिश्चित होगा, उसमें अर्थ-परिवर्तन का रूप भी उतना अधिक विचित्र होगा। इतना ही नहीं, अपितु अनिश्चित शब्दों में अर्थ-परिवर्तन होने की संभावना निश्चित शब्दों से अधिक होगी। आर्य, पाप तथा पुण्य आदि अनेक अन्य शब्द भी लिये जा सकते हैं।

(23) एक वस्तु का नाम पूरे वर्ग को देना या सामान्य के लिए विशेष का प्रयोग- वर्ग की किसी एक वस्तु से अधिक परिचित होने पर उसी नाम से हम पूरे वर्ग को पुकारने लगते हैं। इससे उस शब्द में अर्थ-विस्तार हो जाता है। अब 'स्याही का अर्थ केवल काली स्याही न रहकर सभी रंग (लाल, हरा, नीली आदि) की स्याही हो गया है, यद्यपि यह शब्द 'स्याह' से बना है, जिसका अर्थ काला है। पहले केवल काली स्याही थी, अत: स्याही कहा गया। बाद में और रंग की भी स्याहियों का प्रचलन हुआ, पर अधिक परिचित होने से वही नाम चलता है। हिन्दी का प्रयोग (शाक) शब्द पहले केवल उन हरे पत्तों के लिए प्रयुक्त था जिनकी तरकारी की थी, पर अब साग का अर्थ तरकारी हो गया है। 'सब्जी' शब्द सब्ज से बना है, जिसका अर्थ 'हरा' है। इसका भी प्रयोग पहले केवल शाक के लिए होता था, पर अब आलू (भूरा), सीताफल या कोहड़ा (पीला), प्याज (सफेद या लाल) और टमाटर भी सब्जी कहे जाते हैं। 'मुझे कुछ पैसे चाहिए' में 'पैसे' का अर्थ पैसा न होकर घर कुछ जानवरों या कीड़ों के लिए हम एक ही लिंग का नाम प्रयुक्त करते हैं। घोड़े हाथी आदि बड़ों में यह प्रयोग अधिक नहीं चलता, पर छोटे जानवरों में तो प्राय: सभी में चलता है। कुत्ता और कुतिया के लिए कुत्ता, गीदड़ और गीदड़न के लिए गीदड़ और लोमड़ी और लोमड़ा के लिए लोमड़ी, तोता-तोती के लिए तोता, मैना-मैनी के लिए मैना इत्यादि। इस एक लिंग का प्रयोग उभयलिंग के लिए होने के कारण उसका वर्ग भी विस्तार पाकर उभयलिंग हो गया है। रूसी में घोड़ा के लिए बहुप्रचलित तथा 'लोशद' सीलिंग है। वहां सामान्यत: घोड़े को भी इसी शब्द से अभिहित करते हैं।

अन्य कई भाषाओं की तरह हिन्दी में सबसे एक विचित्र समस्या खड़ी हो गई है। कुछ जानवर चाहें नर हों या मादा, भाषा में उनका 'नर-प्रयोग' चल रहा है। जैसे वह चींटा हो या मादा, दोनों के लिए 'चींटा' का प्रयोग चलता है और पुल्लिंग में। इसी प्रकार, तोता, कौआ, बाज, बारहसिंहा, गीदड़, तेंदुवा, चीता और वनभानुष आदि में हमारी हिन्दी भाषा के अनुसार जैसे केवल नर ही नर होते हैं। दूसरी ओर, चींटी, सिधरी, कोयल, लोमड़ी तथा छिपकली में हिन्दी के अनुसार नर का एकान्त अभाव है। इतना ही नहीं, पुकारने की इन विचित्रता के कारण देहात में कुछ लोगों को तो ऐसा भी विश्वास है कि चींटा और चींटी एक ही जाति है। अन्तर केवल यह है कि एक नर है और दूसरा मादा। 'तोता मैना' के प्रसिद्ध किस्से में तोता मैना के विषय में भी यही धारणा है। इसका प्रभाव यह पड़ा है कि चींटी एक अलग जीव न समझी जाकर चींटा को स्त्री समझी जाती है और इसी प्रकार मैना तोते की स्त्री मानी जाती है।

(24) आलंकारिक अथवा लाक्षणिक प्रयोग – बातचीत, या किसी चीज का वर्णन में वक्ता या लेखक का यही प्रयास रहता है कि वह कम से कम शब्दों में अपने को अधिक से अधिक स्पष्ट एवं सुन्दर रूप में व्यक्त कर सके। ऐसा करने के लिए अलंकारों (उपमा, रूपक आदि) या लक्षण का प्रयोग किया जाता है। आरम्भ में तो ये प्रयोग आलंकारिक या लाक्षक्षिक रहते हैं, पर कुछ दिनों में अलंकार या लक्षण का ध्यान किसी को नहीं रहता और उस नवीन अर्थ में शब्द का प्रयोग चल पड़ता है। 'तुम गदहे हो' में गदहे का सीधा अर्थ मूर्ख है। गदहे की तरह मूर्ख नहीं जो प्रारम्भिक प्रयोग में रहा होगा। अलंकार अधिकतर सादृश्य पर आधारित रहता है। परिचित रूपों या वस्तुओं के द्वारा हम अपरिचित के विषय में बतलाना चाहते हैं।

सूक्ष्म वस्तुओं या व्यापारों का साधारण शब्दों में प्रकटीकरण आसान नहीं है। अतः, उनके लिए अलंकारों का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। उदाहरणस्वरूप खरी बात, निर्जीव भाषा, सजीव चित्रण, मधुर संगीत, मीठे बोल, रूखी हंसी, कटु अनुभव, सरस बात, कठिनाई पार करना, दुःख काटना तथा आपत्तियों से घिर जाना आदि को ले सकते हैं। आज बिना ध्यानपूर्वक विचार किये इनके अलंकारों का पता नहीं चलता, जिसका एक मात्र कारण है अर्थ–परिवर्तन। उल्लेख्य है कि प्रायः ये सभी भाषिक विचलन के उदाहरण हैं।

मानव के स्वभाव को स्पष्ट करने के लिए पशुओं, जातियों तथा बेजान वस्तुओं के सहारे अलंकार बनाना पड़ता है। ये प्रयोग भी इतने प्रचलित हैं कि साधारणतया अलंकार नहीं समझे जाते। अपने आलंकारिक अर्थ में ये प्रतीक रूढ़ हो चुके हैं। उदाहरणस्वरूप पत्थर (कड़े हृदय का), पानी (नम दिल), पेंदी का लोटा (जिसका कछ निश्चय न हो), कांटा (क्रूर), गदहा (मूर्ख), उल्लू (मूर्ख या दिन के लिए अन्धा), भैंस (बेवकूफ), बैल (मूर्ख), गाय (सज्जन और सीधा) शेर (बहादुर), गीदड़ (कायर), सियार (होशियार और छली), कौआ (चालाक), काला नाग (जिसके काटने से लहर तक नहीं आती और मृत्यु हो जाती है, अतः खतरनाक), बनिया (कंजूस) कसाई (क्रूर), चमार (गन्दा), क्रिस्तान (भक्ष्याभक्ष्य का ध्यान न रखनेवाला) तथा अहिर या जाट (उडु) आदि लिए जा सकते हैं। बोलचाल की भाषा के तो जैसे ये प्राण हैं। आलंकारिक प्रयोग में ये शब्द अपना यथार्थ अर्थ न देकर अपने गुण का अर्थ देते हैं। ब्रील का कहना है कि अन्य सभी कारणों से शब्दों में अर्थ–परिवर्तन शनैः–शनैः होता है, किन्तु अलंकारों के कारण एक क्षण में (on the spur of the moment) हो जाता है। अलंकारों के कारण अर्थ–परिवर्तन लगभग सभी दिशाओं में होता है। इसके अन्तर्गत काव्यशास्त्र के सभी अलंकार लिये जाते हैं। इस सम्बन्ध में कुछ और उदाहरण देकर विषय को समाप्त किया जा सकता है। काला दिल, अन्धा कुआँ, नदी को गोद, पतंक की पूंछ, मधुर गीत मधुर गन्ध, ठोस कार्य, खोखला आदमी, टेढ़ी बात, पहाड़ की चोटी, कडुई बात, आरी के दांत, बन्दूक का घोड़ा, कलम की जीभ, लकड़ी का हीर कविता की आत्मा, कुर्सी के हाथ, चारपाई के पैर, नदी की शाखा, पहाड़ की जड़ तथा फिटकिरी के फूल आदि।

इन समतामूलक अलंकारों के अतिरिक्त भी कुछ अलंकार है। 'आजकल रोटी (खाना) मिलना आसान नहीं है।' 'प्रसाद को (प्रसाद की कृतियों को) पढ़ रहा हूँ। तथा 'आप गांधी (गांधी जी जैसे महान) नहीं है। उदाहरण पर्याप्त ऊपर के कुछ अन्य कारण भी अलंकार के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं, पर यहाँ स्पष्टता के विचार से उन्हें अलग रखा गया है।

(25) दूसरी भाषा का प्रभाव – कभी–कभी दूसरी भाषा के प्रभाव से भी शब्दों का अर्थ बदल जाता है। इस प्रकार का अच्छा उदाहरण इसी सदी में लिखे गये। संस्कृत के ग्रंथों में मिल जाता है, जिनमें समारोह (संस्कृत अर्थ चढ़ना या किसी बात पर सहमत होना), समाचार (संस्कृत अर्थ ख्याति, बिखरना आदि) अनेक शब्दों का प्रयोग संस्कृत में प्राप्त अर्थों में न होकर हिन्दी अर्थों में हुआ है। पंजाबी तथा हरियानी के प्रभाव से दिल्ली आदि में हिन्दी में भी 'मच्छर लड़ रहे हैं। का अर्थ 'मच्छर काट रह हैं' होने लगा है। वस्तुतः पंजाबी के प्रभाव से हिन्दी 'लड़ना' में 'काटना' का भी भाव आता जा रहा है। दिल्ली में हिन्दी के कॉलिज–प्राध्यापकों के मुंह से भी 'मच्छर लड़ना', 'सांप लड़ना' जैसे प्रयोग 'काटना' के अर्थ में सुनाई पड़ते हैं। पंजाबी साहित्यकारों द्वारा लिखित हिन्दी में 'जलना' के अर्थ में 'सड़ना (रोटी सड़ गई) भी ऐसे ही उदाहरण हैं। इसी प्रकार, कौरवी तथा हरियानी भाषी लोगों की हिन्दी में मौसा–मौसी (भाई

का ससुर भी मौसा कहलाता है तथा भाई की सास मौसी)। हरियानी तथा कुछ क्षेत्रों की ब्रजभाषा का व्यक्ति शरारत करके भागते हुए लड़के को संबोधित करके कहेगा 'डट जा अभी आता हूँ।' यहां स्पष्ट ही हिन्दी 'डटना' के अर्थ में विस्तार हो गया है। हिन्दी में इसका अर्थ 'जमना' है, पर इन क्षेत्रों में 'रुकना', 'ठहरना' भी भोजपुरी भाषा की हिन्दी में 'मरम्मत' में 'अच्छे' का भाव आ गया है। मैं स्वयं हिन्दी में इन कपड़ों को मरम्मत में रख दो कहता हूँ। यहां 'मरम्मत' से का आशय 'अच्छे तरह' या 'संभाल कर' है। इस प्रकार, हिन्दी की बोलियों एवं पंजाबी के प्रभाव से अनेक हिन्दी शब्दों के अर्थ में विस्तार होता जा रहा है।

(26) व्यक्ति प्रयोग - 'हरिजन' का मूल अर्थ भक्त है: सुर महिसुर हरिजन अरु गाई - तुलसी। गांधीजी ने. अछूत के लिए इसका प्रयोग करके इसका अर्थ बदल दिया।

इन उपर्युक्त प्रधान कारणों के अतिरिक्त विशेषण का संज्ञारूप में अर्थ-परिवर्तन के अनेक और भी कारण हो सकते हैं। प्रयोग, संज्ञा का क्रियारूप में प्रयोग आदि अर्थ परिवर्तन के अनेक और भी कारण हो सकते हैं।

इस प्रकार से उपरोक्त कारणों से किसी भाषा विशेष में अर्थ परिवर्तन की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है जो भाषा को नया रूप प्रदान करती रहती है।

साहित्य के अध्ययन में भाषा विज्ञान की उपयोगिता

साहित्य के अध्ययन में भाषा-विज्ञान की उपयोगिता-भाषा विज्ञान द्वारा भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। यह वैज्ञानिक अध्ययन प्राय: जीवित भाषाओं का ही किया जाता है, लेकिन पर्याप्त रिकार्ड होने पर मृत भाषाओं का भी अध्ययन किया जा सकता है। प्राचीन काल में भाषा संबंधी अध्ययन निरुक्त, शब्दानुशासन, निर्वचन शास्त्र, व्याकरण प्रत्तिशाख्य आदि द्वारा होता रहा, लेकिन आधुनिक भाषा विज्ञान का इतिहास लगभग दो शताब्दियों का है। समय-समय पर इसे अनेक नाम दिए हैं। भाषा-विज्ञान की परिभाषा को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। सभी ने अपने-अपने ढंग से उक्त परिभाषाएँ दी हैं ।

स्वयं आकलन के प्रश्न :

(1) अर्थ परिवर्तन का एक कारण बताओ।

(2) पुनरावृत्ति किसे कहते है।

(3) भौगोलिक वातावरण किसे कहते है।

11.4 सारांश:

सारांश रूप में हम कह सकते है कि अर्थ भाषा की आत्मा मानी जाती है। भाषा परिवर्तन के साथ-साथ अर्थो में परिवर्तन आता है। इस परिवर्तन के लिए विविध प्रकार के कारण माने जाते हैं जिसका उर्पुयुक्त विस्तृत वर्णन किया गया है।

11.5 कठिन शब्दावली -

बल-दबाव/ नम्रता- कोमलता/ प्रचलन- रीति या परम्परा/ अशोचन - अशोभनीय/अश्लीलता-भदता/ पुनरावृति-बार-बार करना या दोहराना।

11.6. स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

(1) उत्तर- बल का अपसरण, भौगोलिक वातावरण।

(2) उत्तर - किसी शब्द को बार-बार दोहराना।

11.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) भोलानाथ तिवारी – भाषा विज्ञान।

(2) देवेन्द्रनाथ शर्मा – भाषाविज्ञान की भूमिका।

(3) तिलक सिंह – नवीन भाषा विज्ञान।

11.8. सात्रिक प्रश्न

(1) अर्थ परिवर्तन के कारणों का उल्लेख कीजिए।

(2) अर्थ परिवर्तन में सामाजिक कारण की विवेचना करें।

(3) अर्थ परिवर्तन में भगौलिक कारण को संक्षेप में लिखें।

*****

इकाई–12

भाषा विज्ञान की उपयोगिता

संरचना

12.1 भूमिका

12.2 उद्देश्य

12.3 भाषा विज्ञान की उपयोगिता एवं परिभाषा

12.3.1 भाषा विज्ञान और अन्य शास्त्र

12.3.2 भाषा विज्ञान और व्याकरण

12.3.3 भाषा विज्ञान और तर्कशास्त्र

12.3.4 भाषा विज्ञान और मानव विज्ञान

12.3.5 भाषा विज्ञान और समाज विज्ञान

12.3.6 भाषा विज्ञान और मनोविज्ञान

स्वयं आकलन हेतु प्रश्न

12.4 सारांश

12.5 कठिन शब्दावली

12.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

12.7 संदर्भित पुस्तकें

12.8 सात्रिक प्रश्न

12.1 भूमिका :

साहित्य के अध्ययन में भाषा विज्ञान की उपयोगिता–भाषा विज्ञान द्वारा भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। यह वैज्ञानिक अध्ययन प्रायः जीवित भाषाओं का ही किया जाता है, लेकिन पर्याप्त रिकार्ड होने पर मृत भाषाओं का भी अध्ययन किया जा सकता है। प्राचीन काल में भाषा संबंधी अध्ययन निरुक्त, शब्दानुशासन, निर्वचन शास्त्र, व्याकरण, प्रतिशाख्य आदि द्वारा होता रहा, लेकिन आधुनिक भाषा विज्ञान का इतिहास लगभग दो शताब्दियों का है। समय-समय पर इसे अनेक नाम दिए हैं। भाषा–विज्ञान की परिभाषा को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। सभी ने अपने–अपने ढंग से उनकी परिभाषाएँ दी हैं

12.2 उद्देश्य :

(1) भाषा विज्ञान की उपयोगिता की जानकारी।

(2) भाषा विज्ञान का अल्प विज्ञान के साथ सम्बध।

(3) समान विज्ञान की जानकारी।

12.3 भाषा विज्ञान की उपयोगिता एवं परिभाषा

डॉ. श्यामसुन्दर दास लिखते हैं ''भाषा–विज्ञान उस शास्त्र को कहते हैं जिसमें भाषा–मात्र के भिन्न–भिन्न अंगों और स्वरूपों का विवेचन तथा निरूपण किया जाता है। ''डॉ. भोलानाथ वारी लिखते हैं–'जिस विज्ञान के अन्तर्गत ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन के सहारे भाषा की उत्पत्ति, गठन एवं विकास आदि सम्यक् व्याख्या करते हुए इन सभी के विषय में सिद्धान्तों का निर्धारण हो, उसे भाषा–विज्ञान कहते हैं।

डॉ. देवेन्द्र नाथ ने स्वीकार किया है, 'भाषा का विशिष्ट ज्ञान ही भाषा विज्ञान कहलाता है।' संक्षेप में हम कह सकते हैं कि **''भाषा विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा और उसके विभिन्न तत्वों का वैज्ञानिक आधार पर साङ्गोपांग अध्ययन किया जाता है।''**

साहित्य क्या है? इसके बारे में भिन्न–भिन्न विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। संस्कृत प्राचार्य भामह ने शब्द और अर्थ के साहचर्य भाव (साहित्य) कहा है। (शब्दार्थो सहितौ काव्यम्) पंडितराज जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाले शब्द को काव्य कहा है **(रमण यथार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्)** इस सन्दर्भ में डॉ. नागेंद्र द्वारा दी गई परिभाषा काफी स्टीक लगती है। वे लिखते हैं ष्मैं ही कविता हूं। इ प्रकार पाश्चात्य विद्वान और न्यूनतम शास्त्रीय। प्राचीन काल का काव्य आधुनिक में व्यापक अर्थ में साहित्य शब्द से अधिहित होने लगा है। उद्घोषणा, ई प्रकृति अर्थ में केवल कविता साहित्य के स्वरूप में समाज हित की व्यापक भावना के साथ उपन्यास, कहानी, कविता, निन आलोचना, न एकांत, एकांकी, संस्मरण, रेखाचित्र आदि है, फिर भी कल्पना में समाविष्ट मिश्रण होता है। इतिहास, भूगोल, विज्ञान ज्ञान आदि विषयों से पृथक्करण करता है। काल्पनिक एक ऐसा तत्व है जो नीरस और विषयों को भी रोचक शैली में प्रस्तुत करता है। इस दृष्टि से जब हम साहित्य की तुलना भाषा विज्ञान से करते हैं तो उसमें बहुत बड़ा अंतर दिखाई देता है लेकिन हमे इस बात का ध्यान रखना होगा कि साहित्यिक भाषा को अध्ययन सरल होते हुए भी बहु आयामी है। वर्तमान काल के साहित्यकारों की भाषा का अध्ययन तो सरलतापूर्वक किया जा सकता है लेकिन मध्यकालीन और आदिकालीन साहित्यकारों साहित्य को आधार बनाकर उनकी भाषा का अध्ययन भी संभव है। इस संदर्भ में ***डॉ. नरेश मिश्र लिखते हैं कि ''साहित्यिक भाषा का व्याकरण सम्मत होना अनिवार्य है। इसलिए भाषा विज्ञान के अनुसार उसका स्वरूप होना आवश्यक होता है। साहित्य की प्रत्येक विधा की भाषा का अपना स्वरूप होता है।'' काव्य भाषा में गद्यभाषा के सामान्य नियमों की अनुपालन नहीं होता अर्थात गद्य में भाषा के सामान्य नियमों का अपेक्षाकृत दृढ़ता से पालन करना होता है। तो काव्य में विचलन की क्षमता होती है।''***

साहित्य के अध्ययन में भाषा विज्ञान की निम्नलिखित उपयोगिताएं हैं –

● **भाषा विज्ञान और साहित्य**– साहित्य में भाषा का स्थायी रूप देखा जा सकता है। हर साहित्य के ज्ञान से ही किसी भाषा के यथार्थ रूप को जान सकते हैं। इसलिए साहित्य भाषा विज्ञान के अध्ययन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आधार है। इसके साथ-साथ साहित्य ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक दृष्टि से किसी भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए आवश्यक सामग्री जुटाता है। साहित्य द्वारा ही हम यह जान सकते हैं कि भाषा में कब और कैसे परिवर्तन हुआ और उस भाषा विशेष का विकास क्रम क्या है? उदाहरण के रूप में वैदिक भाषा से संस्कृत में, संस्कृत से पाली में, पाली से विभिन्न प्राकृतों में, प्राकृतों से अपभ्रंशों में और अपभ्रंश भाषाओं से विकसित वर्तमान खड़ी बोली में जो ध्वनिगत, रूपगत और अर्थगत परिवर्तन हुए हैं उनके विकास का पूर्ण ज्ञान भारतीय साहित्य से ही प्राप्त होता है। कारण यह है कि हम विभिन्न भाषाओं के साहित्यों के आधार पर ही उनका तुलनात्मक अध्ययन कर सकते है। साहित्य से ध्वनियों के परिवर्तन को समझने में हमें सहायता प्राप्त होती है। यही नहीं साहित्य के आधार पर ही हम अर्थ परिवर्तन के विभिन्न कारणों और दिशाओं को जान सकते है। अतः यह कहना अनुचित नहीं होगा कि साहित्य के अध्ययन में भाषा-विज्ञान काफी उपयोगी है। लिपि की खोज के बाद ही मानव ने अपने मन के सुन्दर भावों, प्राकृतिक दृश्यों आदि का वर्णन जिस भाषा में किया, वह साहित्य कहलाया। भारत का प्राचीनतम साहित्य आज भी वेदों में सुरक्षित है। संभवतः उस समय लिखित भाषा नहीं- थी। तत्पश्चात् वैदिक संस्कृत में परिवर्तन हुआ और आगे चलकर अनेक भाषाओं का विकास हुआ। परिणाम यह हुआ कि कुछ प्राचीन भाषाओं का साहित्य लुप्त हो चुका है, क्योंकि वे भाषाएँ ही लुप्त हो चुकी हैं परंतु जब से भाषा-विज्ञान अस्तित्व में आया तब से अज्ञात शब्दों और ध्वनियों को भी पढ़ने का प्रयास किया गया। फलस्वरूप लुप्त भाषाओं की भी असंख्य विशेषताएं उद्घाटित होकर सामने आने लगीं। भाषा विज्ञान की स्वनविज्ञज्ञन, शब्द विज्ञान, रूप विज्ञान, अर्थ विज्ञान, लिपि विज्ञान आदि विभिन्न शाखाएं हैं इन्हें हम भाषा विज्ञान के अंग भी कहते हैं। साहित्य अध्ययन में ये सभी अंग हमारे लिए उपयोगी हैं।

● **साहित्य-अध्ययन में ध्वनि विज्ञान की उपयोगिता**- भाषा विज्ञान के इस अंग द्वारा एक भाषा अथवा अनेक भाषाओं की ध्वनियों का ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। साहित्य में प्रयुक्त भाषा को विभिन्न ध्वनियों, ध्वनि गुणों, उनकी सार्थकता, ध्वनियों में होने वाले परिवर्तनों, उनके कारणों तथा नियमों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। साहित्य में केवल जीवित का ही प्रयोग होता है। इसका अर्थ यह है कि हिन्दी में जिस साहित्य की रचना हो रही है, भविष्य को वह प्राचीन साहित्य ही कहा जाएगा। जिसे हम आज प्राचीन साहित्य कहते हैं, एक समय वह आधुनिक है साहित्य कहलाता था। परन्तु जब कोई भाषा लुप्त हो जाती है अथवा उसमें परिवर्तन उत्पन्न हो जाता है तो उसे पढ़ना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में हम ध्वनि-विज्ञान (स्वनविज्ञान) की शरण ग्रहण करते हैं। इस सन्दर्भ में वैदिक साहित्य की भाषा (वैदिक संस्कृत) में ऋ, ॠ और लु ये तीन मूल स्वर थे। आज वैदिक साहित्य का अध्ययन करने वाले लोग बड़ी अल्प मात्रा में हैं। अतः यदि कोई व्यक्ति वैदिक साहित्य का अध्ययन करना चाहता है, उसके मन्त्रों के मूल अर्थों को जानना चाहता के तो उस व्यक्ति को ध्वनि विज्ञान की सहायता लेनी पड़ेगी। इसी प्रकार से लौकिक संस्कृत का ज्ञाता भी ध्वनि विज्ञान के द्वारा कालिदास, भवभूति, बाणभट्ट आदि की रचनाओं का सही अध्ययन कर सकता है। उदाहरण के रूप में, लौकिक संस्कृत में दो स्वरों के मध्य जिस ध्वनि का प्रयोग होता था, वही वैदिक संस्कृत की 'ल' ध्वनि है। इस ध्वनि में 'ढ' के साथ 'ह' आने पर वैदिक संस्कृत में 'लूह' लिखा गया। यथा 'इंडे' 'ईल'। इसी प्रकार वैदिक संस्कृत में प्लुत स्वर के लिए ङ् अंक का प्रयोग होता रहा है, लेकिन आधुनिक हिन्दी भाषा में अथवा लौकिक संस्कृत में ये ध्वनियाँ लुप्त हो गई हैं। हम वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत तथा आधुनिक साहित्यिक भाषाओं को छोड़कर यदि विदेशी भाषाओं के साहित्य का भी समुचित अध्ययन करें तो उसके लिए भी हमें ध्वनि-विज्ञान की सहायता लेनी पड़ेगी, लेकिन यहाँ पर इस तथ्य पर प्रकाश डालना आवश्यक होगा कि जो भाषा पूर्णतया लुप्त हो चुकी है, उसके साहित्य का अध्ययन करने में भाषाविज्ञान असमर्थ दिखाई देती है। फिर भी इतना निश्चित है कि विश्व के प्राचीन साहित्य, विदेशी भाषाओं के साहित्य तथा आधुनिक साहित्य के अध्ययन में भाषा विज्ञान की ध्वनि विज्ञान शाखा अत्यधिक उपयोगी है।

● **साहित्य अध्ययन में शब्द-विज्ञान की उपयोगिता**- शब्द भाषा की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण इकाई है। अतः शब्द विज्ञान भाषा विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। शब्द निरर्थक ध्वनियों का एक समूह होता है तथा स्वयं सार्थक होता है। शब्द विज्ञान, भाषा विज्ञान के अध्ययन में बहुत उपयोगी है। शब्द विज्ञान से किसी भी भाषा के साहित्य में प्रयुक्त होने वाले शब्दों की उत्पत्ति, उनमें आगम, लोप, परिवर्तन तथा शब्दों के अर्थ भी स्पष्ट हो जाते हैं जैसे-यदि हमें प्राकृत साहित्य में प्रयुक्त 'उ अअ' शब्द के अर्थ को जानना हो तो हमें पता चलेगा कि संस्कृत का 'उदर' शब्द ही प्राकृत में 'उ अअ' बन गया है। यदि हम आधुनिक साहित्य में प्रयुक्त हिन्दी भाषा के शब्दों को ही लें, तो हमें पता चलता है कि मूलतः रेंगने वाले जन्तुओं, छिपकली, केंचुआ, सांप आदि के लिए 'सर्प' शब्द का प्रयोग होता था। यह शब्द संस्कृत की 'सूप' धातु से बना है जिसका अर्थ है-रेंगना, लेकिन यह शब्द अब केवल 'सांप' के लिए ही प्रयुक्त होने लगा है। उधर संस्कृत में तिल से निकलने वाले तरल पदार्थ को 'तेल', कहते थे। परन्तु आज इस शब्द के अर्थ का विस्तार हो गया है। यहाँ तक कि सरसों, सोयाबीन, नारियल, नीम, मछली, जैतून आदि से निकलने वाले तरल पदार्थ को भी 'तेल' कहा जाता है।

शब्द विज्ञान की सहायता से ही हमें पता चला है कि लौकिक संस्कृत में द्रविड़ तथा फारसी भाषाओं के अनेक शब्द स्थान प्राप्त कर गए थे। यही नहीं, लौकिक संस्कृत ईरानी, अरबी और यूनानी। भाषाओं के शब्दों को भी अपना रहा था। वस्तुतः शब्द विज्ञान की सहायता से ही प्राचीन और आधुनिक भाषाओं के शब्दों, उनके अर्धपरिवर्तन आदि के बारे में हमें पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है। आज हिन्दी उपसर्ग और प्रत्यय के जुड़ने से असंख्य नवीन शब्दों का निर्माण हो रहा है और ये शब्द साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। आधुनिक हिन्दी भाषा के असंख्य शब्दों को पढ़ने से पता चलता है कि भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त असंख्य शब्द अंग्रेजी, जर्मन, इटैलियन आदि भाषाओं में भी प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण के रूप में संस्कृत में एक शब्द है 'कपोतः' जिसका अर्थ है कबूतर। इटेलियन भाषा में यह शब्द 'कपोते' के रूप में प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार अनेक संख्यावाची शब्द अंग्रेजी, जर्मन आदि में ज्यों-के-त्यों हैं जैसे त्रि (Three) (श्री), पञ्च - (five) (फाइव), षष्ट (six) (सिक्स), सप्त (seven) (सेवेन) आदि! इन शब्दों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय आर्य भाषाओं तथा यूरोप की कुछ भाषाओं में गहरा सम्बन्ध है। इसी अध्ययन के आधार पर ही भारोपीय भाषा-परिवार की परिकल्पना की गई है जिसमें भारत की वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत आदि के अतिरिक्त कुछ यूरोप की भाषाएँ भी सम्मिलित हैं। शब्द विज्ञान के आधार पर ही हम वैदिक संस्कृत साहित्य से लौकिक संस्कृत आदि के अतिरिक्त कुछ यूरोप की भाषाएं भी सम्मिलित हैं। शब्द विज्ञान के आधार पर ही हम वैदिक संस्कृत साहित्य से लौकिक संस्कृत साहित्य की और लौकिक संस्कृत साहित्य को पाली, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के साहित्य से अलग करते हैं। अतः यह स्वतः सिद्ध है कि साहित्य के अध्ययन के लिए शब्द विज्ञान अत्यधिक उपयोगी है।

● **साहित्य-अध्ययन में रूप विज्ञान की उपयोगिता**- रूप-विज्ञान भाषा विज्ञान की एक अन्य महत्त्वपूर्ण शाखा है। भाषा की लघुतम सार्थक इकाई को रूपिम कहते हैं। रूप को हम पद भी कहते हैं। जब कोई शब्द वाक्य में प्रयुक्त होने की योग्यता धारण कर लेता है, तब उसे हम पद अथवा रूप कहते हैं। रूपों को प्रायः व्याकरणिक नियमों में बाँधा जाता है। अतः पद का अध्ययन करने वाली शाखा रूप विज्ञान है। किसी भी प्राचीन मृत, लुप्त, आधुनिक अथवा विदेशी भाषा के साहित्य का अध्ययन करने के लिए रूप विज्ञान अत्यधिक उपयोगी है। प्रायः साहित्यकार साहित्यिक रचना लिखते समय व्याकरणिक नियमों का उल्लंघन कर जाता है। कारण यह है कि उसे तो हमेशा भाव, छन्द और मात्रा आदि को ध्यान में रखकर वाक्य-रचना करनी होती है। यही कारण है कि उसके वाक्य में पदों का आगे-पीछे प्रयोग होता रहता है। एक उदाहरण देखिए

"हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह।

एक पुरुष भीगे नयनों से,

देख रहा था प्रलय प्रवाह॥'' -जयशंकर प्रसाद कृत **''कामायनी''**

ऐसी दशा में विशेषकर प्राचीन अथवा विदेशी भाषा को समझने में काफी कठिनाई होती है। ऐसी स्थिति में हम रूप विज्ञान की सहायता के द्वारा प्राचीन भाषाओं का सम्यक् अध्ययन कर सकते हैं। उदाहरण के रूप में, वैदिक संस्कृत के साहित्य को पढ़ने में लकारों के प्रयोग के कारण बड़ी कठिनाई सामने आती है। अत: आज जब भी कोई विदेशी अथवा भारतीय छात्र वैदिक साहित्य का अध्ययन करने लगता है तो उसके समक्ष इस भाषा के क्रियारूपों और शब्दरूपों को समझने की समस्या खड़ी हो जाती है। तब उसे भाषा-विज्ञान की शाखा रूपविज्ञान की शरण ग्रहण करनी पड़ती है। जब भी किसी भाषा में परिवर्तन होता है तो सबसे पहले उसके क्रियारूपों और शब्दरूपों में परिवर्तन आता है। रूप विज्ञान की शाखा के अन्तर्गत हम वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, खड़ी बोली आदि सभी भाषाओं के शब्द रूपों का अध्ययन करते हैं। इस तथ्य से हम सभी अवगत हैं कि इस भाषा में प्रभूत मात्रा में साहित्य का निर्माण हुआ है। विशेषकर, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के शब्दरूपों का अध्ययन करना बड़ा कठिन है। इसमें रूप विज्ञान ही हमारी सहायता कर सकता है। किसी भी भाषा का अध्ययन करते समय हम पहले यह जानने का प्रयास करते हैं कि उनके रूप-परिवर्तन के नियम कौन-से हैं, उनमें कैसे परिवर्तन हुआ और किस प्रकार उसने उस भाषा के रूपों को प्रभावित किया।

• **साहित्य अध्ययन में वाक्य विज्ञान की उपयोगिता**- भाषा का मुख्य कार्य अभिव्यक्ति है और भाव की पूर्ण अभिव्यक्ति वाक्य के द्वारा ही होती है। वाक्य के बिना हम अपने भावों अथवा विचारों को अभिव्यक्त नहीं कर सकते। वाक्य को भाषा की सार्थक इकाई कहा गया है। फिर भी विद्वानों ने वाक्य के बारे में अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं। आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा कहते हैं- "भाषा की पूर्णतम सार्थक इकाई वाक्य है। यहाँ डॉ. भोलानाथ तिवारी द्वारा दी गई परिभाषा का उल्लेख करना आवश्यक होगा **''वाक्य भाषा की सहज इकाई है, जिसमें एक या अधिक शब्द हों, जो अर्थ की दृष्टि से पूर्ण या अपूर्ण हों या अपूर्ण व्याकरणिक दृष्टि से अपने विशिष्ट संदर्भ में अवश्य पूर्ण होती है साथ ही परोक्ष रूप से कम-से-कम एक क्रिया का भाव अवश्य होता है।''** यद्यपि डॉ. भोलानाथ तिवारी ने वाक्य के लिए अप्रत्यक्ष रूप से व्याकरणिक नियमों की चर्चा की है, लेकिन हमें यह ध्यान रखना होगा कि साहित्य व्याकरण के नियमों का पूर्णतया पालन नहीं करता। उसे तो अपने मनोगत भावों, विचारों, अनुभूतियों तथा कल्पना के आधार पर वाक्य का प्रयोग करना होता है। यही कारण है कि किसी प्राचीन या आधुनिक भाषा का अध्ययन करने में हमें कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इस दृष्टि से भाषा विज्ञान की शाखा वाक्य विज्ञान हमारे लिए उपयोगी सिद्ध होती है। उदाहरण के रूप में संस्कृत एक क्लिष्ट योगात्मक भाषा है। अत: उसकी वाक्य रचना भी क्लिष्ट है। फिर भी वाक्य विज्ञान को सहायता से हम लौकिक संस्कृत भाषा के साहित्य का समुचित अध्ययन कर सकते हैं।

आधुनिक हिन्दी भाषा में उच्च स्तर पर परिवर्तन और परिवर्धन हो रहा है। विदेशी भाषाओं के अनेक शब्द और वाक्य हिन्दी में घी-खिचड़ी के समान मिल चुके हैं। दूसरी ओर, आंचलिकता के समावेश के कारण नवीन प्रकार का साहित्य हमारे समक्ष उपस्थित हो रहा है। अनेक बार तो विदेशी अथवा आंचलिक भाषाओं के पूरे वाक्य का साहित्यकार प्रयोग करने लगते हैं। ऐसी स्थिति में वाक्यविज्ञान के द्वारा ही हम नवीन साहित्यिक प्रयोगों का अध्ययन करने में समर्थ हो जाते हैं। अत: यह स्वत: स्पष्ट हो जाता है कि वाक्य विज्ञान साहित्य के अध्ययन में काफी उपयोगी है।

• **साहित्य के अध्ययन में अर्थविज्ञान की उपयोगिता**- अर्थ-विज्ञान, भाषा-विज्ञान की एक अन्य महत्त्वपूर्ण शाखा है। अर्थ, भाषा की आत्मा है। संस्कृत के महान् कवि कालिदास ने भाषा और उसके अर्थ की तुलना शिव-पार्वती से की है। भाषा और उसके अर्थ से सम्बन्धित वैज्ञानिक अध्ययन को हम अर्थ विज्ञान कहते हैं। इसके अन्तर्गत अर्थ बोध, अर्थ का स्वरूप, शब्दार्थ का सम्बन्ध, अर्थ परिवर्तन की दिशाओं और अर्थ परिवर्तन के कारणों पर विचार किया जाता है। हम इस तथ्य से पूर्णतया परिचित हैं कि हजारों वर्ष पहले अनेक भाषाएँ लिखित अथवा मौखिक रूप में

प्रचलित थीं। भौगोलिक वातावरण, सादृश्य, अज्ञानता, पुनरावृत्ति आदि के कारण उन भाषाओं के शब्दों में अर्थ परिवर्तन देखा जा सकता है। इसी अर्थ परिवर्तन के कारण हम साहित्य में प्रयुक्त प्राचीन शब्दों को समझ नहीं पाते। इस सन्दर्भ में हम एक उदाहरण देख सकते हैं। वैदिक संस्कृत में 'असुर' शब्द का प्रयोग देवता के लिए होता रहा। लेकिन आगे चलकर लौकिक संस्कृत में यह शब्द 'राक्षस' के लिए प्रयुक्त होने लगा। इसी प्रकार 'कुशल' शब्द का प्रयोग उस व्यक्ति के लिए होता था जो कुशा को हाथ में खरोंच खाये बिना उखाड़कर लाता था। परन्तु आगे चलकर प्रवीण व्यक्ति के लिए इस शब्द का प्रयोग होने लगा। आज तो कुशल राजनीतिज्ञ, कुशल खिलाड़ी, कुशल कलाकार आदि शब्दों का प्रयोग होने लगा है। इस प्रकार अर्थ-विस्तार, अर्थादेश, अर्थोत्कर्ष, अर्थापकर्ष, मूर्तिकरण, अमूर्तिकरण आदि के द्वारा अर्थ परिवर्तन का अध्ययन करके का अध्ययन किया जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि प्राचीन तथा विदेशी भाषा के साहित्य के अध्ययन के लिए अर्थ विज्ञान का अत्यधिक उपयोग होता है।

• **साहित्य के अध्ययन में लिपि-विज्ञान का उपयोग**- यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि प्राचीन काल से ही असंख्य लिपियों का प्रचलन रहा है। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा से प्राप्त कुछ सामग्री द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि उस समय चित्रलिपि का प्रचलन था। बाद में अनेक ऐसी लिपियों का भी विकास हुआ जो आज लुप्त हो चुकी है। यही कारण है कि ऐसी अनेक भाषाएँ खत्म हो चुकी हैं जिनकी लिपियों नही थीं। भाषाओं के मौखिक और लिखित दोनों प्रकार के रूप प्रचलित रहे हैं। ऐसी भाषाओं की लिपियों, ध्वनियों, रूपिमों, शब्दों आदि को जानना अत्यधिक कठिन है। फिर भी भाषा विज्ञान की लिपि विज्ञान शाखा द्वारा हम कुछ भाषाओं और उनके साहित्य का अध्ययन करने में समर्थ हो सकते हैं। भाषा विज्ञान की सहायता से हम असंख्य साहित्यिक रचनाओं की प्रामाणिकता के साथ-साथ उनका काल-निर्धारण भी कर सकते है, लेकिन इस सन्दर्भ में हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि लिपि विज्ञान की भी अपनी कुछ सीमाएँ हैं। केवल मात्र लिपि विज्ञान द्वारा भाषा के साहित्य का अध्ययन सम्भव नहीं है। तदर्थ हमें भाषा विज्ञान की अन्य शाखाओं की सहायता भी लेनी होगी, तभी हम साहित्य के अध्ययन में भाषा विज्ञान का समुचित उपयोग कर सकेंगे।. संक्षेप में हम कह सकते हैं कि साहित्य और भाषा विज्ञान का गहरा सम्बन्ध है। दोनों में भाषा का ही अध्ययन होता है। भले ही भाषा विज्ञान में भाषा विशेष का ध्वनियों, रूपिमों, शब्दों आदि का अध्ययन किया जाता हो, लेकिन भाषा के अर्थ को समझने के लिए साहित्य की शरण ग्रहण करनी पड़ती है। अतः यदि साहित्य के अध्ययन में भाषा विज्ञान का समुचित प्रयोग किया जाए तो साहित्य और साहित्यकार सम्बन्धी हमारा अध्ययन काफी सीमा तक प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक होगा। विशेषकर, आधुनिक युग में शैली विज्ञान का साहित्य में जो साहित्यिक रचनाओं का मूल्यांकन किया जाता है, उसमें भाषा विज्ञान और उसकी विभिन्न शाखाओं का समुचित उपयोग किया जा रहा है।

• **ज्ञान-पिपासा की शान्तिः**-भाषा-विज्ञान हमारी भाषा विषयक जिज्ञासाओं को शान्त करता है। ज्ञान की वृद्धि मानवमात्र का कर्तव्य है। भाषा हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग है। उसके विषय में विस्तृत जानकारी प्रत्येक मानव के लिए अनिवार्य है। अतएव आचार्य पतंजलि ने षडंग वेद के अध्ययन की अनिवार्यता पर बल देते हुए कहा है कि ब्राह्मण को निष्काम भाव से षडंग वेद का अध्ययन करना चाहिए।

ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षड्गो वेदोऽध्ये यो ज्ञेयश्च। - महाभाष्य आ्निक।

यह ज्ञान-पिंपासा की शांति हमे बौद्धिक और मानसिक शांति प्रदान करती है।

• **भाषा के परिष्कृत रूप का ज्ञान :**- भाषा-विज्ञान के द्वारा भाषा का सूक्ष्मतम अध्ययन किया जाता है। भाषा हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग है। भाषा विज्ञान के द्वारा ध्वनियों, वणों, प्रकृति, प्रत्यय और अर्थ का वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है। जिससे शुद्ध अर्थ का बोध होता है; उच्चारण की शुद्धता आती है और भाषा के परिष्कृत रूप के साथ वाग्ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। एक प्राचीन श्रुति का यह कथन सत्य है कि:-(महाभाग्य आह्कि में कैयट द्वारा उदघृत)

एकः शब्दः सम्यग्ज्ञानः सुप्रयुक्तः स्वर्गे ल ओके कामपुग भवति। - महाभाष्य

• **भाषा-विज्ञान से वैज्ञानिक अध्ययन की ओर प्रवृत्ति :**– भाषा–विज्ञान के द्वारा भाषा के सूक्ष्म अध्ययन की ओर मानव की प्रवृत्ति ही नहीं होती, अपितु उसका दृष्टिकोण विज्ञानमूलक हो जाता है। वह प्रत्येक वस्तु के तत्त्वदर्शन और तत्त्वज्ञान की ओर अग्रसर होता है। किसी भी विज्ञान या शास्त्र का तत्त्वदर्शन मानव का लक्ष्य है।

• **वेदार्थ-ज्ञान में सहायक :**- वेदों के वास्तविक अर्थ के ज्ञान में भाषा–विज्ञान और तुलनात्मक अध्ययन ने विशेष योगदान किया है। लैटिन, ग्रीक, अवेस्ता आदि भाषाओं के अध्ययन ने अनेक वैदिक शब्दों का अर्थ स्पष्ट किया है।

• **प्राचीन संस्कृति और सभ्यता का ज्ञान :**– प्राचीन काल की संस्कृति और सभ्यता के ज्ञान में भाषा विज्ञान का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भाषाशास्त्री के लिए भाषा के प्रत्येक शब्द बोलते हुए प्राणी हैं और वे अपना परिचय स्वयं देते हैं। इन शब्दों के सूक्ष्म अध्ययन से उस समय की संस्कृति और सभ्यता का ज्ञान होता है। प्रागैतिहासिक काल की संस्कृति के ज्ञान का साधन एकमात्र भाषा–विज्ञान है। आर्य जाति, द्रविड़ जाति, प्राचीन मिश्र और असीरिया की जातियों की संस्कृति को बोध भाषा विज्ञान के द्वारा ही हुआ है।

• **विविध भाषा-ज्ञान :**- भाषा–विज्ञान की सहायता से अनेक भाषाओं का ज्ञान सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। इस विषय में स्वनिम–विज्ञान हमारा विशेष सहायक होता है।

• **विश्व-बन्धुरव-भावना का प्रेरक :**- भाषा–विज्ञान विश्व को प्रमुख भाषाओं का ज्ञान करा कर हमारे अन्दर व्याप्त संकीर्ण भावना को दूर करता है। अनेक भाषाओं के साथ सम्बन्ध का ज्ञान होते ही उनसे आत्मीयता की अनुभूति होती है। जैसे, यह ज्ञात होते ही कि संस्कृत उसी परिवार की भाषा है, जिस परिवार के अंग लैटिन, ग्रीक, अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, रूसी, अवेस्ता, फारसी आदि भाषाएँ हैं, हमारी आत्मीयता इन भाषाओं के साथ हो जाती है और हम इन्हें अपने परिवार का अंग समझने लगते हैं। इस प्रकार यह विश्व–बन्धुत्व की भावना फैलती जाती है।

• **साहित्य-ज्ञान का सहायक :**-भाषा–विज्ञान भाषा के सूक्ष्म अर्थों का विश्लेषण करता है। इसका अर्थ–विज्ञान अंग अर्थ–विकास की कहानी प्रस्तुत करता है। इससे न केवल शब्दों का अर्थ ही ज्ञात होता है, अपितु उनमें छिपी हुई काव्य की आत्मा 'ध्वनि' भी प्रस्फुटित होती है।

• **व्याकरण-दर्शन :**- भाषा–विज्ञान व्याकरण का व्याकरण है। व्याकरण के नियमों का क्या दार्शनिक आधार है, इसका निरूपण भाषा–विज्ञान करता है। शब्द और अर्थ का सम्बन्ध, प्रकृति और प्रत्यय का मौलिक अर्थ, पद–विभाजन का आधार आदि बातों का विवेचन दार्शनिक दृष्टि से भाषा–विज्ञान करता है।

• **वाक्-चिकित्सा :**- चिकित्सा–शास्त्र की दृष्टि से भाषा–विज्ञान एक आवश्यक अंग माना जाता है। तुतलाना, इकलाना, अशुद्ध उच्चारण, अशुद्ध या अस्पष्ट श्रवण आदि दोषों को दूर करने के लिए पाश्चात्त्य जगत् में वाक्–चिकित्सा को विशेष महत्त्व दिया जा रहा है। भाषा–विज्ञान यह बताने में समर्थ होता है कि किस दोष के कारण अमुक व्यक्ति स्पष्ट बोलने में असमर्थ है तथा किस उपचार से उस रोग का उपशम हो सकता है।

• **संचार-साधनों का उपयोगी सहायक :**– दूर–संचार (Tele-communication) तथा यान्त्रिक प्रतीकात्मक अनुवाद के लिए भाषा–विज्ञान की सहायता की जाती है। भाषा–विज्ञान के संकेतों के द्वारा दूर–संचार–पद्धति के लिए आवश्यक संकेत उपलब्ध होते है।

• **भाषिक यंत्रीकरण में सहायक:**-भाषा विज्ञान भाषा–विषयक यंत्रों के निर्माण में विशेष सहयोगी है। टाइपराइटर, टेलीप्रिंटर, आडियोविजुअल आदि के विकास में विशेष सहयोगी है। भाषा–विज्ञान इनके लिए शुद्ध एवं उपयोगी संकेत चिह्न प्रदान करता है।

• **लिपि-विकास में सहायक :**– भाषा–विज्ञान सांकेतिक लिपि के उन्नयन द्वारा लिपियों में संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन करने में सहायक होता है।

• **विभिन्न शास्त्रों से समन्वय :-** भाषा-विज्ञान का ज्ञान और विज्ञान की अनेक शाखाओं से निकटतम सम्पर्क है। अतः भाषा-विज्ञान का विद्यार्थी व्याकरण, साहित्य, मनोविज्ञान, शरीर-विज्ञान, भूगोल, इतिहास, मनोविज्ञान, भौतिक विज्ञान आदि विषयों से सामान्यतया स्वतः परिचित हो जाता है।

• **अनुवाद, पाठ-संशोधन, अर्थ-निर्णय आदि में सहायक :-** विभिन्न भाषाओं के ग्रन्थों आदि का अन्य भाषाओं में अनुवाद करने में, प्राचीन ग्रन्थों के पाठ-निर्णय में तथा प्राचीन शब्दों के अर्थ-निर्णय में भाषा-विज्ञान विशेष सहायक सिद्ध होता है।

• **विभिन्न विज्ञानों का जन्मदाता :-** भाषा-विज्ञान के द्वारा ही कई नवीन विज्ञानों की उत्पत्ति हुई है। भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर तुलनात्मक भाषा-विज्ञान का जन्म हुआ है। इसी प्रकार तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर तुलनात्मक देव-विज्ञान, पुराण-विज्ञान, विश्वसंस्कृति-विज्ञान, सृजाति-विज्ञान आदि विज्ञानों का उद्‌भव हुआ है। ये विज्ञान तुलनात्मक पद्धति पर आश्रित है। उपर्युक्त विवेचन से भाषा-विज्ञान की उपयोगिता का अनुमान लगाया जा सकता है।

12.3.1 भाषा-विज्ञान और अन्य शास्त्र

भाषा-विज्ञान का साक्षात् सम्बन्ध भाषा से है। भाषा का सम्बन्ध मानव जाति से है। भाषा मानव-जीवन की प्रवृत्ति और प्रकृति का यथार्थ दर्पण है। भाषा मानव-जीवन का अभिन्न अङ्‌ग है। अतः मानव जीवन से सम्बद्ध विज्ञानों और शास्त्रों से भी भाषा- विज्ञान का घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होता है। जिस प्रकार समाज का एक व्यक्ति अनेक रूपों में अनेक व्यक्तियों से सम्बद्ध होता है, उसी प्रकार भाषा-विज्ञान की अनेक विधाएँ ऐसी हैं, जिससे वह अन्य विज्ञानों से निकटतम सम्पर्क रखता है। भाषा- विज्ञान के तात्त्विक ज्ञान के लिए इन विज्ञानों और शास्त्रों का आश्रय लेना पड़ता है। दूसरी ओर कतिपय तथ्यों के यथार्थ ज्ञान के लिए वे भाषा-विज्ञान का आश्रय लेते हैं। संक्षेप में कतिपय सम्बद्ध प्रमुख विज्ञानों और शास्त्रों का भाषा-विज्ञान से क्या सम्बन्ध है, इसका विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

12.3.2 भाषा-विज्ञान और व्याकरण

भाषा-विज्ञान और व्याकरण में कतिपय समानताएँ हैं और कुछ विषमताएँ हैं।

समानताएँ :-

1. व्याकरण का अर्थ विवेचन और विश्लेषण है। व्याकरण की व्युत्पत्ति है-व्याक्रियान्ते विविच्यन्ते शब्दाः, प्रकृतिप्रत्ययादयो वा, येन तद् व्याकरणम्। इसके द्वारा प्रकृति-प्रत्यय का विश्लेषण किया जाता है। विज्ञान-विज्ञान और भाषा व्याकरण दोनों में विवेचन और विश्लेषण ही प्रमुख तत्त्व हैं।

2. दोनों की भाषा का अध्ययन से साक्षात् संबंध है।

3. दोनों भाषा के सूक्ष्मतम अंश का प्रतिपादन करते हैं।

12.3.3 भाषा-विज्ञान और तर्कशास्त्र

भाषा-विज्ञान और तर्कशास्त्र का बहुत अधिक संबंध न होने पर भी तर्कशास्त्र का उपयोग भाषा-विज्ञान में होता है। तर्कशास्त्र का प्रधान नियम कारण-कार्य-भाव भाषा-विज्ञान की समस्याओं को सुलझाने में सहायक होता है। भाषा में परिवर्तन, अथों में परिवर्तन, वाक्यविन्यास में परिवर्तन आदि के कारण की जिज्ञासा तर्कशास्त्र के आधार पर ही होती है। इसी तर्कशास्त्रीय प्रवृत्ति के कारण भाषा की उत्पत्ति, विकास, ध्वनि-परिवर्तन आदि के कारणों का अनुसंधान किया जाता है। तर्कशास्त्र की अन्वयव्यतिरेक पद्धति भाषा-विज्ञान के लिए भी उतनी ही उपादेय है।

12.3.4 भाषा-विज्ञान और मानव-विज्ञान

भाषा-विज्ञान मानव-विज्ञान से भी सम्बद्ध है। मानव-विज्ञान मानव के विकास का अध्ययन करता है। मानव का सभ्यता, संस्कृति, कला, विज्ञान आदि की दृष्टि से किस प्रकार विकास हुआ, इसका विवेचन करता है। संस्कृतियां,

धार्मिक विश्वास, अंध-विश्वास, परम्पराएँ, धर्म, पर्व आदि का कैसे विकास हुआ और इनमें क्या-क्या परिवर्तन हुए, इसका अध्ययन प्रस्तुत करता है। भाषा मानव की भावाभिव्यक्ति का प्रधान साधन है, अतः विकास के सभी स्तर भाषा के माध्यम से ज्ञात होते हैं। अर्थ-विकास, अर्थ-संकोच और अर्थादेश की प्रक्रिया का ज्ञान मानव-विज्ञान की सहायता से सरलता से होता है। मानव-विज्ञान की सहायता से भाषा के आदिम स्वरूप का पता लगाया जाता है। विविध संस्कृतियाँ भाषा को किस प्रकार प्रभावित करती हैं, इसमें मानव-विज्ञान भाषा-विज्ञान का सहायक है। किस प्रकार अशुभ, अमंगल-वाचक या घृणा-वाचक शब्दों के लिए, शुभ शब्दों का प्रयोग किया जाता है, यह मानव- विज्ञान ही बताता है। यथा-चेचक के लिए 'माता', मृत शरीर के लिए 'मिट्टी', विष्ठा के लिए शौच, टट्टी, दिशा आदि शब्द, अन्धे के लिए सूरदास या प्रज्ञाचक्षु, सर्प के लिए कीड़ा आदि।

इस प्रकार भाषा-विज्ञान मानव-विज्ञान से सम्बद्ध है।

12.3.5 भाषा-विज्ञान और समाज-विज्ञान

भाषा सामाजिक वस्तु है। सामाजिक परिवर्तनों के साथ ही भाषा में भी परिवर्तन और विकास होता है। समाज-विज्ञान में मानव के आचार-विचार, आहार व्यवहार, आदि का विवेचन होता है। भाषा में रीति-रिवाज, शिष्टाचार, आचार विचार और व्यवहार के सैकड़ों शब्द हैं, जिनकी व्याख्या समाज-विज्ञान के ज्ञान से ही सरलता से हो सकती है। समाज विज्ञान की सहायता से ही यह बताया जा सकता है कि कैसे विकास या ह्रास के कारण शब्दों के रूप परिवर्तित हुए और अर्थ-परिवर्तन हुआ। जैसे-उपाध्याय-ओझा या झा, चतुर्वेदी-चोबे, त्रिवेदी-विचारी, द्विवेदी-दूबे, शुक्ल-शुक्ला या सुकुल आदि शब्द मूल रूप में योग्यता-वाचक थे, बाद में जातिसूचक हो गए। किस प्रकार धार्मिक विद्वेष के कारण अशोक का 'देवानां प्रियः', 'देवाना इति च मूखें', मूर्ख-वाचक हो गया। दास, दस्यु, अनार्य, काफिर, फिरंगी आदि शब्दों के पीछे इतिहास भरा हुआ है, जो समाज-विज्ञान से ही जाना जा सकता है। इसी प्रकार काव्यशास्त्र, गणित, यांत्रिकी और सांख्यिकी आदि से भी भाषा-विज्ञान क सम्बन्ध है।

12.3.6 भाषा-विज्ञान और मनोविज्ञान

भाषा-विज्ञान में भाषा का घनिष्ठ संबंध है। भाषा विज्ञान में भाषा का अध्ययन किया जाता है और मनोविज्ञान में मन का। मनोविज्ञान इस बात का विश्लेषण करता है कि मन किस प्रकार गति करता है, किस प्रकार विचार उठते हैं और किस प्रकार अभिव्यक्त होते हैं? भाषा का आधार विचार या भाव है। विचारों की अभिव्यक्ति के लिए ही भाषा का प्रयोग किया जाता है। भाषा के मूल में विचार हैं और विचारों का साधन मन है। अतः मनोविज्ञान का भाषा एवं भाषा-विज्ञान से साक्षात् एवं घनिष्ट सम्बन्ध है।

ध्वनि-विज्ञान और अर्थ-विज्ञान में भी मनोविज्ञान की विशेष आवश्यकता पड़ती है । विचारों के अनुसार जैसी मन की स्थिति होगी, वैसी ही भाषा का उच्चारण होगा। इस प्रकार ध्वनि-विज्ञान में मनोविज्ञान कारण रहता है। अर्थ-परिवर्तन आदि में भी मनोविज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। एक शब्द का अनेकार्थक होना, अमंगल या अशुभ-बोधक शब्दों के अर्थो में अन्तर तथा राग-द्वेष आदि के कारण होने वाले अर्थ-परिवर्तनों का कारण मनोविज्ञान की सहायता से ही सरलता से समझा जा सकता है। इसका विस्तृत विवेचन अर्थ-विज्ञान के अध्याय में किया गया है।

भाषा के परिवर्तन में प्रयन-लाघव, समीकरण, विषमीकरण आदि का आधार मनो-विज्ञान ही है। अर्थज्ञान की प्रक्रिया का पूरा विषय मनोविज्ञान से सम्बद्ध है। मनुष्य क्या समझता है। क्यों समझता है ? प्रत्येक व्यक्ति के समझने में अन्तर क्यों है ? इत्यादि भाषा-विज्ञान में सम्भव विषय मनोविज्ञान के ही विषय हैं।

स्वयं आकलन के प्रश्न

(1) भाषा विज्ञान किसे कहते है ?

(2) भाषा विज्ञान की उपयोगिता लिखें।

12.4 सारांशः

उपयुक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि भाषा विज्ञान भाषा की उत्पति तथा विकास की अध्ययन करता है। भाषा विज्ञान भाषा के साथ-साथ अन्य विज्ञानों के साथ सम्पर्क रखता है जिसमें मनोविज्ञान, समाज विज्ञान आदि प्रमुख है। मानव जीवन में भाषा विज्ञान की विविध क्षेत्रों में उपयोगिता है जिसका उपर्युक्त विवेचन किया गया है।

12.5 कठिन शब्दावली

1. **भाषाविज्ञान** - भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन करना।
2. **व्याकरण** - भाषा को व्यवस्थित करने का साधन।
3. **लिपि** - चिन्ह
4. **परिष्कृत** - संशोधित करना।

12.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

(1) उत्तर- भाषा विज्ञान-से हमारा अभिप्राय: ऐसे विज्ञान से है जो भाषा की उत्पति, विकास क्रम का अध्ययन करता है।

(2) विविध भाषा का ज्ञान, व्याकरण दर्शन।

12.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) भोलानाथ तिवारी - भाषा विज्ञान।

(2) देवेन्द्रनाथ शर्मा - भाषा विज्ञान की भूमिका।

12.8 सात्रिक प्रश्न

(1) भाषा विज्ञान की उपयोगिता लिखिए।

(2) भाषा विज्ञान का अन्य विज्ञान के साथ संबंध का विवेचन करें।

*****

इकाई–13

वाक्य विश्लेषण

संरचना

13.1 भूमिका

13.2 उद्देश्य

13.3 वाक्य विश्लेषण

13.3.1 वाक्य की अवधारणा

13.3.2 अभिहितान्वयवाद

13.3.3 अन्विताभिधानवाद

13.3.4 निकटस्थ अवयव विश्लेषण

13.3.5 वाक्य रचना में परिवर्तन व दिशाएं

स्वयं आकलन प्रश्न

13.4 सारांश

13.5 कठिन शब्दवली

13.6 स्वयं आंकलन प्रश्नों के उत्तर

13.7 संदर्भित पुस्तकें

13.8 सात्रिक प्रश्न

13.1 भूमिका

पिछली इकाई में हमने स्वन प्रक्रिया, स्वन गुण, स्वनिमिक विश्लेषण, रूपिम की अवधारणा, स्वनिम विज्ञान के स्वरूप का अध्ययन किया। वहीं प्रस्तुत इकाई में हम वाक्य विज्ञान के अंतर्गत वाक्य के भेद वाक्य विश्लेषण की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

13.2 उद्देश्य - इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि

1. वाक्य विज्ञान क्या है ?
2. वाक्य के भेद क्या हैं ?
3. वाक्य विश्लेषण किस प्रकार किया जाता है ?
4. गहन संरचना और बाह्य संरचना क्या है ?

13.3 वाक्य विश्लेषण

वाक्य भाषा की एक महत्वपूर्ण इकाई है। भाषा की सार्थकता वाक्य पर अत्यधिक रूप से निर्भर करती है। भाषा की गरिमा तथा अर्थवत्ता के निर्माण में वाक्य रचनात्मक भूमिका का निर्वाह करते हैं। भाषा विज्ञान की यह इकाई जो वाक्य को आधार बनाकर 'वाक्य' का अध्ययन विश्लेषण कहलाती हैं। इस विज्ञान के आधार पर 'वाक्य विन्यास' का अध्ययन निम्न दृष्टियों से किया जा सकता है।

'वाक्य विज्ञान' में वाक्य-गठन या 'पद' से वाक्य बनाने की प्रक्रिया वर्णनात्मक तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन होता है। वर्णनात्मक वाक्यविज्ञान में किसी भाषा में किसी एक काल में प्रचलित वाक्य-गठन का अध्ययन किया जाता है। तुलनात्मक में इसी प्रकार दो या अधिक भाषाओं का वाक्य गठन की दृष्टि से किये गए अध्ययन की तुलना करके साम्य और वैषम्य देखा जाता है। ऐतिहासिक वाक्यविज्ञान में एक भाषा के विभिन्न कालों का अध्ययन कर वाक्य गठन की दृष्टि से उसका इतिहास प्रस्तुत किया जाता है। वाक्य की अवधारणा को आधार बनाकर 'वाक्य' का अध्ययन-विश्लेषण करती है, वाक्य विज्ञान कहलाती है। इस विज्ञान के आधार पर 'वाक्य-विन्यास' का अध्ययन निम्न दृष्टियों से किया जा सकता है।

'वाक्य विज्ञान' में वाक्य-गठन या 'पद' से वाक्य बनाने की प्रक्रिया वर्णनात्मक, तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन होता है। वर्णनात्मक वाक्यविज्ञान में किसी भाषा में किसी एक काल में प्रचलित वाक्य-गठन का अध्ययन किया जाता है। तुलनात्मक में इसी प्रकार दो या अधिक भाषाओं का वाक्य गठन की दृष्टि से किये गये अध्ययन की तुलना करके साम्य और वैषम्य देखा जाता है। ऐतिहासिक वाक्यविज्ञान में एक भाषा के विभिन्न कालों का अध्ययन कर वाक्य गठन की दृष्टि से उसका इतिहास प्रस्तुत किया जाता है।

13.3.1 वाक्य की अवधारणा

वाक्य को प्रायः लोग सार्थक शब्दों का समूह मानते हैं, जो भाव को व्यक्त करने की दृष्टि से अपने आप में पूर्ण हो। कोशों तथा व्याकरणों में भी वाक्य की इसी प्रकार की परिभाषा मिलती है। यूरोप में इस दृष्टि से प्रथम प्रयास थैक्स (लगभग पहली सदी ई. पूर्व) का है। भारत में पंतजलि (150 ई. पू. के लगभग) का नाम लिया जा सकता है। ये दोनों ही आचार्य 'पूर्ण अर्थ' की प्रतीति कराने वाले शब्द-समूह को 'वाक्य' मानते हैं। यों समझने-समझाने के लिये ये परिभाषाएं ठीक हैं। किन्तु तत्त्वतः इन्हें ठीक नहीं कहा जा सकता। थोड़ा ध्यान दें तो यह स्पष्ट हुए बिना नहीं रहेगा कि भाषा में या बोलने में वाक्य ही प्रधान है। वाक्य भाषा की इकाई है। व्याकरणवेत्ताओं ने कृत्रिम रूप से वाक्य को तोड़कर शब्दों को अलग-अलग कर दिया है। हमारा सोचना, समझना, बोलना या किसी भाव को हृदयंगम करना सब कुछ 'वाक्य' में ही होता है। ऐसी स्थिति में 'वाक्य पदों या शब्दों का समूह है' कहने की अपेक्षा पद या शब्द वाक्यों के कृत्रिम खंड हैं। कहना अधिक समीचीन है।

'पद' और 'वाक्य' को लेकर हमारे यहाँ मीमांसकों में विवाद रहा है। अन्विताभिधानवाद सिद्धान्त के अनुसार वाक्य की ही सार्थक सत्ता मूल है, और 'पद' उसके तोड़े गए अंश हैं, किन्तु अभिहितान्वयवाद के अनुसार 'पद' की ही सार्थक सत्ता है, और वाक्य पदों का जोड़ा हुआ रूप है। भर्तृहरि ने भी अपने 'वाक्यपद्वीय (ब्रह्मकांड, 73) में वाक्य की सत्ता को ही वास्तविक कहा है। स्पष्ट ही अन्विता-विधानवाद या भर्तृहरि का मत ही आज के भाषाविज्ञान-जगत् को मान्य है और वाक्य भाषा की न्यूनतम पूर्ण सार्थक सहज इकाई है।

ऊपर वाक्य की जो परिभाषाएं दी गई हैं, उनमें मूलतः दो बातें हैं

1. वाक्य शब्दों का समूह है।

2 वाक्य पूर्ण होता है।

'वाक्य शब्दों का समूह है' पर एक दृष्टि से ऊपर विचार किया जा चुका है, और यह कहा जा चुका है कि वाक्य का शब्द-रूप में विभाजन स्वाभाविक नहीं है। आज भी संसार में ऐसी भाषायें हैं जिनमें वाक्य का शब्द-रूप में कृत्रिम विभाजन का नहीं हुआ है। ऐसी भाषाओं में वाक्य हैं, शब्द नहीं।

वाक्य शब्दों का समूह है पर एक और दृष्टि से भी विचार किया जा सकता है। 'वाक्य शब्दों का समूह है' का अर्थ है कि वाक्य एक से अधिक शब्दों का होता है, पर यह बात भी पूर्णतः ठीक नहीं है। एक शब्द के भी वाक्य होते हैं। छोटा बच्चा प्रातः जब मां से 'बिछकुट' (बिस्कुट) कहता है तो इस एक शब्द के वाक्य से ही वह अपना पूरा भाव व्यक्त कर लेता है। बातचीत में भी प्रायः वाक्य एक शब्द के होते हैं।

उदाहरणस्वरूप -

हीरा - तुम घर कब आओगे ?

मोती - कल। और तुम?

हीरा - परसों।

मोती - और मोहन गया क्या?

हीरा-हाँ।

क्या यहाँ 'कल', 'परसों', 'हाँ' वाक्य नहीं हैं। इसी प्रकार 'खाओ', 'जाओ', 'लिखिए', 'पढ़िए', 'चलिए', आदि भी एक ही शब्द के वाक्य होते हैं। यह बात दूसरी है कि ऐसे वाक्य पूरे वाक्य में शब्दों का लोप करके बताए जाते हैं तथा बोलचाल में प्रायः प्रयुक्त होते हैं।

अर्थ की दृष्टि से वाक्य की पूर्णता भी कम विवादास्पद नहीं है। उसे पूर्णतः पूर्ण नहीं कहा जा सकता। कुछ उदाहरण भाव) के खंड मात्र है, अतः अपूर्ण हैं। यह विवाद यहीं समाप्त नहीं हो जाता। मनोविज्ञानवेत्ता उस भाव या एक पूरी बात (जिसमें बहुत से वाक्य होते हैं) को भी अपूर्ण मानता है, क्योंकि जन्म से लेकर मृत्यु तक उसके अनुसार भाव की एक ही अविच्छिन्न धारा प्रवाहित होती रहती है और बीच में आने वाले वाले छोटे-मोटे सारे भाव या बातें उस धारा की लहरें मात्र है, अतएव वह अविच्छिन्न धारा हो केवल पूर्ण है। कहने की आवश्यकता ही अविच्छिन्न धारा की पूर्णता की तुलना में एक भाव या विचार भी बहुत अपूर्ण है तो फिर एक बाप की पूर्णता का तो कहना ही क्या, जो पूरे भाव या विचार का एक छोटा खंड मात्र है। पर दूसरे धरातल पर बात लें।

मान लीजिए किसी उपन्यास में बीच में एक वाक्य आता है-

'उसने उससे वह बात कह दी।'

क्या वह वाक्य अर्थ की दृष्टि से पूरा है। यदि किसी से यह वाक्य कहें तो क्या वह इससे पूरी बात समझ जाएगा? शायद नहीं। अर्थात् वाक्य की परिभाषा क्या हो? वस्तुतः वाक्य की कोई ऐसी परिभाषा क्या हो ? वस्तुतः वाक्य की कोई ऐसी परिभाषा दे पाना काफी कठिन है जो दुनिया की सारी भाषाओं पर लागू हो।

वाक्य भाषा की वह सहज इकाई है जिसमें एक या दो अधिक शब्द (पद) होते हैं तथा जो अर्थ की दृष्टि से पूर्ण हो या अपूर्ण, व्याकरणिक दृष्टि से अपने विशिष्ट संदर्भ में अवश्य पूर्ण होती है, साथ ही उसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में कम से कम एक समायिका क्रिया अवश्य होती है।

(क) वाक्य भाषा की सहज इकाई है- भाषा की लघुतम इकाई ध्वनि है, क्योंकि ध्वनियों के योग से प्राय: शब्द बनते हैं और शब्द अथवा शब्दों के योग से वाक्य। किन्तु भाषा की सहज इकाई वाक्य है। रूप, शब्द, अक्षर, ध्वनि आदि इकाइयां उसकी तुलना में कृत्रिम हैं तथा भाषा-विश्लेषण के बाद इनकी खोज हुई है या मनुष्य इनके प्रति सतर्क हुआ है।

(ख) वाक्य में एक शब्द (पद) भी हो सकता है और एक से अधिक भी- प्राय: भाषा में एक से अधिक शब्द होते हैं, किन्तु बातचीत में प्राय: वाक्य एक शब्द के भी होते हैं। विशिष्ट संदर्भ में 'हां' 'जाओ', 'बैठो', 'लिखो', 'नहीं', वाक्य ही हैं। यों ये 'एक शब्दीय वाक्य' पूरे वाक्य के अन्य शब्दों के लोप से बने होते हैं।

(ग) वाक्य में अर्थ की पूर्णता हो सकती है, और नहीं भी- अर्थ की पूर्णता वाक्य में हो सकती है-

1. दो और दो चार होते हैं
2. सूरज पूरब में निकलता है।
3. बिना पानी के पौधा सूख जाता है और नहीं भी।
4. अब तो यह भी उसके घर जाने लगा है।
5. उसे वह पुस्तक देती है।
6. उस समय वह भी गायब था।

ये तीनों ही वाक्य हैं, यद्यपि अर्थ की दृष्टि से ये स्पष्ट और अपूर्ण हैं। इस तरह वाक्य के लिए आर्थिक पूर्णता आवश्यक नहीं है।

(घ) वाक्य व्याकरणिक दृष्टि से पूर्ण होता है- व्याकरणिक पूर्णता आर्थिक पूर्णता से भिन्न होती है। 'व्याकरणिक पूर्णता' का अर्थ है विशिष्ट संदर्भ में वाक्य के लिए व्याकरणिक दृष्टि से अपेक्षित सभी पदों अथवा शब्दों का होना। ऊपर 4, 5, 6 नंबर के वाक्य आर्थिक दृष्टि से पूरी बात का बोध कराने में असमर्थ होते हुए भी व्याकरणिक दृष्टि से पूर्ण हैं, क्योंकि उनमें कर्ता, कर्म, क्रिया आदि अपेक्षित सभी वाक्य अवयव हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि इनमें व्याकरणिक दृष्टि से किसी भी शब्द की कमी है। इस प्रकार की व्याकरणिक पूर्णता सभी वाक्यों के लिए अनिवार्यत: आवश्यक है।

(ङ) व्याकरणिक पूर्णता कभी-कभी संदर्भ पर भी निर्भर करती है- कभी तो वाक्य व्याकरणिक दृष्टि से पूर्ण होते हैं, किन्तु कभी-कभी बोलचाल या साहित्यिक रचनाओं में कथोपकथन आदि में उनमें व्याकरणिक दृष्टि से अपेक्षित सारे शब्द नहीं होते। वे लुप्त रहते हैं। ऐसे वाक्यों की व्याकरणिक पूर्णता संदर्भ विशेष पर निर्भर करती है। श्रोता या पाठक, संदर्भ विशेष में उनके लुप्त शब्दों को जोड़कर अर्थ की प्रतीति कर लेता है। उदाहरण

राजीव - तुमने खाना खा लिया?

सौरभ-नहीं। और तुमने?

राजीव-हाँ।

यहाँ 'नही', 'तुमने'? 'हाँ' तीनों की वाक्य हैं। इस संदर्भ में 'नहीं' 'मैंने खाना तुमने खा लिया' का तथा 'हां' 'हां मैंने खा लिया' का। 'नहीं खाया' का संक्षेप है और 'तुमने' 'क्या तुमने खा लिया' का तथा 'हां' 'हां मैंने खा लिया' का।

(च) वाक्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कम-से-कम एक समायिका क्रिया भाव अवश्य होता है- व्याकरणिक दृष्टि से पूर्ण वाक्यों में प्रत्यक्षत: एक या अधिक क्रियाएं होती हैं

एक - 1. राम गया।

2. मोहन जाता है।

3. मैं नहीं जाने का।

अधिक- 1. राम ने कहा कि मैं जाऊंगा।

2. राम ने कहा, कि मोहन जा रहा है, अत: वह नहीं जा सकता।

3. राम ने बताया कि शीला तब खाली होती है, जब उसका पति खा-पीकर ऑफिस चला जाता है।

जिन वाक्यों की व्याकरणिक पूर्णता संदर्भ पर निर्भर करता है, उनमें कभी-कभी क्रिया नहीं भी होती। ऊपर 'ङ' अंतर्गत दिए गए उदाहरणों में 'नहीं' और 'तुमने? हात ही में क्रिया प्रत्यक्ष रूप से नहीं है, किन्तु बिना उनकी कल्पना किए या बिना उनको खाए इन वाक्यों को समझा नहीं जा वाक्य के अंग सकता। इस प्रकार क्रिया यां तो प्रत्यक्षत: होगी या फिर संदर्भ से उसका अनुमान समझा जाएगा।

• वाक्य की विशेषताएं

भारतीय दृष्टि से वाक्य के लिए 5 बातें आवश्यक हैं - सार्थकता, योग्यता, आकांक्षा, सन्निधि और अन्विति। (1) सार्थकता- का आशय यह है कि वाक्य के शब्द सार्थक होने चाहिए। (2) योग्यता का आशय यह है कि शब्दों की संगति बैठे। शब्दों में प्रसंगानुकूल भाव का बोध कराने की योग्यता या क्षमता हो। 'वह पेड़ को पत्थर से सींचता है' वाक्य में शब्द तो सार्थक हैं, किन्तु पत्थर से सींचना नहीं होता, इसलिए शब्दों की परम्परा योग्यता की कमी है अत: यह सामान्य अर्थ में वाक्य नहीं हैं, इसलिए शब्दों की स्पर, योग्यता की कमी है। अत: यह सामान्य अर्थ में वाक्य नहीं है, इसलिए उलटबांसी भले ही (3) आकांक्षा का अर्थ है 'इच्छा'। अर्थात् 'जानने की इच्छा', अर्थात् 'अर्थ की अपूर्णता'। वाक्य में इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वह पूरा अर्थ दे। उसे सुनकर भाव पूरा करने के लिए कुछ जानने की आकांक्षा न रहे। (यह शब्द विवादास्पद है।) पीछे वाक्य में अर्थ की पूर्णता पर सविस्तार विचार किया जा चुका है। (4) सन्निधि या आसत्ति का अर्थ है समीपता। वाक्य के शब्द समीप होना चाहिए। उपर्युक्त सभी बातों के रहने पर भी, यदि एक शब्द आज कहा जाए दूसरा कल और तीसरा परसों तो उसे वाक्य नहीं कहा जाएगा। (5) अन्विति का अर्थ है व्याकरणिक दृष्टि से एकरूपता। अंग्रेजी में इसे Concordance कहते हैं। विभिन्न भाषाओं में इसके विभिन्न रूप मिलते हैं। यह समानरूपता प्राय: वचन कारक, लिंग और पुरुष आदि की दृष्टि से होती है। हिन्दी में क्रिया प्राय: सिंह, वचन, पुरुष में कर्ता के अनुकूल होती है। 'सीता गये' न तो ठीक वाक्य है और न 'राम' जा रही है, क्योंकि यहां न तो 'सीता' और 'गये' में अन्वित है। और न 'राम' 'जा रही है' में। अंग्रेजी में क्रिया। पुरुष, वचन की दृष्टि से कर्ता के अनुसार होती है, किन्तु लिंग की दृष्टि से नहीं Ram goes, Sita goes, प्राचीन भाषाओं में विशेषण और विशेष्य में भी अन्विति मिलती है। संस्कृत में 'सुंदर फलम्' किन्तु 'सुंदर : बालक:।' लैटिन में Puella bona (अच्छी लड़की) (Fillies bonus) (अच्छा लड़का)। हिंदी में आकारांत विशेषणों में ही ऐसा होता है। जैसे अच्छा लड़का, अच्छी लड़की। अन्य में नहीं, जैसे चतुर लड़का, चतुर लड़की। अंग्रेजी में विशेषण-विशेष्य-अन्वित्ति बिल्कुल नहीं है। इस प्रकार इस भाषा में अन्विति के अपने नियम होते हैं।

मीमांस्को के सिद्धांत अभिहितान्वयवाद के अनुसार वाक्य में आकांक्षा योग्यता (अन्विति भी इसमें समाहित है) तथा आसात्ति ये तीन अपेक्षित हैं।

13.3.2 अभिहितान्वयवाद (पदवाद)

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि इस सिद्धरंत के प्रवर्तक आचार्य कुमारिल भटट थे। उन्होंने अपने मत में पद को अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया। उनका कथन है-

‘अभिहितानाम् पदानाम् अद्वयः।’

उनके इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि अभिहित (अभिव्यक्त) अर्थों की पारस्परिक अन्विति ही वाक्य है अर्थात विभिन्न पदों के अन्विति प्रयोग के द्वारा ही वाक्य भावों को अभिव्यक्त करने में समर्थ हो सकता है। कुमारिल भट्ट से पहले प्रसिद्व वैयाकरण पाणिनि ने ‘सुप्तिडन्तं पदम’ कहकर इस मत की ओर हल्का से इशारा किया है। सुप् अर्थात संज्ञा-विभक्ति, तिङ् अर्थात् क्रिया-विभक्ति के योग से ही पद बनते हैं। पदों के बिना न तो वाक्य बनता है और न ही यह भावाभिव्यक्ति में समर्थ होता है. शब्द व्याकरणिक नियमों में बंधकर ही पद बना है और इन पदों की अन्विति प्रयोग से ही वाक्य बनता है। इसलिए आचार्य कुमारिल भट्ट का यह कथन है कि वाक्य की तुलना में पद अधिक महत्वपूर्ण है। उन्होंने इसके लिए तीन दशाएं आवश्यक मानी हैं 1. योग्यता, 2. योग्यता, 3. आस्ति।

1. योग्यता- योग्यता से तात्पर्य है-पदों के पारस्परिक अन्वय में बाधा न होना। पदान्वय और अर्थ की प्रतीति, दोनों दृष्टियों से पदों के के अन्वय में बाधा उत्पन्न हो सकती है। यदि हो जाए तो अर्थ की प्रतीति नहीं हो पाती। एस पदार्थ का दूसरे पदार्थ के साथ संबंध कराने में बाधा न होना ही योग्यता कहलाता है। अर्थ की दृष्टि से बाधा वहां उपस्थित होती है जहां किसी वाक्य में प्रयुक्त पदों में उचित अर्थ के प्रकाशन की योग्यता नहीं होती जैसे

‘‘दीवार खाती है।’’

‘‘मकान उड़ता है’’

‘‘राम फल से रोटी खाता है।’’

व्याकरण अथवा पद्-विन्यास की दृष्टि से ये सभी वाक्य सही हैं, लेकिन अर्थ की दृष्टि से ये वाक्य सही नहीं। कभी-कभी पद-विन्यास की दृष्टि से भी अड़चन उत्पन्न होती है। जैसे **‘‘लड़की हंसता है’’, बच्चे खेलता हूं’** इन वाक्यों में व्याकरणिक त्रुटियों के कारण योग्यता का अभाव है। यह अयोग्यता चार प्रकार की हो सकती है-

(i) लिंग विषय अयोग्यता

(ii) वचन विषयक अयोग्यता

(iii) पुरुष विषयक अयोग्यता

(iv) विभक्ति विषयक अयोग्यता

2. आकांक्षा- आकांक्षा का संबंध श्रोता की जिज्ञासा वृत्ति है। ज्ञान की पूर्ति न होना ही आकांक्षा है। इसी प्रकार वाक्यार्थ की पर्ति के लिए किसी अन्य पदार्थ की आकांक्षा का बना रहना ही आकांक्षा कहलाता है। यदि कोई व्यक्ति अपने मुख से ‘सरोवर’ शब्द का उच्चारण करके चुप रह जाता है तो ‘सरोवर’ शब्द सुनकर श्रोता वक्ता के अभिप्राय को नहीं जा सकता। वह यह सुनना चाहता है कि वक्ता सरोवर के बारे में कुछ और कहे ताकि वह उसके कथन के पूर्ण अर्थ को जान सके। अतः आकांक्षा का संबंध श्रोता की मानसिक स्थिति से होता है क्योंकि श्रोता किसी भी शब्द को वक्ता से सुनकर वक्ता से कुछ-न-कुछ और सुनने की अभिलाषा करता है। वह चाहता है कि वक्ता सरोवर के बारे में जो भी कहना चाहता है वह कहे ताकि उसकी आकांक्षा की पूर्ति हो। अन्ततः वक्ता कहता है- **“सरोवर में सुन्दर कमल खिले हैं।’’**

इस पूरे वाक्य को सुनकर एक ओर तो वक्ता अपने अभिप्राय को व्यक्त कर देता है और दूसरी ओर श्रोता की जिज्ञासा भी समाप्त हो जाती है। अतः आकांक्षा वाक्य का एक अन्य मूल आधार है जिसके बिना वाक्यार्थ की पूर्ति नहीं होता।

3. आसत्ति- इसे ‘सन्निधि’ भी कहा गया है। आसक्ति का अर्थ है-समीपता। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि वाक्य में प्रयुक्त होने वाले शब्दों में किसी प्रकार का भी व्यवधान नहीं होना चाहिए। यह व्यवधान दो प्रकार हो

सकता है-एक तो एक पदार्थ और दूसरे पदार्थ के बीच कालगत व्यवधान उपस्थित होने से पूर्ण अर्थ की प्रतीति में बाधा उत्पन्न होती है। एक पदार्थ और दूसरे पदार्थ के बीच अनुपयुक्त पदार्थों के आ जाने से भी व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। जैसे- **''लड़का खेलता है।''**

इस वाक्य में 'लड़का' पद के पश्चात् ''खेलता है'' लेकिन यदि 'लड़का' पद का उच्चारण करने के एक घंटे बाद अगले पदों का उच्चारण होगा तो अर्थ बोध नहीं हो सकेगा। यह व्यवधान ही कालगत है। इसी प्रकार से पदों का उचित क्रम में ही प्रयोग होना चाहिए क्योंकि अनुपयुक्त पदार्थों के बीच में आने से पूर्ण अर्थ की प्रतीति में बाधा उपस्थित होती है।

''भाषा होते किसी है में साहित्यकार गिने-चुने।''

यहाँ पदार्थों का प्रयोग तो हुआ है, लेकिन यह क्रमानुसार नहीं है। अब हम इन पदार्थों का क्रमानुसार उच्चारण करेंगे।

''किसी भाषा में साहित्यकार गिने-चुने होते हैं''

यह वाक्य की व्यवस्थित इकाई कही जाएगी, परन्तु ऐसा केवल गद्य में ही संभव है, पद्य में नहीं। अत: आसत्ति से अभिप्राय है- **''वाक्य के पदों का क्रमानुसार उच्चारण करना अथवा लिखना जिससे वे एक-दूसरे के निकट रहें।''** अत: आसत्ति ही वाक्य-निर्माण का मूल आधार मानी गई है।

अत: अभिहितान्वयवाद के अनुसार पदों द्वारा व्यक्त अर्थों के अन्वय से ही वाक्य का अर्थ निकलता है। पद को महन्ता देने के कारण ही इस मत को 'पदवाद' कहकर भी पुकारा जाता है। यहाँ वाक्य की सत्ता पदों के अर्थो के संयोजन पर आश्रित है। यदि पद और उनके द्वारा व्यक्त अर्थ ही न हो तो वाक्य नहीं बन सकेगा और इस प्रकार न ही वाक्य का कोई अर्थ निकलेगा।

13.3.3 अन्विताभिधानवाद (वाक्यवाद)

अन्विताभिधानवाद का प्रवर्तन आचार्य कुमारिल भट्ट के शिष्य आचार्य प्रभाकर ने किया। वस्तुत: इनका नाम प्रभाकर था। इनके मत को इनके गुरु कुमारिल भट्ट के मत की अपेक्षा अधिक मान्यता प्राप्त हुई। अत: ये अपने गुरु के भी 'गुरु' माने जाने लगे तथा इन्हें 'गुरु' पदवी से सुशोभित किया गया। इनके द्वारा प्रवर्तित मत का नाम 'अन्विताभिधानवाद' है जिसका आधार है **''अन्विताभिधानवाद पदार्थानाम् अभिधानम्''**

अर्थात पदों के अर्थों की अन्विति की अभिव्यक्ति ही वाक्य है। इस मत के अनुसार वाक्य में पद और उसके अर्थ की स्वतंत्र सत्ता नहीं है, वरन् सभी पदों के अथों के समन्वय की अभिव्यक्ति हो। वाक्य है। अत: समग्र अर्थ का बोध पूरे वाक्य से ही होता है। पृथक-पृथक पदों और उनके पृथक-पृथक् अर्थों से नहीं। इस प्रकार वाक्य अवयवी है और पद उसके अवयव हैं। अवयवों को अवयवी से विच्छिन्न करके नहीं देखा जा सकता। पदार्थ की महत्ता इसी में है कि वह वाक्य का अभिन्न अंग है। वाक्य एक अखण्ड सार्थक इकाई है। पदार्थ उसमें इसी प्रकार अन्वित रहते हैं जैसे शरीर में अंग। वाक्य को खण्डित करके ही पदों की अलग-अलग किया जा सकता है, किन्तु ऐसी स्थिति में वाक्य वाक्य नहीं रहता। अत: वाक्य ही भाषा की स्वायत्त सार्थक इकाई है। इस मत में वाक्य की महत्ता पर बल दिया गया है। अत: इसे 'वाक्यवाद' भी कहते हैं।

उपुर्यक्त दोनों मतों के पर्यावलोचन से ज्ञात होता है कि आचार्य प्रभाकर 'गुरु' का मत ही अधिक युक्ति-संगत एवं ग्राह्य है। वाक्य भाषा का चरम अवयव है। यदि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी देखा जाए तो पदवाद की अपेक्षा वाक्यवाद ही अधिक मान्य प्रतीत होता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वक्ता । द्वारा सोचने की क्रिया भी वाक्यों के रूप में ही होती है, अलग-अलग पदों के रूप में नहीं। वक्ता के मन में विचार वाक्यों के रूप में ही बनते हैं। पशुओं के पास वाक्य और भाषा नहीं है, अत: वे सोच नहीं सकते। जब वक्त सोचता है **''यह जीवन पानी के बुलबुले की भाँति क्षणभंगुर है''** तो उसके मन में अलग-अलंग जीवन, पानी, बुलबुला आदि पद और उनके अर्थ नहीं उभरते। वरन् पूरे

वाक्य के रूप में जीवन की नश्वरता का बोध पानी के बुलबुले की क्षणभंगुरता के बिम्ब के रूप में मानस पटल पर अंकित हो जाता है। इसी वाक्य को बोलकर वह श्रोता के मन पर यही बिम्ब अंकित कर देता है। इस प्रकार विचार या विचारों के घटक वाक्य-बिम्बों के रूप में ही मानस पर अंकित होते हैं। चिंतन और भाषा में अन्विति रहती है। वाक्य चिंतन और भाषा के समन्वय की स्वायत्तपूर्ण इकाई है, जिसमें पद पदार्थ उसी प्रकार समन्वित रहते हैं, जैसे प्रवाह में बूंदें। यह ठीक है कि प्रवाह बूंदों के समन्वय से। बनता है, किन्तु इसमें बूंदों की स्वतंत्र सत्ता नहीं रहती।

• वाक्य विश्लेषण

वाक्य की रचना पदों से होती है। इस रचना में मुख्यत: चार बातें ध्यान देने की होती है-

(1) पदक्रम या शब्दक्रम- विश्व में काफी भाषाएं ऐसी हैं जिनमें 'पदक्रम' का वाक्य रचना में महत्वपूर्ण स्थान है। चीनी आदि स्थान-प्रधान भाषाओं में तो वह बहुत ही महत्वपूर्ण है, किन्तुं अंग्रेजी, हिंदी आदि वियोगात्मक भाषाओं में भी इसके महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इनमें एक सीमा तक वाक्य में शब्दों का स्थान निश्चित है। वैसे हिंदी में प्राय: कर्ता पहले, कर्म बाद में तथा क्रिया वाक्य के अंत में आती है।

राम ने मोहन को मार डाला।

इसके विपरीत अंग्रेजी में क्रिया बीच में आती है तथा कर्म बाद में -

Ram killed Mohan

इसी प्रकार विशेषण-विशेष्य, क्रियाविशेषण-क्रिया, एक साथ आए कई विवेचन अथवा क्रियाविशेषण, पदबंधों तथा उपवाक्यों का भी हर भाषा में विशेष क्रम होता है।

वाक्य के पद-क्रम की दृष्टि से भाषाएं दो प्रकार की हैं। एक तो वे हैं जिनमें वाक्य में शब्दों (पदों) का स्थान निश्चित नहीं है। इन भाषाओं में शब्दों में विभक्ति लगी होती है, अतएव किसी भी शब्द को उठाकर कहीं रख दें, अर्थ में परिवर्तन नहीं होता। ग्रीक, लैटिन, अरबी, फारसी तथा संस्कृत आदि इसी प्रकार की हैं। इनमें एक ही वाक्य को शब्दों के स्थान में परिवर्तन करके कई प्रकार से कहा जा सकता है। कुछ उदाहरण हैं -

अरबी

जरबअ जैदुन अम्रन = जैद ने अमर को मारा।

जरब्अ अम्रन जैदन = अमर को जैद ने मारा।

फारसी

जैद अमरं जद - जैद ने अमर को मारा।

अमररा जैद जद अमर को जैद ने मारा।

संस्कृत

जैद अमरं अहनत् = जैद ने अमर को मारा।

अमरं जैद: अहनत् - अमर को जैद ने मारा।

इन भाषाओं में भी इस प्रकार की छूट के बावजूद क्रम-विषयक नियम अवश्य होते हैं।

दूसरे प्रकार की भाषाएं होती हैं, जिनमें वाक्य में शब्द (पद) का महत्व निश्चित रहता है। ऊपर के उदाहरणों में हम देखते हैं कि शब्दों के स्थान परिवर्तन से अर्थ में कोई फर्क नहीं आया, किन्तु निश्चित स्थान या स्थान-प्रधान भाषाओं का वाक्य में शब्द का स्थान बदलने से अर्थ बदल जाता है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण चीनी है। यों हिंदी, अंग्रेजी आदि आधुनिक भारोपीय भाषाओं में भी यह प्रवृत्ति कुछ है। अंग्रेजी का एक उदाहरण है अंग्रेजी

Zaid killed Amar = जैद ने अमर को मारा।

Amar killed Zaid = अमर ने जैद को मारा। (यहां शब्द के स्थान परिवर्तन से वाक्य का अर्थ उलट गया। चीनी में तो यह प्रवृत्ति विशेष रूप से मिलती है –

पा ताङ् शेन पा शेन को मारता है।

शेन ताङ् पा = शेन पा को मारता है।

अंग्रेजी में सामान्यत: कर्त्ता, क्रिया और कर्म आता है, पर प्रश्नवाचक वाक्य में क्रिया का कुछ अंश पहले ही आ जाता है और क्रियाविशेषण क्रिया के बाद में, हिन्दी में कर्ता, कर्म और तब क्रिया रखते हैं। सामान्यत: विशेषण संज्ञा के पूर्व तथा क्रिया-विशेषण क्रिया के पूर्व रखते हैं। चीनी में अंग्रेजी की भांति कर्ता के बाद क्रिया और तब कर्म रखते हैं। यद्यपि इनकी कुछ बोलियों में कर्म पहले भी आ जाता है। विशेषण और क्रिया विशेषण हिन्दी को भांति प्राय: संज्ञा और पूर्व आते हैं। प्रश्नवाचक शब्द (जैसे क्या) अंग्रेजी तथा हिन्दी में वाक्य के आरम्भ में आते हैं, पर चीनी में वाक्य के अंत में।

फान त्स ल मा?

खाना खा लिया क्या?

किसी भी भाषा के शब्दों के स्थान की निश्चितता के ये नियम निरपवाद नहीं होते। यहां तक कि इस प्रकार प्रधान भाषा चीनी में भी नहीं। ऊपर का चीनी वाक्य इस प्रकार भी कहा जा सकता है

त्स फान ल मा?

खा खाना लिया क्या? खाना खा लिया क्या?

बल देने के लिए पदक्रम प्रधान भाषाओं में प्राय: परिवर्तन ला देते हैं। उदाहरणार्थ, हिन्दी में सामान्यत: कहेंगे। 'मैं घर जा रहा हूँ' किन्तु बल देने के लिए 'घर जा रहा हूँ मैं' जा रहा हूँ घर में आदि भी कहते हैं।

(2) अन्वय- 'अन्वय' का अर्थ है व्याकरणिक अनुरूपता। विभिन्न भाषाओं ने विशेषण-विशेष्य, कर्ता-क्रिया, कर्म-क्रिया आदि विभिन्न व्याकरणिक कोटियों में लिय, वचन, पुरुष तथा मूल और विकृत रूप आदि की अनुरूपता होती है। यहाँ दो बातें ध्यान देने की हैं: (क) हर भाषा के अन्वय के नियम अलग-अलग होते हैं। (ख) अलग-अलग भाषाओं में अलग-अलग चीजों का अन्वय होता है। जैसे संस्कृत में कर्ता-क्रिया में लिंग का अन्वय नहीं है, किंतु हिन्दी में है

राम: गच्छति – राम जाता है।

सीता गच्छति – सीता होती है।

ऐसे ही हिन्दी में विशेषण में भी वचन तथा लिंग अन्वय है, किंतु अंग्रेजी में नहीं।

अच्छा लड़का – good boy

अच्छी लड़का – good girl

अच्छे लड़के – good boys

हिन्दी में क्रिया कभी तो कर्ता के अनुरूप होती है

मोहन गया-शीला गई

कभी कर्म के

राम ने रोटी खाई – राम ने आम खाया

सीता ने आम खाया - सीता ने दो आम खाए

राम ने कई पराठें खाए राम ने एक पराठां खाया

लड़की ने लड़के को मारा।

लड़के ने लड़की को मारा।

लड़कियों ने लड़कों को मारा।

ऐसे ही मूल विकृत रूप की भी विशेषण-विशेष्य में अनुरूपता होती है

वह काला कपड़ा उठाओ - उस काले कपड़े को उठाओ।

(3) लोप - वाक्य रचना में सभी अपेक्षित शब्दों का प्रयोग सर्वदा नहीं किया जाता। कभी-कभी कुछ का लोप वाक्य के अभी हो जाता है। किन्तु यह लोप कुछ ही का हो सकता है और वे निश्चित होते हैं। 'राम जा रहा है।' वाक्य का नकारात्मक रूप होगा 'राम नहीं जा रहा' यहाँ 'है' का लोप है।

इसी तरह 'राम जाता है।' नकारात्मक रूप 'राम नहीं पहले होता था-

'राम नहीं जाता है' किन्तु घोड़े पर है।' को नहीं कह सकते - 'राम घोड़े है।'

बोलचाल में केवल मुख्य सूचक शब्द अथवा शब्दों का ही प्रयोग करते हैं। बाकी का लोप कर देते हैं

गौतम/- तुम कहां गए थे ?

हरि/घर ('गया था' का लोप है)

गौतम/- अब कहाँ जा रहे हो। ('तुम' का लोप)

हरि-आफिस ('अब' तथा 'जा रहा हूँ' का लोप है)

ऐसे 'एक शब्दीय' अथवा 'कुछ शब्दीय वाक्यों' का अर्थ करते समय लुप्त शब्द अथवा शब्दों को लाते हैं, इसे अध्याहार कहते हैं। 'अध्याहार' का अर्थ है वाक्य का अर्थ करते समय पहले लुप्त शब्दों को 'ले आना'। उन्हें लाए बिना अर्थ स्पष्ट होता। लोप कई प्रकार का हो सकता है, और उतने ही प्रकार के अध्याय भी होते हैं। (1) कर्ता का-सुना है उसका भाई मर गया, देखते हो कि अपनी ही जान संकट में है क्या करूँ और क्या न करूँ? (2) कर्म का - मोहन आम लाया है, तुम भी लाओ। करण आदि कुछ अन्यों का भी हो सकता है। (3) क्रिया का लोकोक्तियों में ऐसा प्राय: होता है: घर की मुर्गी से दाल बराबर घर का जोगी जंगड़ा आन गांव का सिद्ध। राम नहीं जा रहा (है), राम अब नहीं गाता (है)। (4) वाक्यांश का - (अ) प्रश्नोत्तर में : प्रश्न तुम्हारा नाम क्या है? उत्तर मोहन ('मेरा नाम' तथा 'है' का लोप तथा अध्याहार)। (अ) अन्यत्र वह ऐसा सीधा है जैसे गाय (सीधी होती है का)।

लोप के सम्बन्ध में तीन बातें स्मरणीय हैं (क) हर भाषा में लोप के लिए अलग-अलग होते हैं। (ख) एक ही भाषा में कहीं तो लोप होता है कहीं नहीं होता। राम घर पर है, राम घोड़े पर है। (ग) कहीं-कहीं लोप-अलोप दोनों संभव है पर अर्थ में प्राय: अंतर-हाथ से मारा हाथ मारा, लाठी से मारा, लाठी से मारा।

(4) आगम्- कभी आवश्यक न होने पर भी कुछ अतिरिक्त 'शब्दों' का आगम कर दिया/लिया जाता है Ram is returning back कृपया यहां बैठिए, ऊपर सूरज की ओर देखिए। यदि बल देने के लिए अपेक्षित न हो तो ऐसे अतिरिक्त शब्दों से बचना चाहिए। कुछ लोग कहते हैं कृपया मेरे घर आने की कृपा करें, वह वापस लौट आया, वह सज्जन व्यक्ति है, मैंने विध्याचल पर्वत देखा है। इस प्रकार के आगम एक प्रकार की पुनरूक्ति होते हैं inca(Pharse)

जब एक से अधिक पद (रूप) एक में बंधकर एक व्याकरणिक इकाई (जैसे संज्ञा, विशेषण, क्रिया विशेषण आदि) का कार्य करें तो उसे 'बंधी इकाई' को पदबंध कहते हैं।

सौरभ के मकान के चारों ओर पेड़ हैं

पहले वाक्य में 'वहां' एक क्रियाविशेषण पद (स्थानावाचक) है, दूसरे वाक्य में, 'सौरभ के मकान के चारों ओर' कई पदों की ऐसी इकाई है जो स्थान वाचक क्रियाविशेषण का कार्य कर रही है, अत: यह क्रियाविशेषण पद न होकर क्रियाविशेषण पदबंध है। पदबंध आठ प्रकार के हो सकते हैं (1) संज्ञा पदबंध इतनी लगन से कला की साधना करने वाला कलाकार अवश्य सफल होगा। (2) सर्वनाम पदबंध - मौत से इतनी बार जूझकर बच जाने वाले मैं भला मर सकता हूं। **(3)** विशेषण पदबंध- शरत पूनों के चांद सा सुंदर मुख किसको नहीं मोह लेता। (4) क्रिया-पदबंध - उसकी बात अब तो मान ली जा सकती है। (5) क्रियाविशेषण-पदबंध - आगामी वर्ष के मध्य तक मेरा काम पूरा हो जाएगा। (6) संबंध बोधक पदबंध- इस मकान से बाहर की ओर कोई बोल रहा है। (7) समुच्चयबोधक पदबंध उसे मैं नहीं चाहता, क्योंकि वह झूठ बोलता है। (8) विस्मयादिबोधक - हाय रे किस्मत। यह प्रयास भी नाकाम रहा।

आजकल 'पद' शब्द के स्थान पर भी 'पदबंध' शब्द का प्रयोग विशेष संदभों में हो रहा है।

13.3.4 निकटस्थ अवयव विश्लेषण

वाक्य में प्रयुक्त पद अथवा रूप (जिन्हें सामान्यत: शब्द कहते हैं सुंदर अथवा अलग लिखे जाने वाले रूपांश (जैसे ज्व ने को आदि) उस वाक्य के 'अवयव' होते हैं। जैसे शरीर अवयवों से बना होता है, उसी प्रकार वाक्य भी पदों या शब्दों से उदाहरण के लिए लड़का पढ़ रहा है।

वाक्य में चार अवयव हैं - लड़का, पढ़, रहा है। इसी प्रकार वाक्य का कोई अंश (वाक्यांश) जिन पदों में होता है, वे उसके वाक्यांश अवयव होते हैं जैसे 'ईमारत की चौथी मंजिल का दक्षिणी हिस्सा आज गिर गया। इसमें की चौथी मंजिल का दक्षिणी हिस्सा' एक वाक्यांश है जिसके सात अवयव हैं : इमारत, की, चौथी, मंजिल, का, दी हिस्सा।

जो पद या अवयव एक दूसरे के निकट होते हैं, उन्हें निकटस्थ अवयव कहा है। यह निकटता स्थान की न होकर मिलता है अर्थ की होती है। अंग्रेजी का एक वाक्य है।

Is he going? इसमें तीन अवयव हैं। 'इज' 'ही' के निकट देखने में है, किंतु वह वास्तविक रूप में 'ही' की तुलना में 'गोइङ्' के अधिक निकट है। इस वाक्यं में 'इज' और 'गोइङ्' निकटस्थ अवयव हैं, और फिर ये दोनों मिलकर 'ही' के निकटस्थ अवयव के आधार पर ही किसी वाक्य या वाक्यांश का अर्थ स्पष्ट होता है। अंग्रेजी का ही एक दूसरा वाक्य लें।

The last king of that country was killed, buesa country और was देखने में पास-पास हैं, किंतु ये निकटस्थ अवयव नहीं है। निकटस्थ अवयव की दृष्टि से इस वाक्य का विश्लेषण होगा -

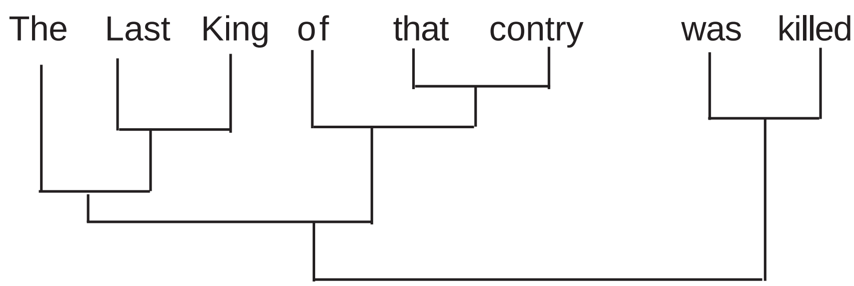

हिन्दी का एक वाक्य है

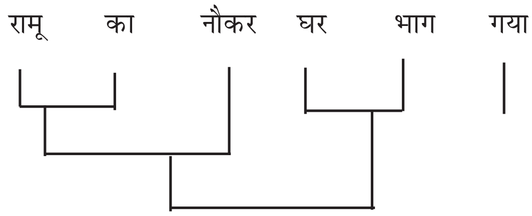

निकटस्थ अवयव के विश्लेषण के आधार पर ही किसी वाक्य अथवा रचना का ठीक अर्थ जाना जा सकता है। एक रचना है –

सुंदर फूल और फलों से भरा उपवन

इसके निकटस्थ अवयव की दृष्टि से दो विश्लेषण हो सकते हैं और दोनों के अनुसार अर्थ में अंतर आ जाएगा।

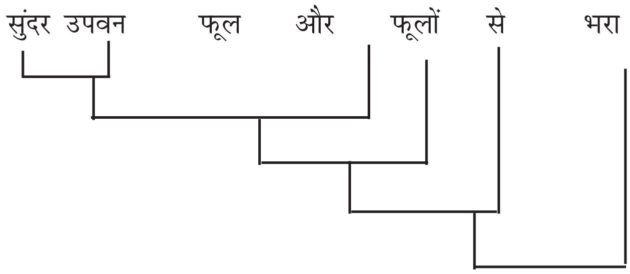

'सुंदर' शब्द केवल 'फूल' का विश्लेषण है। किन्तु

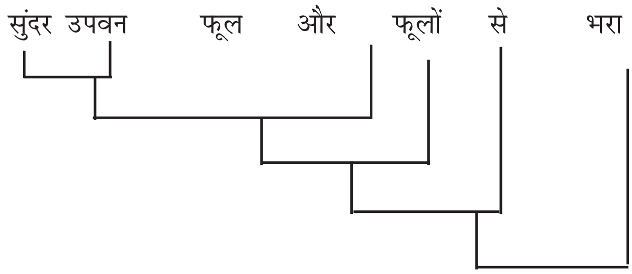

यहां 'सुंदर' शब्द 'फूल' और 'फलों' दोनों का विशेषण है। मुहावरेदार और अमुहावरेदार प्रयोगों में भी इसका अंतर मिलता है।

1. राम रोटी खा रहा है।

2. मेरा सिर चक्कर खा रहा है।

पहले वाक्य में 'रोटी' 'खा' का निकटस्थ है

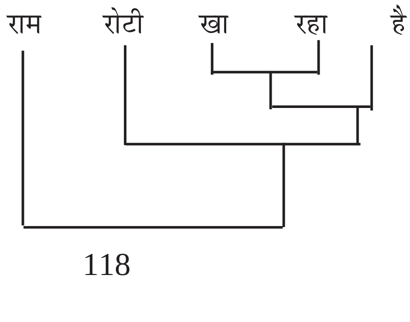

जबकि दूसरे वाक्य में 'चक्कर' 'खा' का निकटस्थ है, और फिर दोनों मिलकर 'रहा है' के निकटस्थ हैं –

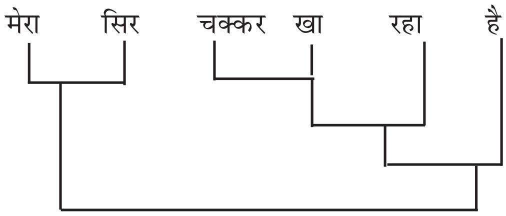

'जाओ मत बैठो' तथा 'जाओ मत बैठो', में भी यह अंतर स्पष्ट है –

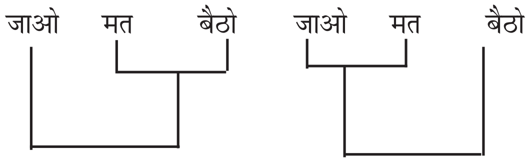

निकटस्थ अवयव (निअ) तीन प्रकार के होते हैं –

(1) अविच्छिन्न – राम का बेटा घर गया। (2) विचिछन्न – (Discotinuous) Is he going धीरे-धीरे मैं भी चल लेता हूँ। समकालिक – अनुतान समकालिक निअ हैं, क्योंकि यह साथ-साथ चलता है- राम गया।

आंतरिक संरचना (deep structure) तथा बाह्य संरचना (surface structure)

रूपांतरित होकर जो संरचना हमारे सामने आती है वह बाह्य संरचना कहलाती है, तथा वह संरचना जिन विभिन्न संरचनाओं से बनती है वह आंतरिक संरचना। उदाहरण के लिए 'राम अपना काम कर रहा है' बाह्य संरचना है तथा आंतरिक संरचना में दो वाक्य हैं। (1) राम काम कर रहा है, (2) काम राम कर रहा है। ये दोनों वाक्य बाह्य संरचना में आकर 'राम अपना काम कर रहा है' बन जाते हैं। जितने भी वाक्यों के कई अर्थ होते हैं, उनकी आंतरिक संरचना में उतने ही वाक्य अलग होते हैं। उदाहरण के लिए 'राम का चित्र है' के तीन अर्थ है क्योंकि इसकी आंतरिक संरचना में 'इस चित्र को राम ने बनाया है' या चित्र राम की मालिक राम है' इस चित्र को राम ने बनाया है या चित्र राम की शक्ल का है। ये तीन वाक्य हैं। इसी प्रकार दौड़ते हुए सांप को मारा वाक्य के दो अर्थ इसलिए हैं कि आंतरिक संरचना में ये दो वाक्य अलग-अलग हैं

1. क- मैंने साँप को मारा; ख- सांप दौड़ रहा था
2. क – मैंने सांप को मारा; ख- मैं दौड़ रहा था।

13.3.5 वाक्य-रचना में परिवर्तन व दिशाएं

किसी भाषा की वाक्य-रचना हमेशा एक सी नहीं रहती। उसमें परिवर्तन आते रहते हैं। इसी तरह मूल भाषा की तुलना में उससे निकली भाषा की वाक्य रचना में भी परिवर्तन हो जाता है। उदाहरण के लिए संस्कृत, वाक्य रचना में कर्ता या कर्म के लिंग पर क्रिया पर प्रभाव नहीं पड़ता था। किन्तु संस्कृत से ही निकली हिन्दी में ऐसा प्रभाव पड़ता है, गच्छति सीता गच्छति, राम जाता है, सीता जाती है।

वाक्य रचना में परिवर्तन के कारण

किसी भाषा की वाक्य रचना में परिवर्तन के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं

(1) अन्य भाषा का प्रभाव – किसी अन्य भाषा के प्रभाव से भाषा की वाक्य-रचना प्राय: प्रभावित होती है, किंतु ऐसा तभी होता है जब प्रभावित करने वाली भाषा प्रभावित भाषा के बोलने वालों के लिए अत्यावश्यक होकर उनके शिक्षा अथवा व्यवहार का महत्वपूर्ण अंग हो। मध्यकाल में मुगल दरबार की भाषा फारसी थी, अत: उसका पठन-पाठन काफी होता था। इसी कारण उसका हिंदी की काव्य-रचना पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। उदाहरण के लिए संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में आदर के लिए बहुवचन के प्रयोग की परम्परा विशेष नहीं थी किंतु फारसी में यह परम्परा पूरी तरह से थी। उसी के प्रभावस्वरूप हिंदी में यह परम्परा आई जिसका परिणाम है

मेरा चपरासी आ रहा है

मेरे अध्यापक आ रहे हैं।

'कि' का प्रयोग भी हिंदी पर फारसी प्रभाव है

मैं चाहता हूँ कि वह चला जाए।

अंग्रेजी ने भी हिंदी को इसी तरह प्रभावित किया है। कुछ उदाहरण लिए जा सकते हैं। हिंदी का एक वाक्य है

वह आदमी जो कल आया था, चोर था।

इस वाक्य में 'वह' अंग्रेजी जीम की छाया है

The man who had come yesterday was a thief

हिंदी का प्राकृत वाक्य होगा

कल जो आदमी आया था, वह चोर था

इसी प्रकार कई संज्ञाओं या क्रियाओं के एक साथ आने पर अंतिम दो के बीच में 'और' का प्रयोग भी हिंदी पर अंग्रेजी का प्रभाव है

राम, मोहन और श्याम खेल रहा है।

मैं शेव करूंगा, नहाऊंगा और खाऊंगा।

भविष्य काल के लिए अपूर्ण वर्तमान का हिंदी में प्रयोग भी अंग्रेजी का प्रभाव है। उदाहरण के लिए ऐसे वाक्य खूब चलते हैं

(क) प्रधानमंत्री अगले महीने यूरोप जा रहे हैं।

(ख) पिता जी कल आ रहे हैं।

(ग) अगले सप्ताह शहर में सरकार आ रही है।

(2) ध्वनि-परिवर्तन से विभक्तियों और प्रत्ययों का घिस जाना – विभक्तियों के घिस जाने से अर्थ को समझने में कठिनाई होने लगती है, अत: वाक्य में सहायक शब्द (परसर्ग, सहायक क्रिया) जोड़े जाने लगते हैं, साथ ही वाक्य में पदक्रम। निश्चित हो जाता है। यही कारण है कि संस्कृत तथा पुरानी जर्मन की तुलना में हिंदी तथा अंग्रेजी में शब्द-क्रम निश्चित है।

राम मोहन कहता है।

मोहन राम कहता है।

इन वाक्यों में स्थान के कारण 'राम' एक स्थान पर कर्ता है तो दूसरे स्थान पर कर्म। संस्कृत में कर्ता 'राम' होता तथा कर्म 'राम'। अत: शब्द-क्रम के निश्चित होने की आवश्यकता नहीं थी। 'राम' वाक्य में कहीं भी आता कर्ता होता तथा 'राम' कहीं भी आता कर्म होता।

(3) स्पष्टता तथा बल के लिए अतिरिक्त शब्दों का प्रयोग - इसके कारण वाक्य में ऐसे अतिरिक्त शब्द आ जाते हैं जो आर्थिक या व्याकरणिक दृष्टि आवश्यक होते हैं।

कृप्या कल आइएगा।

'आइएगा' अपने आप आदरसूचक है, अत: 'कृप्या' की आवश्यकता नहीं थी। इसी प्रकार (He) पे returning back 'बैक' अनावश्यक है। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में विभक्तियों के लुप्त जाने पर स्पष्टता के लिए ही परसों का प्रयोग (हिंदी आदि आधुनिक भाषाओं में) होने लगा।

(4) नवीनता - नवीनता के लिए कभी-कभी नये प्रयोग चल पड़ते हैं। उनसे भी वाक्य-रचना-पद्धति में परिवर्तन आते हैं। उदाहरण के लिए हिंदी में 'मात्र' का प्रयोग संज्ञा के बाद होता रहा है, अब नवीनता के लिए संज्ञा के पहले इसका प्रयोग होने लगा है-

मुझे दस रुपये मात्र चाहिए : मुझे मात्र दस रुपये चाहिए।

इसी तरह ऐसे विशेषण पदबंध जो संज्ञा शब्दों में पहले आते रहते हैं, अब बाद में रखे जाने लगे हैं

(क) रात भर की बात बात रात भर की।

(ख) तीन दिन की बादशाहत: बादशाहत तीन दिन की।

पुस्तकों, रचनाओं तथा फिल्मों के शीर्षकों में इस प्रकार परिवर्तन खूब प्रचलित हो गया है, यों अन्यत्र भी इसके प्रयोग कम नहीं मिलते।

(5) बोलने वालों की मानसिक स्थिति में परिवर्तन - युद्धकालीन, शांतिकालीन या प्रसन्न व्यक्ति की वाक्य-रचना, एक नहीं होती। वस्तुत वाक्य-रचना वक्ता की मानसिक स्थिति पर बहुत कुछ निर्भर करती है।

(6) संक्षेप नहीं जाता है - नहीं जाता।

(7) बल के लिए क्रम-परिवर्तन जाऊंगा तो-जाऊंगा तो गा, कानपूर हो - कान ही पूर।

वाक्य रचना में परिवर्तन की दिशाएं

(1) वचन-संबंधी परिवर्तन - भाषाओं के विकास में वाक्य-रचना में वचन संबंधी परिवर्तन प्राय: हो जाते हैं। संस्कृत में द्विवचन भी था, अत: दो के लिए अलग कारकीय रूप होते थे और उसके साथ क्रिया के द्विवचन के रूप प्रयुक्त होते थे, हिंदी में आते-आते द्विवचन का लोप हो गया तो 'दो' की संख्या बहुवचन कारकीय रूप में लगाकर द्विवचन का भाव व्यक्त किया जाने लगा।

संस्कृत	हिन्दी
तौ	वे दो
बालकौ	दो बालक

किंतु क्रिया-रूप द्विवचन के स्थान पर बहुवचन के प्रयुक्त होने लगे -

दो बालक आए हैं।

पुरानी हिंदी में आदर के लिए भी एकवचन की क्रिया तथा एकवचन के विशेषण का ही प्रयोग होता था किन्तु अब हिंदी में आदर के लिए बहुवचन का प्रयोग वर्मा (नौकर) अच्छा है: वर्मा (अध्यापक) अच्छे हैं। होता है। अंग्रेजी में you मूलत: बहुवचन है, किंतु अब एकवचन में आता है। हिंदी 'तुम' की ठीक यही स्थिति है।

(2) लिंग-संबधी परिवर्तन - संस्कृत में कर्ता या कर्म के लिए लिंग के अनुसार क्रिया परिवर्तित नहीं होती थी, किंतु हिन्दी में परिवर्तित होती है

राम: गच्छति - राम जाता है।

सीता गच्छति – सीता जाती है।

पहले हिंदी में स्त्रीलिंग प्रयोग था

अब हम जा रही हैं।

अब प्राय: लड़कियां और महिलाएं प्रयोग करने लगी हैं

हम जा रहे हैं।

पंजाबी लोग हिंदी में 'माताजी आ रहे हैं' जैसे प्रयोग करते हैं, जो अशुद्ध है।

(3) पुरुष-संबंधी परिवर्तन – पहले प्रयोग चलता था –

राम ने कहा कि मैं जाऊंगा–अब अंग्रेजी के प्रभाव से सुनने में आने लगा है राम ने कहा कि वह जाएगा।

(4) लोप – पूर्ववर्ती प्रयोगों में कुछ लुप्त हो जाने से वाक्य अपेक्षाकृत छोटे हो जाते हैं जैसे हिन्दी में

प्राचीन प्रयोग – राम नहीं आता है।

नया प्रयोग – राम नहीं आता।

प्राचीन प्रयोग – राम नहीं आ रहा है।

नया प्रयोग – राम नहीं आ रहा।

प्राचीन प्रयोग – आंखों से देखी घटना।

नया प्रयोग – आंखों देखी घटना।

प्राचीन प्रयोग – वह पढ़ेगा–लिखेगा नहीं।

नया प्रयोग – वह पढ़े लिखेगा नहीं।

(5) आगम – अतिरिक्त शब्दों के आ जाने से वाक्य बड़े हो जाते हैं। हिंदी में पुराना प्रयोग था –

राम ने कहा मैं जाऊंगा। फारसी प्रभाव के कारण 'कि' आ गया –

राम ने कहा कि मैं जाऊंगा

– हिंदी का प्रकृत प्रयोग है –

जो लड़का आया था, चला गया।

अब अंग्रेजी प्रभाव के कारण एक अतिरिक्त शब्द 'वह' प्रयुक्त होने लगा है –

वह लड़का जो आया था, चला गया।

(5) पदक्रम में परिवर्तन – वाक्य–रचना इससे भी प्रभावित होती है। विभक्ति–लोप, नये प्रयोग आदि के कारण पदक्रम परिवर्तित होता रहता है। संस्कृत और हिंदी की तुलना करें तो संस्कृत में पदक्रम बहुत निश्चित नहीं था, किंतु हिंदी में वह काफी निश्चित हो गया है। यह एक बहुत बड़ा परिवर्तन है। इधर हाल में भी हिंदी में, पदक्रम–संबंधी कई परिवर्तन हुए हैं। दो का उल्लेख ऊपर हो चुका है- (1) मात्र संज्ञा के पूर्व प्रयोग मात्र दस रूपये। (2) विशेषण पदबंद का संज्ञा के बाद प्रयोग – दूल्हन, एक रात की। बल देने के लिए हिंदी में पदक्रम में काफी परिवर्तन किए जाते हैं।

स्वयं आकलन के प्रश्न

(1) वाक्य किसे कहते है ?

(2) वाक्य की दो विशेषता लिखो।

(3) पदक्रम क्या है ?

13.4 सारांश –

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वाक्य भाषा की अभिव्यक्ति की आवश्यकता को पूरा करता है। भाषा को प्रभावशाली बनाने के लिए वाक्य का ज्ञान होना अनिवार्य है। वाक्य शब्दों के समूह को कहते हैं जो अपने पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति करता है। इस अध्याय में हमने वाक्य विश्लेषण का विस्तृत अध्ययन किया है।

13.5 कठिन शब्दावली

(1) वाक्य विश्लेषण : वाक्य की बनावट का विश्लेषण करना।

(2) लोप – छुपना।

(3) पदक्रम : शब्दों का व्यस्थित क्रम।

13.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

(1) शब्दों के सार्थक समूह को वाक्य कहते हैं।

(2) उत्तर– निकटता और पदक्रम

(3) शब्द को जब वाक्य में प्रयोग किया जाता है, उसके व्यस्थित क्रम को पदक्रम कहा जाता है।

13.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) कामला प्रसाद गुरु – हिन्दी व्याकरण।

(2) भोलानाथ तिवारी – भाषा विज्ञान।

(3) देवेन्द्र नाथ शर्मा – भाषाविज्ञान की भूमिका।

13.8 सात्रिक प्रश्न

(1) वाक्य के स्वरूप को स्पष्ट करे।

(2) वाक्य की विशेषताओं को लिखें।

(3) वाक्य विश्लेषण को सोदाहरण स्पष्ट करे।

*****

इकाई–14

अव्यय

संरचना

14.1 भूमिका

14.2 उद्देश्य

14.3 अव्यय

14.3.1 संबंधबोधक

14.3.2 समुच्चय बोधक अथवा योजक

14.3.3 विस्मयादिबोधक

स्वयं आकलन प्रश्न

14.4 सारांश

14.5 कठिन शब्दावली

14.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

14.7 संदर्भित पुस्तकें

14.8 सात्रिक प्रश्न

14.1 भूमिका

भाषा विज्ञान के पिछले अध्याय में स्वनिम तथा रूप के स्वरूप का विस्तृत अध्ययन किया गया है। इस अध्याय में संबंध बोधक, समुच्चयबोधक तथा विस्मयादिबोधक रूपों का अध्ययन किया गया है, जो संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, शब्द तथा वाक्य के बीच में संबंध को प्रकट करता है का विस्तृत अध्ययन किया गया है।

14.2 उद्‌देश्य :

(1) सम्बंध बोधक की जानकारी।

(2) समुच्चय बोधक का बोध।

(3) विस्मयादिबोधक का अध्ययन।

14.3 अव्यय

14.3.1 संबंधबोधक (Prepositions)

जो अव्यय संज्ञा या सर्वनाम के साथ जुड़कर वाक्यों के दूसरे शब्दों से उनका संबंध बताते हैं, उन्हें 'सम्बंध बोधक' कहते हैं। जैसे-राजा के सामने कौन आ सकता है। ऋषि के तुल्य देशोपकारक कौन था? भय के मारे उसका चेहरा पीला पड़ गया। उपरिलिखित वाक्यों में सामने, तुल्य और 'मारे' शब्द सम्बंध बोधक अव्यय है।

1. विभक्ति के साथ प्रयुक्त होने वाले-राम की ओर, छत के ऊपर, दीवार के तले, पंडित की कन्या, घर के भीतर, स्कूल से दूर।
2. विभक्तियों के बिना प्रयुक्त होने वाले वर्ष पर्यन्त, मित्र समेत दिनभर बंधुसहित आदि दोनों प्रकार प्रयुक्त होने वाले भगवान के बिना कृष्ण के द्वारा अथवा, कृष्ण द्वारा, प्रशंसा के योग्य अथवा प्रशंसा योग्य संबंधवाचक के वर्गीकरण के तीन आधार है-(1)-प्रयोग, (2) व्युत्पति और (3) अर्थ।

(1) प्रयोग के, अनुसार संबंधसूचक अव्यय के दो भेद हैं: (i) सम्बद्ध और (ii) अनुबद्ध।

(i) सम्बद्ध संबंधसूचक: यह संज्ञा की विभक्ति के साथ आता है और उसके आगे प्रयुक्त होता है। का, के, की, से, परे, आगे-पीछे, बिना और आदि ऐसे ही अव्यय हैं। जैसे-साधु की तरह, कल्पना से परे, मेरे आगे आदि।

(ii) अनुबद्ध संबंधसूचक: यह संज्ञा के विकृत रूप के साथ लगता है। जैसे-किनारे तक बेटों सहित, लोटे भर आदि।

(2) व्युत्पति के अनुसार संबंधसूचक अव्य के दो भेद हैं: (i) मूल और (ii) यौगिक।

(i) **मूल संबंधसूचक:** हिन्दी में इसकी संख्या बहुत कम है। वह हैं-नाई, पूर्वक, बिना, पर्यन्त, तक समेत।

(ii) यौगिक संबंधसूचक: ये दूसरे शब्द-भेदों से बनते हैं। जैसे-संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण, क्रिया से।

(क) संज्ञा से-ओर, अपेक्षा, नाम, विषय, पलटे, लेखे, वास्ते।

(ख) विशेषण से-ऐसा, जैसा, समान, तल्य, उल्टा, योग्य आदि।

(ग) क्रिया विशेषण से भीतर, बाहर, ऊपर, पीछे, यहाँ, पास, परे, नीचे, निकट, दूर, वहाँ, तरफ, पार, आरपार, लगभग आदि।

(घ) क्रिया से-लिए, मारे, करके आदि।

अर्थ के अनुसार संबंधसूचक अव्यय के 13 भेद हैं:

(i) कालवाचक: आगे, पीछे, बाद, पहले, अनन्तर, उपरान्त, लगभग, पश्चात्।

(ii) स्थानवाचक: आगे, पीछे, नीचे, भीतर, बाहर, परे, दूर, समीप, नजदीक।

(iii) दिशावाचक: ओर, पार, तरफ, प्रति, आर-पार, आस-पास।

(iv) **साधनावाचक:** द्वारा, सहारे, करके, हाथ, बल, जबानी, मारफत।

(v) हेतुवाचक: लिए, हित, हेतु, वास्ते, कारण, मारे, खातिर, निमित।

(vi) विषयवाचक: भरोसे, बावत, विषय, नौम, लेखें, जान, निस्बत।

(vii) व्यतिरेकवाचक: अलावा, सिवा, बिना, रहित, बगैर, अतिरिक्त।

(viii) विनिमयवाचक : बदले, पलटे, जगह, एवजन।

(ix) सादृश्यवाचक: समान, तरह, योग्य, भाँति, अनुसार, अनुकूल, तुल्य, अनुरूप, सदृश्य, देखादेखी, मुताबिक।

(x) सहचरवाचक: सहित, समेत, संग, साथ, दश, पूर्वक, अधीन।

(xi) विरोधवाचक: विशुद्ध, विपरीत, उल्टा, खिलाफ।

(ix) सादृश्यवाचक: समान, तरह, योग्य, भाँति, अनुसार, अनुकूल, तुल्य, अनुरूप, सदृश्य, देखादेखी, मुताबिक।

(xii **तुलनावाचक:** अपेक्षा, आगे, सामने, वनिस्वत।

(xiii) संग्रहवाचक: तक, भर, मात्र, पर्यन्त, लौ।

विशेष: 1. आगे, पीछे, योग्य, बिना आदि कई अव्यय बिना विभक्ति के भी आते हैं जैसे-बहुत दिन आगे, पीठ पीछे, लाने योग्य, राम बिना आदि।

2. उर्दू के प्रभाव से कई संबंध सूचकों का संज्ञा के आगे भी प्रयोग होने लगा है। जैसे-बिना परिश्रम के, मारे, प्यास के, सिवा, मोहन के बावजूद इसके आदि।

3. मूल में विशेषण होने वाले आकारान्त संबंध सूचकों के रूप संज्ञा के लिंग, वचन के अनुसार बदल भी जाते हैं। जैसे-कर्ण जैसे दानी, राम जैसा राजा, भरत सरीखे भाई, आप जैसे सज्जन, बिजली की सी चमक आदे।

4. सबंधसूचक अव्यय के साथ कारक चिह्न लगने से वह संज्ञा हो जाता है। जैसे-मंदिर के 'पीछे में' एक विद्यालय है। तुम्हारे 'आगे में' क्या है?

5. स्मरण रहे कि कालवाचक और स्थानवाचक अव्ययों का प्रयोग संज्ञा अथवा सर्वनाम के साथ रहता है। तब उन्हें सबंधबोधक अव्यय कहते हैं और जब उपयुक्त अव्यय किसी क्रिया की विशेषता को प्रकट करे तब उन्हें क्रिया विशेषण कहते हैं। जैसे-

अव्यय-क्रिया विशेषण	**संबंधबोधक**
आगे-आगे बढ़ते चलो।	तुम उसके आगे बढ़ो।
यहाँ-कृष्ण यहाँ आया था।	मोहन ने उसे तुम्हारे यहाँ भेज दिया था।
पहले मेरा काम पहले करो।	उसके आने से पहले करो।
भीतर-भीतर चलो।	मकान के भीतर चल दो।

प्रसिद्ध संबंधबोधक अव्यय और उनका प्रयोग

ऊपर	मकान के ऊपर	समेत	रानी समेत
नीचे	वृक्ष के नीचे	ओर	भगवान की ओर
भीतर	भीतर चलो	समीप	उनके समीप
निकट	मेरे निकट	निमित	देश के निमित
सामने	आपके सामने	तुल्य	ऋषि के तुल्य
योग्य	प्रशंसा के योग्य	पहले	आने से पहले
समान	राम के समान	पीछे	आपके पीछे
द्वारा	भक्तों के द्वारा	सदृश	मेरे सदृश
पास	आपके पास	प्रतिकूल	अपने प्रतिकूल
तक	पाँच साल तक	विरुद्ध	कृष्ण के विरुद्ध
कारण	आपके कारण	अपेक्षा	कृष्ण की अपेक्षा
मध्य	उनके मध्य		

संबंधबोधक पदों की रचना

शुद्ध संबंधबोधक शब्द तो पर, तक, बिना, समेत आदि बहुत अधिक नहीं हैं। अन्य संज्ञा, क्रिया विशेषण तथा क्रिया के योग से बनते हैं।

(क) संज्ञा से-निमित्त, द्वारा, बदले, अपेक्षा, पलटे।

(ख) विशेषण से-जैसा, कैसा, समान, बराबर, तुल्य, समा।

(ग) क्रिया-विशेषण से ऊपर, नीचे, आगे, पीछे।

(घ) क्रिया से- करके, मारे, लिए इत्यादि।

14.3.2 समुच्चय बोधक अथवा योजक (Conjunctions)

जो अव्यय दो शब्दों, वाक्यों अथवा वाक्यांशों को मिलाते हैं, उन्हें समुच्चयबोधक अवयव अथवा योजक कहते हैं। जैसे-राम 'और' हरि जाते हैं। वह आया 'और' में चल पड़ा। वह प्रथम श्रेणी में आता 'किन्तु' बीमार पड़ गया। समुच्चयबोधक अव्यय के दो भेद हैं: (1) समानाधिकरण और (2) व्यधिकरण।

(1) समानाधिकरण - जिस अविकारी शब्द से शब्दों या वाक्यों में योग होता है, उसे समानाधिकरण समुच्चयबोधक अव्यय कहते हैं। इसके चार भेद हैं: (1) संयोजक, (2) विभाजक, (3) विरोध -दर्शक; और (4) परिणामबोधक।

(i) संयोजक: जिस अव्यय से दो शब्दों या वाक्यांशों का मेल सूचित हो, उसे संयोजक अव्यय कहते हैं। मुख्य संयोजन काटर एवं, तथा, भी है।

और: (i) दो समान पदों या वाक्यों को जोड़ने में-राम और श्याम गये। (राम गया + श्याम गया)।

(ii) जोड़ के अर्थ में-शेर के पंजे होते हैं और उनमें नख होते हैं।

(iii) दो विषयों में नित्य सम्बन्ध बोधक में-मैं हूँ और तुम हो (मैं तुम्हारा साथ नहीं छोड़ने वाला हूँ।

(iv) दो क्रियाओं की समकालीनता दिखाने में-बादल गरजा और बिजली चमकी।

एवं: इसका अर्थ 'वैसा'. 'ऐसा' है किन्तु हिन्दी में इन अर्थों में इसका बहुत कम प्रयोग होता है। यह 'और' के पर्याय के रूप में अधिक प्रचलित है। जैसे-यह भवन सुन्दर एवं भव्य है।

तथा: 'और' की द्विरुक्ति से बचने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। जैसे- स्वस्थ रहने के लिए हल्का और पौष्टिक भोजन तथा पर्याप्त विश्राम की आवश्यकता होती है।

भी: (i) पूर्व कथन से सादृष्य मिलाने के लिए-वह साहसी है और बलवान भी।

(ii) अवधारणा के लिए-वर्ग में एक भी छात्र नहीं है। चुप भी रहो।

(iii) आग्रह सूचित करने के लिए-अब उठिए भी। खाओ भी, हटो भी।

(2) विभाजक अव्यय: जिस अव्यय से दो या अधिक वाक्यों या शब्दों में से एक के ग्रहण या दोनों के त्याग का बोध होता है, उसे विभाजक समुच्चयबोधक अव्यय कहते हैं। जैसे-या, वा, अथवा, किंवा नहीं तो, क्या-क्या, चाहे चाहे. न-न नकि आदि।

या, अथवा, किंवा: ये समानार्थी शब्द है-द्विरुक्ति से बचने के लिए इनका प्रयोग होता है। जैसे-राजा का या रानी का अथवा मंत्री का यह काम नहीं हो सकता। किंवा का प्रयोग अधिकतर कविता में होता है।

या-या चाहे चाहे: इनसे अकेले (या चाहे) से अधिक निश्चय का बोध होता है। जैसे-या तो करना है, या मरना है चाहे तुम रहो, चाहे जाओ।

क्या-क्या: यह वाक्य में दो या अधिक शब्दों को विभाजित कर उनका सम्मिलित रूप से उल्लेख करता है। जैसे-क्या मर्द, क्या औरत, क्या बूढ़े, क्या बच्चे सभी महात्मा गाँधी की जय मानते हैं। क्या घर, क्या बाहर, सभी जगह तुम्हारा यही हाल है।

न, न: (i) दो या अधिक शब्दों में से प्रत्येक का त्याग सूचित करता है। जैसे-न भूख. न प्यास, न घर, न बाहर, न घर का, न घाट का।

(ii) आवश्यता प्रकट करता है-न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी।

(iii) कर्म कारण का बोध करता है-न अधिक ऐंठता, न टूटता, न भूकम्प आता, न मकान गिरते।

ना कि इससे दो बातों में से दूसरी का निषेध प्रकट होता है। जैसे-

मैं पढ़ने के लिए रुका हूँ, न कि पेट पालने।

मैं काम करने आया हूँ, न कि गप्प लड़ाने।

नहीं तो: इससे किसी बात के त्याग के परिणाम का बोध होता है। अक्ल से काम लो, नहीं तो हाथ मलोगे। मन लगाकर पढ़ो नहीं तो असफल रह जाओगे।

(3) विरोध दर्शक अव्यय:

ऐसे अव्ययों से दो वाक्यों में विरोध या असमानता सूचित होती है। पर, परन्तु मगर किन्तु वरन बल्कि इत्यादि। इसी श्रेणी के अव्यय है। जैसे-में जाता अवश्य, किन्तु थककर चूर हो गया था। मैं भी बम्बई जाना चाहता हूँ। परन्तु कुछ दिन ठहर कर।

(4) परिणाम दर्शक अवयय :

जिसने किसी कार्य के कारण, परिणाम और उद्देश्य का पता लगता है। इससे सो अत: इसलिए, ताकि जो कि ऐसे ही अव्यय हैं। जैसे-चोर बाजारी बढ़ी, इसलिए अनाज महँगा हो गया।

व्यधिकरण

जिस शब्द या अव्यय के मेल से एक या अधिक आश्रित वाक्य जोड़े जाते हैं, व्यधिकरण समुच्चय बोधक अव्यय कहते हैं। इसके चार भेद हैं:

(क) कारणवाचक: जिससे कारण का बोध होता है। जैसे-क्योंकि, इसलिए, कि चूंकि, कारण आदि। चूँकि मेरा हाथ तंग है, इसलिए में हाथ बँटाने में असमर्थ हूँ।

मै विद्यालय नहीं जा सका, क्योंकि मेरा बच्चा बीमार था।

(ख) उद्देश्यवाचक: कि, जो, ताकि, इसलिए, कि आदि। इन अव्ययों के बाद आने वाला वाक्य दूसरे वाक्य का उद्देश्य सूचित करता है। जैसे-मैं इसलिए परिश्रम करता हूँ कि उन्नति कर सकूँ।

(ग) संकेतवाचक : जो-तो यदि-तो, यद्यपि चाहे, परंतु। इनसे पूर्व वाक्य में वर्णित घटना से उत्तर वाक्य की घटना का संकेत मिलता है। जैसे जो हरिशचंद्र को तेजीभ्रष्ट नहीं किया, तो मेरा नाम विश्वमित्र नहीं।

(घ) स्वरूपवाचक: कि, जो, धनी, मानों अर्थात् आदि। इनके द्वारा जुड़े हुए पहले वाक्य का स्वरूप दूसरे वाक्य से स्पष्ट होता है। जैसे-नौकर ऐसा गुर्रा रहा था। मानों वह मालिक हो।

योजक का पद-परिचय

योजक के पद-परिचय में निम्नलिखित बातों का वर्णन आवश्यक है: (क) उनके रूप का वर्णन; (ख) वाक्यांशों अथवा वाक्यों का निर्देश जिन्हें वे मिलाएँ।

उदाहरण-राम और शाम तो अपने मित्र हैं, अत: इनसे क्या डर है।

और: योजक, 'राम और शाम' का संयोजक है।

तो: योजक, संकेत बोधक 'राम और शाम' अपने मित्र तथा 'इनसे क्या डर है' को मिलाता है।

अत: योजक, कारण, सूचक 'राम और शाम' अपने मित्र हैं।

14.3.3 विस्मयादिबोधक (Interjections)

जिससे हर्ष, शोक, लज्जा, विस्मय आदि मनोभाव प्रकट हों. उसे विस्मयादिबोधक अव्यय कहते हैं। जैसे-हाय! मैं तो लुट गया। अहा! कैसे सुन्दर प्रभात। अरे! ऐसा न करो।

विस्मयादिबोधक के मुख्य भेद नीचे दिये जाते हैं:

(i) हर्षबोधक-जिससे हर्ष, शोक, लज्जा, विस्मय) आदि।

(ii) शोक बोधक-आह, हाय, त्राहि, राम-राम, बाप रे।

(iii) आश्चर्यबोधक-ओ हो, अहो, है, क्या।

(iv) स्वीकृति बोधक-अस्तु, ठीक, हाँ, जी हाँ।

(v) सम्बोधन बोधक-अरे, अजी, ओ।

(vi) तिरस्कार बोधक- धिक, छि:, हट, परे, दूर, चुप।

(vii) क्रोध बोधक-क्या, हट, बस, बस।

(viii) भय बोधक-हे परमात्मा, त्राहि-त्राहि, हे राम।

(ix) ग्लानि बोधक-छि:, अरे, धिक, थू, दूर

स्वयं आकलन के प्रश्न

(1) सम्बधबोधक किसे कहते हैं ?

(2) विस्मयादिबोधक किसे कहते है ?

(3) समुचयबोधक किसे कहते है ?

14.4 सारांशः

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि भाषा के संवर्द्धन के लिए संज्ञा सर्वनाम तथा पद की आवश्यकता रहती है। साथ ही सता और सर्वनाम या शब्द का शब्द के साथ क्या सम्बंध है? यह निर्णय संबंध बोधक, समुच्यबोधक शब्द प्रकट करते हैं।

14.5 कठिन शब्दावली

(1) सम्बध – दो शब्द के बीच संबंध को प्रकट करना।

(2) विस्मयादिबोधक – जिस शब्द के माध्यम से हर्ष, शोक आदि प्रकट होते हैं।

(3) सम्मुच्यबोधक : ऐसे चिन्ह जो दो पद या वाक्य को आपस में मिलाते हो।

14.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

(1) उत्तर – जो दो पदों के बीच के संबंध को प्रकट करता हो।

(2) उत्तर – ऐसे पद जिसके माध्यम से व्यक्ति के हर्ष, शोक आदि भाव का बोध हो।

(3) उत्तर – ऐसे चिन्ह जो संज्ञा, सर्वनाम को आपस में मिलाते हैं।

14.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) भोलानाथ तिवारी – भाषा विज्ञान।

(2) तिलक सिंह – नवीन भाषा विज्ञान।

14.8 सात्रिक प्रश्न

(1) संबंधबोधक को सोदाहरण स्पष्ट करें।

(2) विस्मयादिबोधक के स्वरूप को स्पष्ट करें।

(3) समुच्यबोधक शब्द का उदाहरण सहित अर्थ लिखे।

*****

इकाई–15

लिंग

संरचना

15.1 भूमिका

15.2 उद्देश्य

15.3 लिंग का स्वरूप

15.3.1 लिंग के भेद

15.3.2 लिंग विश्लेषण प्रक्रिया

15.3.3 वाक्य में लिंग-निर्णय

15.3.4 संस्कृत पुल्लिंग शब्द

15.3.5 अर्थ के अनुसार लिंग निर्णय

15.3.6 उर्दू-शब्दों का निर्णय लिंग निर्णय

15.3.7 अंग्रेजी शब्दों का लिंग निर्णय

15.3.8 लिंग निर्णय के कुछ सरल सूत्र

15.3.9 पुल्लिंग-स्त्रीलिंग बनाने के नियम और प्रत्यय

15.3.10 लिंग कोष

स्वयं आकलन के प्रश्न

15.4 सारांश

15.5 कठिन शब्दावली

15.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उतर

15.7 संदर्भित पुस्तकें

15.8 सात्रिक प्रश्न

15.1 भूमिका :

पिछले अध्याय में हमने व्याकरण के विषय में अध्यापन किया जिसमें व्याकरण का स्वरूप तथा व्याकरण की कोटियों का अध्ययन किया। उन व्याकरण की कोटियों में से एक कोटि लिंग भी है। लिंग किस व्यक्ति या शब्द की जाति का बोध करवाता है। इस अध्याय में हम लिंग तथा इसके भेदों की चर्चा की है।

15.2. उद्देश्य

(1) लिंग के स्वरूप की जानकारी।

(2) लिंग के भेदों का बोध।

(3) लिंग विश्लेषण के स्वरूप का बोध।

15.3 लिंग का स्वरूप

शब्द की जाति को लिंग कहते हैं, लिंग संस्कृत भाषा का एक शब्द है जिसका अर्थ होता है, 'चिह्न या निशान चिह्न या निशान किसी संज्ञा का ही होता है, वस्तु पुरुष जाति की होगी अथवा स्त्री जाति की, इसलिए संज्ञा पुल्लिंग होगी या स्त्रीलिंग. अतः संज्ञा के जिस रूप से वस्तु की जाति (पुरुष या स्त्री) का बोध होता है, उसे लिंग कहते हैं.

15.3.1 लिंग के भेद

सम्पूर्ण वस्तुओं की तीन जातियाँ होती हैं, इन तीन जातियों के विचार से व्याकरण में उनके संज्ञावाचक शब्दों को तीन लिंगों में बाँटते हैं- (1) पुल्लिंग, (2) स्त्रीलिंग और (3) नपुंसक लिंग, संस्कृत, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में तीन लिंग होते हैं, अंग्रेजी में भी लिंग का निर्णय प्रायः उक्त व्यवस्था के अनुसार होता है।

कुछ जड़ पदार्थों को उनके विशिष्ट गुणों के कारण सचेतन मान लेते हैं. तदनुसार उनको पुल्लिंग या स्त्रीलिंग कहते हैं, परन्तु हिन्दी में लिंग के विचार से जड़ पदार्थ कोई है ही नहीं, सब सचेतन हैं; इसलिए हिन्दी में नपुंसक लिंग (Neuter gender) नहीं है, केवल दो ही लिंग हैं-पुल्लिंग लिंग और स्त्रीलिंग।

15.3.2 लिंग विश्लेषण प्रक्रिया

हिन्दी में लिंग निर्णय दो प्रकार से किया जाता है- (1) शब्द के अर्थ के अनुसार और (2) शब्द के अनुसार. इस सम्बन्ध में सामान्य नियम यह है कि बहुधा प्राणिवाचक शब्दों का लिंग अर्थ के अनुसार और अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग रूप के अनुसार निश्चित किया जाता है। शेष शब्दों का लिंग केवल व्यवहार के अनुसार माना जाता है।

जिस संज्ञा से पुरुषत्व का बोध होता है, उसे पुल्लिंग कहते हैं, जैसे-लड़का, बैल, नगर, पेड़ आदि. इनमें लड़का और बैल यथार्थ पुरुषत्व सूचित करते हैं तथा पेड़ और नगर कल्पित पुरुषत्व का बोध कराते हैं।

जिस संज्ञा से स्त्रीत्व का बोध होता है, उसे स्त्रीलिंग कहते हैं, जैसे-लड़की, घोड़ी मेज, कुर्सी इत्यादि इनमें लड़की और घोड़ी से यथार्थ स्त्रीत्व का बोध होता है तथा मेज, कुर्सी द्वारा कल्पित स्त्रीत्व का बोध होता है।

जिन प्राणिवाचक संज्ञाओं द्वारा जोड़े का ज्ञान होता है, उनमें पुरुषवाचक संज्ञाएँ पुल्लिंग और स्त्रीवाचक संज्ञाएँ स्त्रीलिंग होती हैं, जैसे-नर, घोड़ा, बैल इत्यादि पुल्लिंग हैं और घोड़ी गाय इत्यादि स्त्रीलिंग हैं।

विशेष (1) कुछ मनुष्येतर प्राणिवाचक संज्ञाओं से दोनों जातियों का बोध होता है, परन्तु व्यवहार के अनुसार वे नित्य पुल्लिग या स्त्रीलिंग होती हैं, जैसे-

पुल्लिंग-पक्षी, उल्लू, कौआ, भेड़िया, चीता, खटमल इत्यादि।

स्त्री-चील, चिड़िया, कोयल, लोमड़ी, मछली, तितली, जोंक, मैना इत्यादि।

(II) प्राणियों के समुदायवाचक नाम भी व्यवहार के अनुसार पुल्लिंग अथवा स्त्रीलिंग होते हैं, जैसे-

पुल्लिंग-समूह, झुण्ड, दल, संघ, मण्डल इत्यादि।

स्त्री-सभा, टोली, पंचायत, सरकार, फौज, इत्यादि।

(III) हिन्दी में अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग-निर्णय हिन्दी में विशेष कठिनाई उत्पन्न करता है. यह लिंग प्रायः व्यवहार अधीन रहता है। अर्थ और रूप दोनों ही साधनों से इन शब्दों का लिंग जानने में कठिनाई होती हैं, जैसे-हाथी, दही, बूरा, अखबार इत्यादि।

(IV) कुछ वैयाकरण अप्राणिवाचक संज्ञाओं के अर्थ के अनुसार लिंग-निर्णय के लिए स्वनिर्मित कुछ नियमों का सहारा लेते हैं-इनमें प्रत्येक के अनेक अपवाद दिखाई देते हैं, जैसे-कुछ वैयाकरणों के अनुसार अप्राणिवाचक शब्द अर्थ के अनुसार पुल्लिंग हैं-बाल, सिर, कान, तालू, मस्तक आदि। इनके अपवाद अन्य शरीरांग ही हैं-आँख, नाक, जीभ, जाँघ इत्यादि।

(V) यह भी देखने को मिलता है कि एक ही शब्द एक लेखक की पुस्तकों में अलग- अलग लिंगों में आता है, जैसे-देह ठंडी पड़ गई, उसके सब देह में खुजली है।

(VI) अर्थ के अनुसार ये शब्द स्त्रीलिंग हैं-

नदियों के नाम-गंगा, गोमती, नर्मदा, यमुना, कृष्णा आदि।

अपवाद-पुत्र, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र इत्यादि।

15.3.3 वाक्यों में लिंग-निर्णय

हिन्दी में लिंग की अभिव्यक्ति वाक्यों में होती है, तभी संज्ञा शब्दों का लिंग भेद स्पष्ट होता है. वाक्यों में लिंग, विशेषण, सर्वनाम, क्रिया और विभक्तियों में विकार उत्पन्न करता है, जैसे-

विशेषण में

मोटा-सा आदमी-पुल्लिंग

बड़ा मकान-पुल्लिंग

बड़ी पुस्तक-स्त्रीलिंग

छोटी लड़की-स्त्रीलिंग

टिप्पणी-हिन्दी में विशेषण का लिंग भेद इन नियमों के अनुसार किया जा सकता है-

(क) अकारान्त विशेषण स्त्रीलिंग में ईकारान्त हो जाता है, जैसे-अच्छा-अच्छी, काला-काली, उजला-उजली, भला-भली, पीली-नीली।

(ख) अकरान्त विशेषणों के रूप दोनों लिंगों में समान होते हैं, जैसे-मेरी टोपी गोल है, मेरा कोट काला है, उसका स्वरूप सुन्दर है, लड़की सुन्दर है।

	सर्वनाम में
मेरी पुस्तक	पुस्तक स्त्रीलिंग सर्वनाम के अनुसार
तुम्हारी जेब	जेब स्त्रीलिंग सर्वनाम के अनुसार
उसकी कलम	कलम स्त्रीलिंग सर्वनाम के अनुसार
मेरा घर	घर पुल्लिंग सर्वनाम के अनुसार
तुम्हारा कोट	कोट पुल्लिंग सर्वनाम के अनुसार

उसका स्कूल	स्कूल पुल्लिंग सर्वनाम के अनुसार
बुढ़ापा आ गया	बुढ़ापा पुल्लिंग क्रिया के अनुसार
भात पका है	भात पुल्लिंग क्रिया के अनुसार
रोटी बनी	रोटी स्त्रीलिंग क्रिया के अनुसार
सहायता मिली	सहायता स्त्रीलिंग क्रिया के अनुसार विभक्ति में
सम्बन्ध-केवड़ा का रंग	रंग पुल्लिंग विभक्ति के अनुसार
आपकी नाक	नाक स्त्रीलिंग विभक्ति के अनुसार
आपका चरित्र	चरित्र पुल्लिंग विभक्ति के अनुसार

15.3.4 संस्कृत पुल्लिंग शब्द

श्री कामता प्रसाद गुरु ने संस्कृत शब्दों के लिंग को पहचानने के निम्नलिखित नियम बनाए हैं-

(अ) जिन शब्दों के अन्त में त्र होता है, जैसे-इत्र, क्षेत्र, पात्र, नेत्र, अस्त्र, शस्त्र, चरित्र, मित्र, गोत्र आदि.

(आ) नान्त संज्ञाएँ, जैसे-पालन, पोषण, दमन, वचन, नयन, गमन, हरण, विघटन, विसर्जन, विधान, पालन, आक्रमण, पर्यावरण, पर्यवेक्षण, निर्माण, प्रशिक्षण, प्रतिशोषण, वेदन, परिवहन, आदि.

अपवाद-पवन उभयलिंग है.

(इ) ज प्रत्यन्त संज्ञाएँ, जैसे-जलज, स्वेदज, पिंडज, सरोज, उरोज, मलयज, अम्बुज आदि.

(ई) होता है, जैसे- सतीत्व, नारीत्व, नृत्य, पाण्डित्य, कृतित्व, लाघव, गौरव, माधुर्य, स्त्रीत्व आदि।

(उ) जिन भाववाचक संज्ञाओं के अंत में त्व, त्य, व, य होता है जैसे-सतीत्व, नारीत्व, नृत्य, पाण्डित्य, कृत्य, लाघव, गौरव, माधुर्य, स्त्रीत्व आदि।

(उ) जिन शब्दों के अन्त में आर, आय वा आस हो, जैसे-विकार, विस्तार, संसार, उपाय, उपाध्याय, समुदाय, उल्लास, विकास, हास, पुकार, प्रहार, विहार, सार, प्रचार, अध्याय, स्वाध्याय, उपहार, मास आदि।

अपवाद-सहाय (उभयलिंग), आय (स्त्रीलिंग)

(ऊ) प्रत्यात संज्ञाएँ, जैसे-क्रोध, मोह, पाक, त्याग, दोष, स्पर्श, स्वदेश, लोभ, बोध।

अपवाद-जय (स्त्रीलिंग), विनय (उभयलिंग) इत्यादि।

(ऋ) 'त' प्रत्यांत संज्ञाएं जैसे चारित, गणित, फलित, मत, गीत, स्वागत आदि।

(ए) जिनके अन्त में व होता है, जैसे-नख, मुख, सुख, दु:ख, लेख, मख, शंख आदि।

संस्कृत स्त्रीलिंग शब्द-श्री कामता गुरु के व्याकरण के आधार पर इस संदर्भ में निम्नलिखित नियम दिए जा रहे हैं-

(अ)आकारान्त संज्ञाए- जैसे दया, कृपा, माया, लज्जा, क्षमा, शोभा, शोभना, आशा, तृष्णा, कमला, विमला, त्रिशला।

(आ) नाकारांत संज्ञाएँ- जैसे-प्रार्थना, वेदना, प्रस्तावना, रचना, घटना इत्यादि।

(इ) उकारान्त संज्ञाएं- जैसे वायु, रज्जु, रेणु, जानु, मृत्यु, आयु, वस्तु, धातु, ऋतु आदि।

अपवाद-इसके अनेक अपवाद हैं जैसे मधु, अश्रु, तालु, मेरु, हेतु, सेतु इत्यादि।

(ई) जिनके अन्त में ति, वा नि हो, जैसे-गति, मति, रीति, हानि ग्लानि, यौनि, बुद्धि, ऋद्धि, सिद्धि इत्यादि।

(उ) ता प्रत्यायान्त भाववाचक संज्ञाएँ, जैसे-नम्रता, लघुता, सुन्दरता, प्रभुता, जड़ता इत्यादि।

(ऊ) **इकारान्त संज्ञाएं-** जैसे निधि, विधि, परिधि, राशि, अग्नि, छवि, केलि, रुचि, इत्यादि।

अपवाद- वारि, जलाधि, पाणि, गिरि, अद्रि, आदि, बल इत्यादि।

तद्भव (हिन्दी) शब्दों का लिंग निर्णय

तद्भव शब्दों के लिंगनिर्णय में अधिक कठिनाई होती है. तद्भव शब्दों का लिंग भेद, वह भी अप्राणिवाचक शब्दों का, कैसे किया जाए और इसके सामान्य नियम क्या हों, इसके बारे में विद्वानों में मतभेद है. पण्डित कामता प्रसाद गुरु ने हिन्दी के तद्भव शब्दों को परखने के लिए पुल्लिंग के तीन और स्त्रीलिंग के दस नियमों का उल्लेख 'हिन्दी व्याकरण' में किया है. वे नियम इस प्रकार हैं-

तद्भव पुल्लिंग शब्द

(अ) अनवाचक संज्ञाओं को छोड़कर शेष आकारांत संज्ञाएँ, जैसे-कपड़ा, गन्ना, पैसा, पहिया, आटा, चमड़ा इत्यादि।

(आ) जिन भाववाचक संज्ञाओं के अन्त में ना, आव, पन, वा, पा, होता है, जैसे-आना, गाना, बहाव, चढ़ाव, बड़प्पन, बुढ़ापा इत्यादि।

(इ) कृदन्त की आनान्त संज्ञाएँ, जैसे-लगान, मिलान, खान, पान, नहान, उठाव इत्यादि।

अपवाद- उड़ान, चट्टान इत्यादि।

तद्भव स्त्रीलिंग शब्द

(अ) ईकारान्त संज्ञाएं - जैसे नदी, चिट्ठी, रोटी, टोपी, उदासी, इत्यादि।

अपवाद-घी, जी, मोती, दही इत्यादि.

(आ) ऊवाचक याकारान्त संज्ञाएँ, जैसे गुड़िया, खटिया, टिबिया, पुड़िया, डिलिया इत्यादि

(इ) तकारान्त संज्ञाएँ, जैसे-रात, बात, लात, छत, भीत, पत इत्यादि

अपवाद-भात, खेत, सूत, गात, दाँत इत्यादि.

(ऊ) सकारान्त संज्ञाएँ, जैसे-प्यास, मिठास, निदास, रास (लगाम), बाँस, साँस इत्यादि

अपवाद-निकास, काँस, रास (नृत्य)

(ऋ) कृदन्त नकारान्त संज्ञाएं, जिनका उपान्त्य वर्ण अकारान्त हो अथवा जिनकी धातु नकारान्त हो जैसे रहन, सूजन, जलन, उलझन, पहचान इत्यादि।

अपवाद-चलन इत्यादि.

(ए) कृदन्त की अकारान्त संज्ञाए जैसे लूटमार, समझ, दौड़, संभाल, रगड़, चमक, छाप, पुकार इत्यादि।

अपवाद- नाच, मेल, बिगाड़, बोल, उतार इत्यादि

(ऐ) जिन भाववाचक संज्ञाओं के अन्त में ट, वट, हट होता है। जैसे सजावट, घबराहट, चिकनाहट, आहट, झंझट इत्यादि.

(ओ) जिन संज्ञाओं के अन्त में 'ख' होता है, जैसे-ईख, भूख, राख, चीख, काँख, कोख, साख, देख रेख इत्यादि।

अपवाद-पंख, रुख।

15.3.5 अर्थ के अनुसार लिंग निर्णय

कुछ लोग अप्राणिवाचक शब्दों को लिंग भेद अर्थ के अनुसार करते हैं. पं. कामताप्रसाद गुरु ने इस आधार और दृष्टिकोण को 'अव्यापक और अपूर्ण' कहा है, क्योंकि इनके जितने उदाहरण हैं, प्रायः उतने ही अपवाद हैं, इसके अलावा इसके जो थोड़े से नियम बने हैं, उनमें सभी तरह के शब्द सम्मिलित नहीं होते। गुरुजी ने इस सम्बन्ध में जो नियम और उदाहरण दिए हैं, उनमें भी अपवादों की भरमार है। उन्होंने जो भी नियम दिए हैं. वे बड़े जटिल और अव्यावहारिक हैं. यहाँ इन नियमों का उल्लेख किया जा रहा है-

(क) अप्राणिवाचक पुल्लिंग हिन्दी शब्द

(1) शरीर के अवयवों के नाम पुल्लिंग होते हैं, जैसे–कान, मुँह, दाँत, ओठ, पाँव, हाथ, गाल, मस्तक, तालु, बाल, अँगूठा, मुक्का, नाखून, नयना, गट्टा इत्यादि।

अपवाद–कोहनी, कलाई, नाक, आँख, जीभ, ठोड़ी, खाल, बाँड, नस, हड्डी, इन्द्रिय, काँख इत्यादि।

(2) रत्नों के नाम पुल्लिंग होते हैं. जैसे–मोती, माणिक, पन्ना, हीरा, जवाहर, मूँगा, नीलम, पुखराज, लाल इत्यादि।

अपवाद– मणि, चुन्नी, लाडली आदि।

(3) धातुओं के नाम पुल्लिंग होते हैं, जैसे–ताँबा, लोहा, सोना, सीसा, काँसा, राँगा, पीतल, रूपा, टीन इत्यादि.

अपवाद–चाँदी

(4) अनाज के नाम पुल्लिंग होते हैं, जैसे–जौ, गेहूं, चावल, बाजरा, चना, मटर, तिल इत्यादि

अपवाद–मकई, जुआर, मूँग, खेसारी इत्यादि

(5) पेड़ों के नाम पुल्लिंग होते हैं, जैसे–पीपल, बड़ देवदार, थीड़, आम, शीशम, सागौन, कटहल, अमरूद, शरीफा, नीबू,

अपवाद – चाय, स्याही, इत्यादि।

अपवाद–लीची, नाशपाती, नारंगी, खिरनी इत्यादि।

(6) द्रव पदार्थों के नाम पुल्लिंग होते हैं, जैसे–पानी, पी, तेल, अर्क, शर्बत, इत्र, सिरका, आसव, काढ़ा, रायता इत्यादि।

अपवाद–चाय, ऐश, शराब।

(7) भौगोलिक जल और स्थल आदि अंशों के नाम प्रायः पुल्लिंग होते हैं, जैसे–देश, नगर, रेगिस्तान, द्वीप, पर्वत, समुद्र, सरोवर, पाताल, वायुमण्डल, नभोमण्डल, प्रान्त इत्यादि. अपवाद–पृथ्वी, झील, घाटी इत्यादि।

(ख) अप्राणिवाचक स्त्रीलिंग हिन्दी शब्द

(1) नदियों के नाम स्त्रीलिंग होते हैं, जैसे–गंगा, यमुना, महानदी, गोदावरी, सतलुज, रावी, व्यास, झेलम इत्यादि।

अपवाद–शोण, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र नदी हैं, मूलतः पुल लिंग हैं।

(2) नक्षत्रों के स्त्रीलिंग होते हैं, जैसे–भरणी, अश्विनी, रोहिणी इत्यादि।

अपवाद–अभिजित, पुष्प आदि।

(3) बनिये की दुकान की चीजें स्त्रीलिंग हैं, जैसे–लौंग, इलायची, मिर्च, दालचीनी, चिरौंजी, हल्दी, जावित्री, सुपारी, हींग इत्यादि।

अपवाद–धनिया, जीरा, गर्म मसाला, नमक, तेजपत्ता, केसर, कपूर इत्यादि।

(4) खाने-पीने की चीजें स्त्रीलिंग हैं, जैसे–कचौड़ी, पूरी, खीर, दाल, पकौड़ी, रोटी, चपाती, तरकारी, सब्जी, खिचड़ी इत्यादि।

अपवाद–पराठा, हलुआ, भात, दही, रायता इत्यादि।

प्रत्ययों के आधार पर तद्भव हिन्दी शब्दों का लिंग निर्णय–हिन्दी के कृदन्त और तद्धित– प्रत्ययों में स्त्रीलिंग–पुल्लिंग बनाने वाले अलग–अलग प्रत्यय इस प्रकार हैं–

स्त्रीलिंग कृदंत प्रत्यय

अ, अन्त, आइ, आन, आवर, आस, आहट, ई, औती, आवनी, क, की, त, ती, नी इत्यादि हिन्दी कृदन्त–प्रत्यय जिन धातु शब्दों में लगे होते हैं, वे स्त्रीलिंग होते हैं, जैसे–लूट, चमक, देन, भिड़न्त, लड़ाई, लिखावट, प्यास, घबराहट, हँसी, मनौती, छावनी, बैठक, फुटकी, बचत, गिनती, करनी, भरनी।

द्रष्टव्य-इन स्त्रीलिंग कृदन्त प्रत्ययों में अ, क, और न प्रत्यय कहीं-कहीं पुल्लिंग में भी आते हैं और कभी-कभी इनसे बने शब्द उभयलिंग भी होते हैं, जैसे-'सीवन' ('नश्-प्रत्ययान्त') क्षेत्र भेद से दोनों लिंगों में चलता है. शेष सभी प्रत्यय स्त्रीलिंग हैं।

पुल्लिंग कृदन्त-प्रत्यय

अक्कड़, आ, आऊ, आक, आकू, आप, आपा, आव, आवना, आवा, इयल, इया, ऊ, एस, ऐया, ऐत, औता, औना, औवल, क, का, न, वाला, वैया, सार, हा इत्यादि हिन्दी कृदन्त, प्रत्यय जिन धातु शब्दों में लगे हैं, वे पुल्लिंग होते हैं, जैसे-पियक्कड़, घेरा, तैराक पजाप, पुनाव, छलावा, लुटेरा, कटैया लड़ैत, समझौता, खिलौना, बुझौवल, घालक, छिलका, खान-पान, खाने वाला, गवैया।

द्रष्टव्य-(1) क और न कृदन्त-प्रत्यय उभयलिंग हैं, इन दो प्रत्ययों और स्त्रीलिंग प्रत्ययों को छोड़ शेष सभी पुल्लिंग हैं. (2) 'सार' उर्दू का कृदन्त-प्रत्यय है, जो हिन्दी में फारसी से आया है, मगर काफी प्रयुक्त है।

स्त्रीलिंग तद्धित-प्रत्यय

आई, आवट, आप्स, आहट, इन, एली, औड़ी, औटी, औती, की, टी, डी, त, ती, नी री, ल, ली इत्यादि हिन्दी तद्धित-प्रत्यय जिन शब्दों में लगे होते हैं, वे स्त्रीलिंग होते हैं, जैसे-भलाई, जमावट, हवेली, टिकली, चमड़ी।

पुल्लिंग तद्धित-प्रत्यय

आई, आवट, आस, आहट, इन, एली, औड़ी, औटी, औती, की, टी. ड़ी, त, ती, नी, री, ल, ली इत्यादि हिन्दी तद्धित-प्रत्यय जिन शब्दों में लगे होते हैं, वे स्त्रीलिंग होते हैं, जैसे-भलाई, जमावट, हथेली, टिकली, चमड़ी।

पुल्लिंग तद्धित-प्रत्यय

आ, आऊ, आका, आटा, आना, आर, इयल, आल, आड़ी, आरा, आलू, आसा, ईला, उआ, अ, एरा, एड़ी, ऐत, एला, ऐला, ओटा, ओट, औड़ा, ओला, का गा, टा, ड़ा, ता, पना, पन, पा, ला, वन्त, वान, वाला, वाँ, वा, लरा सों, हर, हरा, हा, हारा, इत्यादि हिन्दी तद्धित प्रत्यय जिन शब्दों में लगे होते हैं वे शब्द पुल्लिंग होते हैं।

जैसे-धमाका, खर्राटा, पैताना, भिखारी, हत्यारा, मुँहासा, मछुआ, सँपेरा, गॅजेड़ी, डकैत, चमोटा, लँगोटा, हथौड़ा, रायता, कालापन, बुढ़ापा, गाड़ीवान, टोपीवाला, छठा, इमार, खण्डर, पीहर, इकहरा, चुड़िहार।

दृष्टव्य-(1) इया, ई, एर, एल, क तद्धित उभयलिंग है जैसे

प्रत्यय	**पद**	**तद्धित पद**	
इया,	मुख	मुखिया	(पुल्लिंग)
	खाट	खटिया (ऊनवाचक)	(स्त्रीलिंग)
ई	डोर	डोरी	(स्त्रीलिंग)
	मूड़	मुंडेर	(स्त्रीलिंग)
एर	अँध	अंधेर	(पुल्लिंग)
एल	फूल	फुलेल	(पुल्लिंग)
	नाक	नकेल	(स्त्रीलिंग)
क	पंच	पंचक	(पुल्लिंग)
	ठंड	ठण्डक	(स्त्रीलिंग)

(2) विशेषण अपने विशेष के अनुसार होता है, जैसे-'ल' तद्धित-प्रत्यय संज्ञा शब्दों में लगने पर उन्हें स्त्रीलिंग कर देता है, मगर विशेषण में - 'घाव + ल घायल' अपने विशेष्य के अनुसार होगा, अर्थात विशेष्य स्त्रीलिंग हुआ तो 'घायल' स्त्रीलिंग और पुल्लिंग हुता तो पुल्लिंग

(3) 'क' तद्धित प्रत्यय स्त्रीलिंग है, किन्तु संख्यावाचक के आगे लगने पर उसे पुल्लिंग कर देता है, जैसे-चौक, पंचक (पुल्लिंग) और ठण्डक, धमक (स्त्रीलिंग) 'आन' प्रत्यय भाववाचक होने पर शब्द को स्त्रीलिंग करता है, किन्तु विशेषण में विशेष्य के अनुसार, जैसे-लम्बा + आन = लम्बान (स्त्रीलिंग)

(4) अधिकतर भाववाचक और अनवाचक प्रत्यय स्त्रीलिंग होते हैं.

15.3.6 उर्दू-शब्दों का लिंग निर्णय

उर्दू से होते हुए हिन्दी में अरबी-फारसी के बहुत से शब्द आये हैं, जिनका व्यवहार हम प्रतिदिन करते हैं। इन शब्दों का लिंग भेद निम्नलिखित नियमों के अनुसार किया जाता है -

पुल्लिंग उर्दू शब्द

(1) जिनके अन्त में 'आव' हो, वे पुल्लिंग हैं, जैसे-गुलाब, जुलाब, हिसाब, जवाब, कवाब

अपवाद-शराब, मिहराव, किताब, तब, किमखाब इत्यादि

(2) आकारान्त शब्द पुल्लिंग है, जैसे परदा, गुस्सा, किस्सा, रास्ता, चश्मा, तमगा (मूलतः ये शब्द विसर्गात्मक हकरान्त उच्चारण के हैं) जैसे परदः, तमगा, तमगा, किन्तु हिन्दी में ये 'परदा', 'तमगा' के रूप में आकारान्त ही उच्चारित होते हैं।

अपवाद-दफा

स्त्रीलिंग उर्दू शब्द

(1) ईकारान्त भाववाचक संज्ञाएँ स्त्रीलिंग होती हैं, जैसे-गरीबी, नरमी, सखी, बीमारी, चालाकी, तैयारी, नवाबी इत्यादि

(2) शकारान्त संज्ञाएँ स्त्रीलिंग होती हैं, जैसे-नालिश, कोशिश, लाश, तलाश, वारिश, मालिश इत्यादि।

अपवाद-ताश, होश इत्यादि।

(3) आकारान्त संज्ञाएँ स्त्रीलिंग होती हैं, जैसे-हवा, दवा, सजा, दुनिया, दगा इत्यादि.

अपवाद-मजा इत्यादि।

(4) तकारान्त संज्ञाएँ स्त्रीलिंग होती हैं, जैसे-दौलत, कसरत, अदालत, इजाजत, कीमत, मुलाकात इत्यादि।

अपवाद-शरबद, दस्तखत, बन्दोबस्त, वक्त, तख्त, दरख्त इत्यादि।

(5) हकारान्त संज्ञाएँ स्त्रीलिंग होती हैं, जैसे-सुबह, तरह, राह, आह, सलाह, सुलह, इत्यादि।

(6) 'तफईल' के वजन की संज्ञाएँ स्त्रीलिंग होती हैं, जैसे-तस्वीर, तामील, जागीर, तहसील इत्यादि।

15.3.7 अंग्रेजी शब्दों का लिंग निर्णय

विदेशी शब्दों में उर्दू (फारसी और अरबी) शब्दों के बाद अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी हिन्दी में कम नहीं होता जहाँ तक अंग्रेजी शब्दों के लिंग निर्णय का प्रश्न है, मेरी समझ से इसमें कोई विशेष कठिनाई नहीं है, क्योंकि हिन्दी में अधिकतर अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग पुल्लिंग में होता है। इस निष्कर्ष की तुष्टि नीचे दी गई शब्द सूची से हो जाती है।

अतः इन शब्दों के तथाकथित मनमाने प्रयोग बहुत अधिक नहीं हुए हैं. ऐसा मत है कि इन शब्दों के लिंग निर्णय में रूप के आधार पर अकारान्त, आकारान्त और ओकरान्त को पुल्लिंग और ईकारान्त को स्त्रीलिंग समझना चाहिए, फिर भी, इसके कुछ अपवाद तो हैं ही अंग्रेजी के 'पुलिस' (Police) शब्द के स्त्रीलिंग होने पर प्रायः आपत्ति की जाती है. मेरा विचार है कि यह शब्द न तो पुल्लिंग है और न स्त्रीलिंग. सच तो यह है कि (Friend) की तरह उभयलिंग है. अब तो स्त्री भी 'पुलिस' में भर्ती होने लगी है. ऐसी अवस्था में जहाँ पुरुष पुलिस का काम करता है,

वहाँ 'पुलिस' पुल्लिंग में और जहाँ स्त्री पुलिस का काम करेगी, वहाँ उसका व्यवहार स्त्रीलिंग में होना चाहिए. हिन्दी में ऐसे शब्दों की कमी नहीं है, जिनका प्रयोग दोनों लिंगों में अर्थभेद के कारण होता है, जैसे–टीका, हार, पीठ इत्यादि।

लिंग निर्णय के साथ हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले अंग्रेजी शब्दों की सूची निम्नलिखित है–

अंग्रेजी के पुल्लिंग शब्द

अकारान्त–ऑर्डर, ऑयल, ऑपरेशन, इंजिन, इंजीनियर, इंजेक्शन, एडमिशन, एक्सप्रेस, एक्सरे, क्लास, कोट, कैलेण्डर, कैरम, कॉलेज, केसे, क्लिप, गैस, ग्लास, चेन, चार्टर, टार्च, ट्यूब, टेलीफोन, टाइमटेबुल, ट्रांजिस्टर, टैक्स, टूथपाउडर, डिवीजन, ड्राइंग रूम, थर्मस, पार्क, पोस्टर, पार्लियामेण्ट, परमिट, प्रोविडेण्ट, प्लास्टर, पार्सल, बैडमिन्टन, बाथरूम, ब्राडकास्ट, बाण्ड, रूल, रिवेट, हँगर, हैण्डिल, लेटर।

आकारान्त–कोटा, कैमरा, सिनेमा, प्रोपैगैण्डा, मलेरिया

ओकारांत–रेडियो, फोटो, स्रो।

अंग्रेजी के स्त्रीलिंग शब्द

ईकारान्त–एसेम्बली, कम्पनी, गैलरी, डिग्री, ट्रेजेडी, म्युनिसिपैलिटी, बार्ली, लैबोरेटरी.

अंग्रेजी के स्त्रीलिंग शब्द

ईकारान्त–एसेम्बली, कंपनी, गैलरी, डिग्री, ट्रेजेडी, म्युनिसिपैलिटी, बाली, लैबोरेटरी।

अंग्रेजी के स्त्रीलिंग शब्द

हिन्दी के कुछ ऐसे अनेकार्थी शब्द प्रचलित हैं, जो एक अर्थ में पुल्लिंग और दूसरे अर्थ में स्त्रीलिंग होते हैं ऐसे शब्द 'उभयलिंगी' कहलाते हैं. कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

शब्द		**अर्थ**	**वाक्य**
कल	(हिन्दी पु.)	आगामी दिन	तुम्हारा कल कब आएगा
	(हिन्दी स्त्री.)	चैन, आराम	रोगी को अभी कल पड़ी है
टीका	(हिन्दी पु.)	तिलक, भेंट	कल टीका लगेगा
	(संस्कृत पु.)	टिप्पणी, अर्थ	आपकी टीका अच्छी है
पीठ	(संस्कृत पु.)	पीठा, स्थान	यह विद्या का पीठ है
	(हिन्दी स्त्री)	पृष्ठ भाग	हमारी पीठ में दर्द है
कोटि	(पु.)	करोड़	मेरा चार कोटि लग चुका है
	(स्त्री.)	श्रेणी	मनुष्य की अनेक कोटियाँ हैं
यति	(पु.)	सन्यासी	कुम्भ के मेले में यतियों की भीड़ है
	(स्त्री.)	श्रेणी	यहां यति लगनी चाहिए
विधि	(पु.)	ब्रह्मा	विधि अवश्य न्याय करेगा
	(स्त्री.)	प्रणाली ढंग	काम करने की विधि अच्छी है
बाट	(पु.)	बटावरा	तुम्हारा बाट ठीक नहीं
	(स्त्री.)	मार्ग, इंतजार	वह तुम्हारी बाट जोहटा रहा

शान	(हि.स.पु.)	हथियार, औजार तेज करने का पत्थर	मैं तुम्हारे शान का उपयोग करूंगा
	(अरब स्त्री.)	ठाठ-बाट, प्रभुत्व	तुम्हारी शान के क्या कहने
शाल	(हि.स.पु.)	वृक्ष विशेष	यह शाल पुराना है
	(फारसी स्त्री)	दुशाला	तुम्हारी शाल कीमती है

15.3.8 लिंग निर्णय के कुछ सरल सूत्र

अप्राणिवाचक संज्ञाओं के लिंग भेद में भी हिन्दी के सामान्य पाठकों को कठिनाई होती है। हिन्दी के वैयाकरणों ने अब तक जो भी नियम बताए हैं, वे काफी उल्फन पैदा करते हैं। पं. गुरु ने लिंग भेद के लगभग चालीस नियम बताए हैं। इनसे लिंग की कठिनाई दूर नहीं होती, नियमों के अपवाद कभी-कभी उनके उदाहरण से कहीं अधिक हैं। हमें कुछ ऐसे सरल सूत्रों की आवश्यकता है, जो तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी-सभी प्रकार की संज्ञाओं पर समान रूप से लागू हो सकें। यहाँ कुछ सूत्रों का उल्लेख किया जाता है. प्रयोग कर देखें कि ये सूत्र कहाँ तक उपयोगी और वैज्ञानिक है।

1. हिन्दी ने संज्ञाओं के लिंग भेद में संस्कृत की लिंग-व्यवस्था का काफी हद तक अनुसरण किया है। हिन्दी तद्भवों पर संस्कृत के तत्समों का सीधा प्रभाव है। तत्सम यदि पुल्लिंग अथवा नपुंसक है, तो उसका तद्भव पुल्लिंग ही होगा. इस प्रकार संस्कृत का ज्ञान रखने वालों को हिन्दी तद्भव के लिंग निर्णय में विशेष कठिनाई नहीं होगी। सूत्र यह है कि तद्भव चाहे आकारान्त है या आकारान्त, उनके तत्सम यदि अकारान्त हैं, तो ऐसे शब्द पुल्लिंग होंगे, जैसे-

तद्भव	तत्सम	तद्भव	तत्सम
(पुल्लिंग)	(पुल्लिंग)	(पुल्लिंग)	(पुल्लिंग)
अकारान्त-आम	आम	आकारान्त कंधा	स्कन्ध
हाथ	हस्त	कोठा	कोष्ठ
कान	कर्ण	पास	पारद
दूध	दुग्ध	कुआं	कूप
काठ	काष्ठ	पिंजड़ा	पिंजर
		करलेत	कारवेल

2. तद्भव यदि अकारान्त हों और उनके तत्सम आकारान्त हों, तो ऐसे शब्द स्त्रीलिंग होंगे. दूसरे शब्दों में, तत्सम यदि स्त्रीलिंग हैं, तो उनके विकृत रूप तद्भव भी स्त्रीलिंग होंगे, जैसे-

तद्भव	तत्सम	तद्भव	तत्सम
(स्त्रीलिंग)	(स्त्रीलिंग)	(स्त्रीलिंग)	(स्त्रीलिंग)
आकारान्त		आकारान्त	
संध्या	सांझ	शया	सेज
नासिका	नाक	शिला	सिल
भिक्षा	भीख	जिह्या	

3. यदि तत्सम और तद्भव दोनों अकारान्त हैं, तो दोनों पुल्लिंग होंगे, जैसे-

तद्भव	तत्सम	तद्भव	तत्सम
(पुल्लिंग)	(पुल्लिंग)	(पुल्लिंग)	(पुल्लिंग)

ओष्ठ	ओठ	पक्ष	पंख
कर्पूर	कपूर	वाष्प	भाप
आम्र	आम	मयूर	मोर
निम्ब	नीम	सूत्र	सूत
प्रस्तर	पत्थर	ज्येष्ठ	जेठ

4. तत्सम् अकारान्त और उकारान्त शब्द पुल्लिंग होते हैं जैसे –

ऊकारान्त-प्रसू, भू.

उकारान्त-अश्रु, जंतु, राहु, तलु, त्रिशंकु, मेरु इसी तरह ऊकारान्त और ऊकारान्त तद्भव पुल्लिंग होते हैं, जैसे-जनेऊ, डाकू, पिल्लू, घुँघरू, आंसू।

5. जिस अकारान्त अथवा आकारान्त संज्ञा का बहुवचन बनाने में कोई विकार नहीं होता, वह पुल्लिंग और जिन संज्ञा का बहुवचन बनाने में विकार (एँ, यों) होता हो, वह स्त्रीलिंग है। यह नियम सभी अप्राणिवाचक तत्सम तथा तद्भव संज्ञाओं पर लागू होता है, जैसे-

राम के चार भवन हैं-पुल्लिंग (अविकृत)	राम की चार इमारतें हैं-स्त्रीलिंग (विकृत)
राम की बातें हुई स्त्रीलिंग (विकृत)	राम के वचन सुने हैं-पुल्लिंग (अविकृत)
श्याम के चार पुत्र हैं-पुल्लिंग (अविकृत)	मैंने कोशिशें का-स्त्रीलिंग (विकृत)
कमरे में चार खिड़कियाँ हैं-स्त्रीलिंग (विकृत)	

यह एक महत्वपूर्ण सूत्र है। इसके परीक्षण से हमारी लिंग सम्बन्धी समस्या या कठिनाई दूर हो सकती है।

आकारान्त संज्ञाएँ-कामना-कामनाएँ, इच्छा-इच्छाएँ, दिशा-दिशाएँ, वार्ता-वार्ताएँ, टीका- टीकाएँ, कविता-कविताएँ, भाषा-भाषाएँ, परीक्षा परीक्षाएँ इत्यादि।

6. आकारन्त भाववाचक संज्ञाएं, स्त्रीलिंग होती है जैसे-माया, लज्जा, दया, कृपा, छाया, करुणा, क्षमा आदि।

7. यदि बहुवचन बनाने पर संज्ञाओं का अन्त्य 'आ' 'ए' हो जाय, तो ये संज्ञाएँ पुल्लिंग होती हैं, जैसे-ताला-ताले, पहिया-पहिये, कपड़ा-कपड़े, गला-गले, छाता-छाते, जूता-जूते, कुत्ता- कुत्ते इत्यादि.

8. द्रष्टव्य संज्ञाएँ पुल्लिंग होती हैं, जैसे-दही, मोती, पानी इत्यादि।

9. क्रियार्थक संज्ञाएँ पुल्लिंग होती हैं, जिस शब्द के अन्त में 'ना' लगा हो, वे पुल्लिंग होते हैं, जैसे-लिखना, पढ़ना, टहलना, गिरना, उठाना इत्यादि।

10. द्वन्द्व समास के शब्द पुल्लिंग होते हैं जैसे-सीता राम, राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती, दाल-भात, लोटा-डोरी, नर-नारी, राजा-रानी, माँ-बाप इत्यादि।

कामता प्रसाद गुरु

15.3.9 पुल्लिंग-स्त्रीलिंग बनाने के नियम और प्रत्यय

हिन्दी-स्त्री प्रत्यय

निम्नलिखित सामान्य नियम द्रष्टव्य हैं-

1. अकारान्त तथा आकारान्त शब्दों को ईकारान्त कर देने से स्त्रीलिंग हो जाते हैं, जैसे-

आकारान्त शब्द

लड़का लड़की	गधा–गधी	नाना–नानी	साला–साली
गूँगा–गूँगी	नाला–नाली	मोटा–मोटी	काला–काली
देव–देवी	पुत्र–पुत्री	गोप–गोपी	मेढक मेढकी
नर–नारी	हिरन–हिरनी	बन्दर–बन्दरी	ब्राह्मण–ब्राह्मणी

2. 'आ' या 'वा' प्रत्यान्त पुल्लिंग शब्दों में 'आ' या 'वा' की जगह इवा लगाने से वे स्त्रीलिंग बनते हैं, जैसे–कुत्ता–कुतिया, बूढ़ा–बुढ़िया, बाछा–बछिया।

3. व्यवसायबोधक, जातिबोधक तथा उपनामवाचक शब्दों के अन्तिम स्वर का लोप कर उनमें कहीं इन और कहीं आइन प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिंग बनाया जाता है, जैसे–

इन		**आइन**	
माली–मालिन	कुंजड़ा–कुंजड़िन	चौबे–चौबाइन	हलवाई–हलवाइन
धोबी–धोबिन	बाघ–बाघिन	लाला–ललाइन	बनिया–बनियाइन

4. कुछ उपनामवाची शब्द ऐसे भी हैं, जिनमें अपनी प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिंग बनाया जाता है, जैसे–

ठाकुर–ठकुरानी	चौधरी–चौधरानी	जेठ–जेठानी	सेठ–सेठानी
पण्डित–पण्डितानी	देवर–देवरानी	मेहतर–मेहतरानी	खत्री–खत्रानी

5. जाति या भाव बताने वाली संज्ञाओं का पुल्लिंग से स्त्रीलिंग करने में यदि शब्द का अन्य स्वर दीर्घ है, तो उसे ह्रस्व करते हुए नी प्रत्यय का प्रयोग होता है, जैसे–स्यार–स्यारनी, हिन्दू–हिन्दुनी, ऊँट ऊँटनी, हाथी–हथिनी।

6. कुछ शब्द स्वतंत्र रूप से स्त्री–पुरुष के जोड़ होते हैं। ये स्वतंत्र रूप से स्त्रीलिंग या पुल्लिंग शब्द होते हैं, जैसे–

माँ–बाप	राजा–रानी	गाय–बैल	साहब–मेम
मर्द–औरत	भाई–बहन	वर–वधू	माता–पिता
पुत्र–कन्या	पुरुष–स्त्री	बेटी–दामाद	बेटा–प्रतोहू

संस्कृत स्त्री प्रत्यय

7. संस्कृत के 'वान्' और मान् प्रत्ययान्त विशेषण शब्दों में 'वान्' तथा 'मान्' को क्रमशः वती और मती कर देने से स्त्रीलिंग बन जाता है जैसे –

अर्थात् स्त्री और मति कर देने से स्त्रीलिंग बन जाता है, जैसे–

बुद्धिमान–बुद्धिमती	आयुष्मान् आयुष्मति	पुत्रवान–पुत्रवती	बलवान–बलवती
श्रीमान–श्रीमती	भगवान् भगवती	भाग्यवान–भाग्यवती	धनवान् धनवती

8. संस्कृत के बहुत से अकारान्त विशेषण शब्दों के अन्त में आ लगा देने से स्त्रीलिंग हो जाते हैं, जैसे–

तनुज	तनुजा	प्रिय–प्रिया	कान्त कान्ता
चंचल चंचला	अनुज अनुजा	प्रियतम–प्रियतमा	पण्डित–पण्डिता
आत्मज–आत्मजा	पूज्य पूज्या	तनय–तनया	श्याम श्यामा

9. जिन पुल्लिंग शब्दों के अन्त में 'अक' होता है, उनमें अक के स्थान पर इका कर देने से वे शब्द स्त्रीलिंग बन जाते हैं, जैसे–

सेवक सेविका	बालक-बालिका	भक्षक-भक्षिका	नायक-नायिका
पालक-पालिका	संरक्षक-संरक्षिका	लेखक-लेखिका	पाठक-पाठिका

10. संस्कृत की अकारान्त संज्ञाएँ पुल्लिंग रूप में आकारान्त कर देने और स्त्रीलिंग रूप में ईकारान्त कर देने से पुल्लिंग स्त्रीलिंग होती हैं, जैसे-

शब्द	**पुल्लिंग**	**स्त्रीलिंग रूप**
कर्तृ	कर्ता	कर्त्री
धातृ	धाता	धात्री
दातृ	दाता	दात्री
कवियतृ	कवयिता	कवयित्री

हिन्दी-कृदन्त-तद्धित शब्दों से स्त्री प्रत्यय

11. कृदन्त-तद्धित-प्रत्ययान्त पुल्लिंग शब्दों को स्त्रीलिंग बनाने के लिए 'ई', 'इन', 'नी', इन तीन स्त्री प्रत्ययों का ही अधिक प्रयोग होता है। 'आनी' और 'आइन' का प्रयोग संज्ञा- शब्दों को ही पुल्लिंग से स्त्रीलिंग बनाने से अधि क होता है, तद्धितान्त और कृदन्त पुल्लिंग को स्त्रीलिंग बनाने में बहुत ही कम, जैसे-

स्त्री प्रत्यय	**धातु या शब्द**	**कृत-तद्धित प्रत्यय**	**कृदन्त-तद्धितान्त रूप**	**स्त्री प्रत्यय रूप**
ई	घटना	आ (कृत्)	घट	घटी
	फेरना	आ (कृत्)	फेरा	फेरी
	सुहाना	आवना (कृत्)	सुहावना	सुहावनी
	चुकाना	औता (कृत्)	चुकौता	चुकौती
	ढलना	वा (कृत्)	ढलवां	ढलवीं
	आधा	एला (कृत्)	अँधेला	अंधेली
	बिल्ली	औता (कृत्)	बिलौटा	बिलौटी
	चाम	ओटा (कृत्)	चमोटा	चमोटी
	लंग	ओर (कृत्)	लंगोटा	लंगोटी
ई	चोर	टा (तद्धित)	चोट्टा	चोट्टी
	चाम	ओटा (तद्धित)	चमड़ा	चमड़ी
	टोपी	वाला (तद्धित)	टोपीवाला	टोपीवाली
	एक	हरा (तद्धित)	एकहरा	एकहरी
इन	पीना	अक्क (कृत्)	पियक्कड़	पियक्कड़िन
	तैरना	अक (कृत्)	तैराक	तैराकिन
	लड़ना	ऐत (कृत्)	लड़त	लड़ैतिन
	हँसना	ओड़ (कृत्)	हंसोड़	हँसोड़िन
	जनना	हार (कृत्)	जाननहार	जाननहारिन
	सोना	आर (तद्धित)	सुनार	सुनारिन

	माछ	उआ (तद्धित)	महुआ	मछुइन
नि	घटना	अ (कृत्)	घट	घटनी
	भागना	ओड़ा (कृत्)	भगोड़ा	भगोड़नी
	चूड़ी	हारा (कृत्)	चूड़िहारा	चूड़िहारनी
आइन	बूझना	अक्कड़ (कृत्)	बुझक्कड़	बुझक्कड़ाइन
	धुनना	इया (कृत्)	धुनिया	धुनियाइन

15.3.10 लिंग कोष

पुल्लिंग (Masculine) शब्द

अ-अरमान, अपराध, अनाज, अनुसरण, अबीर, अमृत, अपरिग्रह, अनुदान, अक्षत, अणु, अक्षर, अखरोट।

आ-आलस्य, आईना, आचरण, आभूषण, आविर्भाव, आसन, आस्वादन, आहार, आशीर्वाद, आकाश, आलोक, आविष्कार।

अं, अँ, आँ-अँधड़, अँगूर, अँधेरा, अंशु, आँसू।

ओ, औ-ओठ, ओल, ओला, औजार, औसत।

इ, ई-इजलास, इन्द्रासन, इजहार, इनाम, इस्पात, इन्साफ, इत्र, ईंधन।

उ, ऊ - उद्धार, उपवास, उत्कर्ष, उत्साह, उपनयन, उपचार, उद्‍बोधन, उल्लास, उल्लेख, ऊखल, ऊधम।

क-कण्ठ, कपूर, कक्ष, कटिबन्ध, कदम्ब, कवित्त, कर्णफूल, करौंदा, कलेवर, कल्प, कल्याण, कल्लोल, कवच।

का-काग, काजल, कार्तिक, कानन, कायाकल्प।

कि, की-किन्नर, किसलय, कीर्तन।

कु, कू-कुँआ, कुमुद, कुशल, कूड़ा।

के, को, कौ-केवड़ा, केशर, केश, कोष, कोहनूर, कौतूहल, कौशल।

ख-खजून, खरगोश, खरबूजा, खलिहान, खान-पान, खेल।

ग-गन्धक, गगन, गजब, गठबन्धन, गलियारा, गलीचा, गिरना, गुणगान, गुलाब, गेंद, गोलीक, गौरव, ग्रीष्म, ग्रहण।

घ-घर, घड़ा, धन, घराना, घर्षण, घाघरा, पी, घुँघरू, घुमाव, घूँघट, घूँट।

च-चन्द्रोदय, चन्दन, चन्द्रमा, चंदोवा, चन्द्रबिन्दु, चक्रव्यूह, चमत्कार, चलचित्र, चाँद, चाप, चिरकुट, चित्रकूट, चुम्बन, चौन, चोकर।

छ-छंद, छार, छेद, छंद।

ज-जरक, जहाज, जनवासा, जलघर, जलपान, जाप, जासूस, जिहाद, जी, ज्वारभाटा, जुकाम, जुल्म, जोश।

झ-झंझा, झकझोर, झाड़, झींगुर, झुकाव, झूमर।

ट-टमटम, टापू, टिफिन।

ठ-ठप्पा, ठाट-बाँट, ठौर।

ड-डण्ठल, डंड, डमरू, डोर।

ढ-ढंग, ढोल, ढोंग।

त–तंतु, तन्त्र, तम्बाकू, तट, तत्त्व, तन, तपाक, तरकश, तरबूजा, तराजू, तर्पण, ताम्बूल, ताज, तानपुरा, तानाब, ताश, त्रिफला, तिलक, तीर, तीर्थ, तोड़–जोड़, त्राण, त्रिशुंक।

थ–थन, थल, थाक, थोक

द–दंगल, दण्ड, दम्भ, दर्जा, दर्पण, दल, दलबल, दलाल, दहेज, दालान, दानपात्र, दाम दामन, दही, दास, दिन, दिमाग, दिल, दीपक, दुर्ग, दुलार, दुशाला, दूध, दृग, दृश्य द्वीप।

ध–धन्धा, धड़, धन, धनुष, धर्म, धाम, धैर्य, ध्यान, धनिया।

न–नकद, नक्षत्र, नख, नजराजा, नभ, नगर

प–पख, पंचरत्न, पन्थ, पंछी, पकवान, पक्षी, पग, पड़ोस, पत्थर, पच, पद, पदार्थ, पनीर, पन्ना, पयोधि, पर्दा, परमाणु, परलोक, परिचय, परिणाम, परिधान, पल्लव, पाक, पाखण्ड, पाचन, पाताल, पापड़, पाला, पीताम्बर, पुखराज, पुराण, पुरस्कार, पुलाव, पुस्तकालय, पूजन, पौरुष, पाजामा, प्रयोग, प्रणय, प्रतिद्वन्द्व, प्रतीक, प्रत्यय, प्रदेश, प्रभाव, प्रसार, प्रातः, प्रारम्भ।

फ–फण, फर्क, फल, फाग, फानूस, फल, फूल, फेरा, फोंक।

ब–बण्डल, बबूल, बचपन, बड़प्पन, बहिष्कार, बाग, बाजा, बादाम, बाहुल्य, बिछावन,
बीज, दूँट, बेला, बेसन।

भ–भँवर, भजन, भवन, भरण, भाग्य, भाव, भाषण, भाष्प, भुजपाश, भूचाल, भूकम्प, भूषण, भोज, भोर, भौरा, भ्रमर, भ्रमण.

म–मंच, मण्डल, मंत्रिमण्डल, मकरन्द, मजीरा, मटर, मनोवेग, मलय, मलयगिरि, महुआ,
माघ, मिजाज, मुरुब्बा, मुकुट, पन्ना, मृग, मेघ, मोती, मोतीचूर, मौन।

य–यन्त्र, यति, यश, यातायात।

र–रक्त, रत्न, रमण, रहस्य, राग, रूप, रीति, रूमाल।

ल–लंगर, लगान, लालच, लिहाज, लेख, लेटा, लेन–देन।

व–वजन, वज्र, वनवास, वर, वरण, वसंत, वचन, विलम्ब, विवाद, वैभव, वैराग्य, वैष्णव, व्यंजन, व्याख्यान, व्याज, व्यास।

श–शंख, शतदल, शनि, शन, शयन, शर, शल्प, शहद, शहतूत, शिखर, शिल्प, शिविर, शीर्ष, शील, शुक्र, शैशव, शोध, शौर्य, श्रम, श्वास।

ष–षड्यन्त्र, षडानन, षट्कर्म, षोडश, षड्मासिक।

स–संकट, संकेत, संखिया, संगम, संगीन, संघटन, संचय, संचार, संयोग, सन्तुलन, सन्दूक, सन्देह, सम्पर्क, सम्बन्ध, संयम, संवर्द्धन, संविधान, संस्थान, सत्तू, सत्व, सदन, सफर, समीर, सरमिज, सरोवर, सवैया, सहन, समीर, सिल्क, सीप, सुधांशु, सुमन, सुर, सूत, सूद, सेव, सेवन, सोना, सोम, सोहर, सौख्य, सौजन्य, सौरभ, सौष्ठव, सौहार्द, स्तम्भन, स्तर, स्मारक, स्वयंवर, स्वरूप, स्वर्ग, स्वर्ण, स्वांग, स्वाद।

ह–हार, हंस, हक, हठधर्म, हमला, हरण, हवन, हार, हाल, हास्य, हिम, डिल्लोल, हीरा, हुलास, हेरफेर, हेलमेल, होंठ, होश, ह्रास।

स्त्रीलिंग (Feminine) शब्द

अ–अंगड़ाई, अकड़, अदालत, अनबन, अचकन, अप्सरा, अफवाह, अपेक्षा, अवज्ञा, अरहर, अवस्था।

आ–आँच, आँत, आज, आजीविका, आज्ञा, आत्मा, आत्मजा, आदत, आन, आमदा, आय, आयु, सारि, आवाज, वृद्ध, आशीष, आँख।

इ, ई–इन्द्रिय, इच्छा, इजाजत, इला, ईख, ईंट।

ए, ऐ–एकता, ऐनक।

ओ, औ–ओस, औलाद.

क–कक्षा, आवरण, कड़क, कथा, कन्या, कमर, कमई, आदेश, करुण ए, कसक, ककड़ी, कसरत, कस्तूरी, करतूत, किलक, किस्मत, किशमिश, कीमत, कुंजी, कुटिया, कुशल, कूक, कृपा, कोयल, क्षमा।

ख–खटिया, खड़ाऊँ, खबर, खरीद, खरोंज, खाँड, खाई, खान, खातिर, खाद, खिदमत, खोज।

ग–गंगा, गजल, गणना, गनीमत, गफलत, गरज, गरिमा, गौरैया, गर्दिश, गाँठ, गाजर, गाज, गागर, गाया, गिटपिट, गीता, गीतिका, गुड़िया, गुड्डी, गुरुता, गूज, गोट, गोपिका, गौ।

घ–घटा, घटिका, घाट, घिन, घुड़दौड़, घूस, घृणा, घोषण।

च–चमेली, चकई, चटक, चट्टान, चपत, चपला, चर्चा, चमक, चहक, चहल–पहल, चाँदी, चॉप, चादर, चाहत, चिकित्सा, चिनगारी, चिलम, चीख, चीनी, चुटिया, चुनरी, चुनौती, चूक, चैं–चैं, चेतक, चेतना, चोंच, चौपड़, चौखट।

छ–छटा, छत, छमछम, छलाँग, छवि, छाँह, छाप, छाया, छूट, छुआछूत।

ज–जंग, जंजीर, जलवायु, जमीन, जलन, जय, जरूरत, जागीर, जिज्ञासा जिह्वा, जीत, जीभ, जेब, जेवनार, ज्वाला।

झ–झकार, झिझक, झनकार, झपक, झरझर, झकझक, झलमल, झाड़, झांझर, झतर, झील, झूम।

ट–टकसाल, टफक, टहल, टोंक, टाप, टाल–मटोल, टिकिया, टिप–टिप, टिमटाम, टीम, टेंट, टेक, टोक, ट्रेन।

ठ–ठण्डक, ठमक, ढूँठ, ठेक, ठेक, थेरू।

ड–डंग, डगर, डाक, डाट, डाँक, डाल, डींग, डोर, डिबिया।

ढ–ढोलक।

त–तन्द्रा, तकदीर, तकरार, तड़क–भड़क, तड़प, तबियत, तमन्ना, तरंग, तरकीब, तराश, तलब, तलाश, तशरीफ, तहजीब, तान, ताक–झाँक, तारीफ, तालीम, तीज, तुक, तुला, त्योरी, त्रिया।

थ–थकान, थरथर, थलिया, थाप, थाह।

द–दक्षिण, दमक, दरखास्त, दरगाह, दरार, दलदल, दस्तक, दहशत, दावत, दिनचर्या, दिका, दीक्षा, दीढ, दीवार, दुत्कार, दुम, दूरबीन, दुनिया, देन, देह।

ध–धड़क, धड़कन, धमक, धरा, धरोहर, धाय, धार, धारणा, धुन, धूप, धूपछांव, ध्वज।

न–नकल, नकाव, नजर, नजात, नसीहत, नमाज, नाँद, निगाह, निद्रा, निशा, निष्ठा, नीयत, नुमाइश, नोकझींक, नौबत, नालिश।

प–पंचायत, पखावज, पतवार, पतझड़, पताका, पत्तल, पनाह, पसन्द, परिक्रमा, परिषद् परीक्षा, पलटन, पहचान, पायल, पिपासा, पुलिस, पुड़िया, पुकार, पूँछ, पेन्सिल, पोशाक पैदावार, पौध, प्रतिज्ञा, प्रतिभा, प्रतीक्षा, प्रभा।

फ–फजीहत, फटकार, फतह, फरियाद, फसल, फिक्र, फुरसत, फुहार, फ्रैंक, फौज।

ब–बकवास, बगल, बधाई, बनावट, बरात, बहार, बाँह, बातचीत, बागडोर, बरसात बारिश, बारूद, बालिका, बुदिया, बुलबुल, बूंद, बेर, बैठक, बोलचाल, बौछार।

भ–भनक, भभक, भरमार, भभूत, भाँग, भार्या, भिक्षा, भीख, भुजा, भेंट, भेड़, भौंह।

म–मंजिल, मंझधार, मन्त्रणा, मंशा, मचक, मचान, मजाल, मज्जा, मखमल, मणि, ममता, मर्यादा, मलमल, महक, महफिल, महिमा, माला मिठास, मुलाकात, मेखला, मेहन् मैना, मौज।

य–यन्त्रणा, यमुना, यति, याचना, यादगार, यातना, यात्रा, याद, यामा, योजना।

र–रंगत, रकम, रक्षा, रंग, रज, रचना, रज्जु, रमना, रस्म, रमा, राखा, रामायण, राम, राह, राहत, रियासत, रिमझिम, रीझ।

ल-लंका, लकीर, लगन, लगान, लचक, लज्जा, लट, लता, लपक, ललकार, लाज, लालमिर्च, लागत, लालटेन, लालसा, लाह, लियाकत, लीक, लाख, लोटपोट, लौ।

व-वकालत, वसीयत, वायु, विचारणा, विजय, विद्या, विनय, विद्या, वेश्या, व्यथा, व्याख्या।

श-शंका, शपथ, शरारत, शरण, शक्ल, शर्म, शरबत, शर्त, शराफत, शबनम, शरारत, शलाका, शमशीर, शहदत, शान, शाखा, शाम, शामत, शिखा, शिकायत, शिरा, श्रृंखला, शौकत, श्रृद्धा।

स-सन्तान, सम्पदा, संवेदना, संस्कृत, संस्था, सजा, सजधज, सजावट, सड़क, सत्ता, सनक, सनद, सम्पदा, समझ, समस्या, सरसों, सरकार, सराय, सलामत, ससुराल, साँझ, साजिश, सिफारिश, सीमा, सूजन, सेज, सेंध, सेवा, सौगन्ध, सौगात, सौंफ, स्थापना।

ह-हकीकत, हजामत, हड़ताल, हड़बड़, हद, हरकत, हवा, हलचल, हांक, हाय, हाट, हालत, हाल, हाला, हिकमत, हिचक, हिदायत, हिफाजत, हिमायत, हिम्मत, हींग, डूक, हेला, हैसियत, होड़।

स्वयं आकलन प्रश्न

(1) लिंग किसे कहते है ?

(2) लिंग के कितने भेद हैं ?

(3) पुल्लिंग किसे कहते है ?

15.4 सारांश :

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि लिंग किसी शब्द की जाति अथवा किसी व्यक्ति की जाति सम्बधी शब्द का बोध करवाता है। इस अध्याय में लिंग के स्वरूप में लिंग का अर्थ, परिभाषा तथा भेदों का विस्तृत अध्ययन किया गया है।

15.5 कठिन शब्दावली

(1) लिंग - किसी शब्द की जाति का बोध होना।

(2) स्त्रीलिंग - किसी शब्द का स्त्री जाति होने का बोध।

(3) पुल्लिंग - किसी शब्द का पुरुष जाति होने का बोध।

15.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उतर

(1) उत्तर- जो शब्द किसी शब्द की जाति का बोध करवाता हो।

(2) उत्तर- दो।

(3) उत्तर- जिस शब्द के माध्यम से पुरुष होने का बोध हो।

(4) उत्तर- जिस शब्द के माध्यम से स्त्री जाति होने का बोध हो ।

15.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) कामता प्रसाद गुरु - हिंदी व्याकरण।

(2) भोलानाथ तिवारी - भाषाविज्ञान।

15.8 सात्रिक प्रश्न

(1) लिंग के स्वरूप को स्पष्ट करों।

(2) स्त्रीलिंग को उदाहरण सहित स्पष्ट करें।

(3) पुल्लिंग किसे कहते हैं।

*****

इकाई–16
वचन और कारक

संरचना

16.1 भूमिका

16.2 उद्देश्य

16.3 वचन का स्वरूप

16.3.1 वचन के प्रकार

16.3.2 वचन रूपान्तरण की प्रक्रिया

स्वयं आकलन के प्रश्न–1

16.4 कारक का स्वरूप

16.4.1 कारक के भेद

16.4.2 विभक्तियों की विशेषताएं

16.4.3 विभक्तियों का प्रयोग

स्वयं आकलन के प्रश्न–2

16.5 सारांश

16.6 कठिन शब्दावली

16.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

16.8 संदर्भित पुस्तकें

16.9 सात्रिक प्रश्न

16.1 भूमिका

वचन व्याकरण की कोटियों में से एक है। वचन संख्यावाचक का बोध करवाता है। वचन, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रियाओं की संख्याओं के रूप परिवर्तन का भी बोध करवाता है।

16.2 उद्देश्य: (1) वचन की जानकारी।

(2) वचन के भेदों का बोध।

(3) एकवचन और बहुवचन के रूप का बोध।

16.3 वचन का स्वरूप

वचन का शाब्दिक अर्थ है-संख्या वचन, संख्यावचन को ही संक्षेप में वचन कहते हैं। शब्दों के संख्याबोधक विकारी रूप का वचन है।

कामता प्रसाद गुरु तथा उनके अनुयायी विद्वानों के अनुसार संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया के जिस रूप से संख्या का बोध होता है, उसे वचन कहते हैं।

16.3.1 वचन के प्रकार

संस्कृत के वैयाकरण वचन के तीन भेद मानते हैं।

(1) एकवचन, (2) द्विवचन और (3) बहुवचन, अंग्रेजी की भाँति हिन्दी में वचन के दो भेद माने जाते हैं। (1) एकवचन तथा (2) बहुवचन

विकारी शब्द (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया) के जिस रूप से एक पदार्थ या व्यक्ति का बोध होता है, उसे एकवचन कहते हैं, जैसे-लड़का, लड़की, पुस्तक, वह, अच्छा, जाता है-आदि।

विकारी शब्द (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया) के जिस रूप से अधिक पदार्थों या व्यक्तियों का बोध होता है, उसे बहुवचन कहते हैं, जैसे-लड़के, लड़कियाँ, पुस्तकें, वे, अच्छे, जाते है-आदि।

द्रष्टव्य-आदर के लिए भी एकवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग किया जाता है जैसे-राजा साहब स्वयं पधारे हैं।

राजा के बड़े बेटे आए हैं।

स्वामी विवेकानन्द बाल ब्रह्मचारी थे।

16.3.2 वचन के रूपान्तर की प्रक्रिया

वचन के कारण सभी विकारी शब्दों (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया) के रूप विकृत होते हैं परन्तु द्रष्टव्य यह है कि सर्वनाम, विशेषण और क्रिया के रूप मूलतः संज्ञाओं पर ही आश्रित रहते हैं। इसलिए वचन में संज्ञा-शब्दों का रूपान्तर होता है।

हिन्दी के कुछ व्याकरणों में वचन का विस्तार कारक के साथ किया गया है, क्योंकि अनेक शब्दों में बहुवचन के प्रत्यय विभक्तियों के बिना नहीं लगाए जाते हैं, परन्तु उचित यही है कि वचन का विस्तार इसी अवसर पर कर लिया जाए, क्योंकि विभक्तियों के कारण जो विकार होते हैं वे कारक के संदर्भ में आसानी से समझ लिये जाएँगे। आदि वचन के अधीन संज्ञा के रूप दो प्रकार से परिवर्तित होते हैं- (क) विभक्ति सहित और (ख) विभक्ति रहित। उदाहरण देखिए-मूल रंग तीन हैं। इस वाक्य में रंग शब्द बहुवचन है, परन्तु रंग शब्द में बहुवचन का कोई चिह्न नहीं है। उसका बहुवचन केवल क्रिया द्वारा तथा विधेय विशेषण तीन से जानी जाती है, यहाँ रंग शब्द विभक्ति रहित है।

इन रंगों में तुमको कौन सा रंग पसन्द आया यहाँ रंगों शब्द विभक्ति सहित बहुवचन का उदाहरण है. हम स्वयं देखते हैं कि विभक्ति रहित बहुवचन और विभक्ति सहित बहुवचन के रूप भिन्न होते हैं।

इस संदर्भ में कामता प्रसाद गुरु ने एक बहुत महत्वपूर्ण बात कही है–''संस्कृत में प्रतिपदिक (संज्ञा का मूल रूप) प्रथमा विभक्ति के एकवचन से भिन्न रहता है और इसी प्रतिपदिक में एकवचन, द्विवचन और बहुवचन के प्रत्यय जोड़े जाते हैं'' परन्तु हिन्दी में संज्ञा का मूल रूप ही प्रथमा विभक्ति (कर्ताकारक) में आता है। इसी मूल रूप में प्रत्यय लगाने से प्रथमा का बहुवचन बनता है, जैसे–घोड़ा–घोड़े, पुस्तक–पुस्तकें आदि. विभक्ति सहित कारकों में बहुवचन का जो रूप होता है वह प्रथमा (विभक्ति रहित कर्ता कारक) के बहुवचन से भिन्न रहता है, जैसे–घोड़े, घोड़ों, ने, घोड़ों को इत्यादि, अस्तु।

वचन की पहचान– वाक्य में वचन की पहचान संज्ञा, सर्वनाम और क्रिया शब्द से होती है। सामान्यत: संज्ञा और सर्वनाम शब्द से ही वचन का ज्ञान हो जाता है, यथा–

लड़का पढ़ता है	लड़के पढ़ते हैं
मैं जा रहा हूँ	हम जा रहे हैं
वह आया	वे आए
औरत बोली	औरतें बोलीं

स्पष्टत : लड़के, हम, वे और औरतें बहुवचन हैं। कुछ शब्द एकवचन और बहुवचन में प्राय: समान रूप में रहते हैं, ऐसी स्थिति में बहुवचन का ज्ञान क्रिया द्वारा लगाया जाता है, यथा–

आदमी पढ़ता है	आदमी पढ़ते हैं
डाकू जाता है	डाकू जाते हैं
पति बैठा है	पति बैठे हैं
ऋषि त्यागी है	ऋषि त्यागी हैं.

ऊपर के उदाहरण में हम देखते हैं कि आदमी, डाकू पति और ऋषि के रूप दोनों स्थितियों में समान रहते हैं, परन्तु क्रियाओं के रूपों में भेद के सहारे बहुवचन की पहचान कर ली जाती है।

एकवचन से बहुवचन बनाना

वैयाकरणों ने एकवचन से बहुवचन बनाने के नियमों पर विस्तारपूर्वक विचार किया है। कामता प्रसाद गुरु ने विभक्ति रहित और विभक्ति सहित शब्दों के दो वर्ग बनाए हैं और उनके बहुवचन बनाने के नियमों को बताया है। हिन्दी के व्याकरणों में सामान्यत: इन्हीं नियमों का साम्य ठहराया गया है। हम इस सन्दर्भ में कुछ हटकर चलना चाहते हैं। हम पुल्लिंग और स्त्रीलिंग शब्दों के दो वर्ग बनाकर उनके एकवचन से बहुवचन बनाने पर विचार करते हैं, यथा–

नियम 1. पुल्लिंग शब्दों में अन्तिम आ को प्राय: ए (–) कर देते हैं. उदाहरण–

एकवचन	**बहुवचन**	**एकवचन**	**बहुवचन**
लड़का	लड़के	कुर्ता	कुर्ते
कपड़ा	कपड़े	गधा	गधे

नियम 2. कुछ सम्बन्धसूचक शब्दों में अन्तिम आ जैसे का तैया बना रहता है, उदाहरण–

एकवचन	**बहुवचन**	**एकवचन**	**बहुवचन**
पिता	पिता	दादा	दादा
मौसा	मौसा	नाना	नाना

अपवाद-संबन्धसूचक शब्द बेटा, भतीजा, भाँजा और सा ला अपवाद हैं। इनमें से बहुवचन क्रमशः बेटे, भतीजे, भानजे व साले होते हैं।

नियम अ, इ, ई, उ, ऊ अन्त वाले पुल्लिंग शब्द दोनों वचनों में समान रहते हैं।

उदाहरण-

एकवचन	**बहुवचन**	**एकवचन**	**बहुवचन**
धर	धर	ऋषि	ऋषि
हाथी	हाथी	साधु	साधु
डाकू	डाकू		

नियम 4. स्त्रीलिंग शब्दों में अन्तिम अ को एँ (ँ) में बदलते हैं, उदाहरण-

एकवचन	**बहुवचन**	**एकवचन**	**बहुवचन**
बहन	बहनें	आँख	आँखें
गाय	गायें	रात	रातें

नियम 5. स्त्रीलिंग आकारांत शब्दों में आ के आगे एँ जोड़ा जाता है. उदाहरण-

एकवचन	**बहुवचन**	**एकवचन**	**बहुवचन**
माता	माताएं	अध्यापिका	अध्यापिकाएँ
लता	लताएँ	महिला	महिलाएँ

नियम 6. इ-ई अन्तिम स्त्रीलिंग शब्दों में इयाँ जोड़ दिया जाता है. उदाहरण-

एकवचन	**बहुवचन**	**एकवचन**	**बहुवचन**
नीति	नीतियाँ	रीति	रीतियाँ
नारी	नारियाँ	रानी	रानियाँ

नियम 7. स्त्रीलिंग शब्दों में अन्तिम उ-ऊ का उएँ होता है, तथा औ के आगे एँ जुड़ बता है. उदाहरण-

एकवचन	**बहुवचन**	**एकवचन**	**बहुवचन**
वस्तु	वस्तुएँ	बहू	बहुएँ
धेनु	धेनुएँ	गौ	गौएँ

नियम 8. स्त्रीलिंग शब्दों में अन्तिम या की याँ कर देते हैं उदाहरण-

एकवचन	**बहुवचन**	**एकवचन**	**बहुवचन**
डिबिया	डिबियाँ	कुटिया	कुटियाँ
चिड़िया	चिड़ियाँ	गुड़िया	गुड़ियाँ

नियम 9. कुछ शब्द ऐसे हैं जो सदा एकवचन रहते हैं अथवा बहुवचन रहते हैं. उदाहरण-

सदा एकवचन-भीड़, जनता, प्रजा आदि।

सदा बहुवचन-आँसू, दर्शन, प्राण, लोग, होश आदि।

नियम 10. कुछ ऐसे पुल्लिंग और स्त्रीलिंग दोनों वर्गों के शब्द हैं जिनके बहुवचन, गण, जन, दल, वृन्द, वर्ग, मण्डल, लोग आदि शब्द जोड़कर बनाए जाते हैं. उदाहरण-

एकवचन	**बहुवचन**	**एकवचन**	**बहुवचन**
छत्र	छात्रगण	वृद्ध	वृद्धजन
दस्यु	दस्युदल	मुनि	मुनिवृन्द
युवा	युवावर्ग	मित्र	मित्रमंडल, मित्रमंडली
आप	आप लोग	भू	भूमण्डल

द्रष्टव्य-(i) उक्त शब्दों को जोड़कर बनाए गए बहुवचन की क्रिया एकवचन में होती है, जैसे-मुनिवृन्द कमरे में है. पाठकवर्ग ध्यान दे।

(ii) बहुवचन की क्रिया द्वारा एक से अधिक का (दो का भी) बोध होता है, परन्तु गण आदि लगाकर बनाए गए बहुवचन द्वारा अधिक संख्या की ध्वनि निकलती है-वे समूह में हैं, मात्र दो-तीन नहीं।

विशेष

(i) आदर प्रकट करने के लिए एक व्यक्ति के लिए बहुवचन का प्रयोग होता है, जैसे-
मेरे पिता जी बीमार हैं.
राजा साहब पधारे हैं;
स्वामीजी पीताम्बर धारण किए हैं.
बाबा महाराज. आज ही गए हैं.
इस प्रकार के प्रयोगों में शब्द के आगे, पीछे, श्री, जी, महोदय आदि आदरवाचक शब्द जोड़ दिए जाते हैं।

(ii) कुछ लोग एकवचन में के लिए हम बहुवचन का प्रयोग करते हैं, जैसे-
आजकल हम बीमार हैं.
हम कल कलकत्ता जाने वाले हैं.

(iii) बहुवचन के अर्थ में एकवचन वाची शब्दों का प्रयोग होता है, जैसे-
(क) समूहवाचक - सभा, भीड़, दल, वर्ग आदि।
(ख) द्रव्यवाचक - सोना, चाँदी, दूध, घी आदि।
(ग) पदार्थसूचक - संज्ञा शब्द-आम, अमरूद, गेहूं, चावल, पेठा आदि।

(IV) प्रत्येक तथा हरेक का प्रयोग सदैव एकवचन में होता है।

(v) अन्य भाषाओं के शब्दों के बहुवचन हिन्दी व्याकरण के अनुसार बनाए जाने चाहिए, जैसे-अंग्रेजी के स्कूल का बहुवचन स्कूलों होगा, न कि स्कूल्स, फारसी के मकान, एवं अरबी के अमीर का बहुवचन मकानों एवं अमीरों होगा, न कि मकानात व अमरा।

(vi) भाववाचक और गुणवाचक संज्ञाओं का प्रयोग एकवचन में होता है, परन्तु जहाँ संख्या या प्रकार का बोध हो, वहाँ गुणवाचक और भाववाचक संज्ञाएँ आवश्यकतानुसार बहुवचन में भी प्रयुक्त हो सकती हैं, जैसे-मरने वाले में अनेक विशेषताएँ या खूबियों थीं. विवशताओं के कारण उनकी प्रतिभा कुंठित रह गई।

(vii) प्राण, दर्शन, लोग, आँसू, अक्षत, ओठ, दाम आदि शब्दों का प्रयोग सदैव बहुवचन में होता है।

विभक्ति सहित संज्ञाओं के बहुवचन बनाने के नियम

विभक्तियों से युक्त होने वाले शब्दों के बहुवचन बनाने के कतिपय सामान्य नियम निम्नलिखित प्रकार हैं-

(1) अकारान्त, आकारान्त (संस्कृत शब्दों को छोड़कर) तथा एकारांत संज्ञाओं में अन्तिम अ, आ, या ए के स्थान पर बहुवचन बनाने में ओं कर दिया जाता है।

एकवचन	**बहुवचन**	**विभक्ति चिह्न के साथ प्रयोग**
लड़का	लड़कों	लड़कों ने कहा
हाथी	हाथियों	हाथियों की पूजा करो
चोर	चोरों	चोरों को मारो
गधा	गधों	गधों की तरह मत रेंको

(2) सभी इकारांत और ईकारांत संज्ञाओं के बहुवचन बनाने के लिए अन्त में यों जोड़ा जाता है। इकारान्त शब्दों में यों जोड़ने के पहले ई का इ कर दिया जाता है, जैसे-

एकवचन	**बहुवचन**	**विभक्ति चिह्न के साथ प्रयोग**
मुनि	मुनियों	मुनियों ने कहा
ऋषि	ऋषियों	ऋषियों की यज्ञशाला
नदी	नदियों	नदियों को गंदा मत कीजिए
नारी	नारियों	नारियों का सम्मान कीजिए

स्वयं आकलन हेतु प्रश्न

अभ्यास प्रश्न-1

1. वचन को स्पष्ट करें।
2. वचन के कितने भेद है।

16.4 कारक का स्वरूप

संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से उसका (संज्ञा या सर्वनाम) सम्बन्ध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ प्रकाशित होता है, उस रूप को कारक कहते हैं। इस कथन का स्पष्टीकरण करते हुए डॉ. वासुदेव नन्दन प्रसाद ने लिखा है कि ''संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से उनका (संज्ञा या सर्वनाम का) क्रिया से सम्बन्ध सूचित हो, उसे (उस रूप को) कारक कहते हैं।

कारक सूचित करने के लिए संज्ञा या सर्वनाम के आगे जो प्रत्यय लगाए जाते हैं, उन्हें विभक्तियों कहते हैं, जैसे-रामू, ने लकड़ी से कुत्ते को मारा. मारा क्रिया तथा शब्दों में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापन के लिए रामू, लकड़ी, कुत्ते के आगे क्रमशः ने, से प्रत्यय को लगाए गए हैं। इन्हें विभक्तियाँ कहा जाता है। इन विभक्तियों द्वारा सम्बन्धित शब्दों के जो सम्बन्ध सूचित होते हैं, उन्हें कारक कहा जाता है।

इस प्रकार संज्ञा या सर्वनमा के आगे जब ने, को, से आदि विभक्तियाँ लगती हैं, तब उनका रूप ही कारक कहलाता है।

विभक्तियों के लगने पर ही कोई शब्द कारकपद पाता है और वाक्य में आने योग्य होता है.

16.4.1 कारक के भेद-हिन्दी में आठ कारक हैं। इनके नाम, विभक्तियाँ और लक्षण नीचे दिए जाते हैं-

कारक	**विभक्ति**	**लक्षण**
1. कर्ता (Nominative)	ने	क्रिया से जिस वस्तु के विषय में विधान किया जाता है, उसे सूचित करने वाले संज्ञा के रूप को कर्ता कारक कहते हैं. राम ने दरवाजा खोला।

2. कर्म (Objective)	को	जिस वस्तु पर क्रिया के व्यापार का फल पड़ता है, उसे सूचित करने वाले संज्ञा के रूप को कर्म कारक कहते हैं. मैंने पत्थर फेंका/मैंने रामू को बुलाया।
3. करण (Instrumental)	से	संज्ञा के जिस रूप से किया के साधन का बोध होता है, उसे करण कारक कहते हैं। उसने लाठी से कुत्ते को मारा।
4. सम्प्रदान (Dative)	को, के	जिस वस्तु के लिए कोई क्रिया की जाती है उसकी वाचक संज्ञा के रूप को लिए सम्प्रदान कारक कहते हैं. मैं नेहा के लिए आम लाया. राजा ने ब्राह्मण को भोजन कराया।
5. अपादान (Ablative)	से	संज्ञा के जिस रूप से क्रिया के विभाग की अवधि सूचित होती है, उसे अपादान कारक कहते हैं. पेड़ से पत्ते गिरे।
6. संबंध (Genitive)	का, की, के,	संज्ञा के जिस रूप से उसकी वाच्य रूप का सम्बन्ध किसी दूसरी वस्तु के साथ रा, री सूचित होता है, उस रूप को सम्बन्ध कारक कहते हैं. यह उसका कलम है. यह मेरी पस्तक है (सम्बन्ध कारक का रूप सम्बन्धी शब्द के लिंग, वचन के कारण बदलता है.)
7. अधिकरण (Locative)	मैं, पे, पर	संज्ञा का रूप जिससे क्रिया के आधार का बोध होता है, अधिकरण कारक कहलाता है. हाथी वन में पाया जाता है. पुस्तक मेज पर है।
8 सम्बोधन (Addressive	ए, हे, हो,	संज्ञा के जिस रूप से किसी को चिताना या पुकारना सूचित होता है, उसे (or Vocative) अरे, एजी, संबोधन कारक कहते हैं, अरे, इधर आओ, एजी, सुनते हो। अजी, इत्यादि।

16.4.2 विभक्तियों की विशेषताएँ

हिन्दी में दो प्रकार की विभक्तियाँ हैं (1) विश्लिष्ट और (2) संश्लिष्ट, संज्ञाओं के साथ आने वाली विभक्तियाँ विश्लिष्ट हैं, यानी वे अलग रहती हैं, जैसे-सीता ने गीता को प्यार किया। इस वाक्य में ने और को विभक्तियाँ क्रमश: सीता और गीता के साथ प्रयुक्त की गई है, परन्तु वे अलग हैं. इसके विपरीत सर्वनामों के साथ आने वाली विभक्तियाँ संश्लिष्ट या मिली होती है, जैसे-उसका दूध बिल्ली पी गई, तुमको क्या मतलब ? आदि

हम स्वयं देख सकते हैं कि तुम्हें, इन्हें में को और तेरा, तुम्हारा में का विभक्ति चिह्न संश्लिष्ट है। अत: के लिए जैसे दो शब्दों की विभक्ति में पहला शब्द (के) संश्लिष्ट है और दूसरा शब्द (लिए) विश्लिष्ट है। इसी प्रकार तू + रे लिए तेरे लिए, तुम + रे लिए = तुम्हारे लिए, मैं + रे लिए = मेरे लिए आदि।

विभक्तियों के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए-

(1) विभक्तियों (ने, को, से आदि) का काम शब्दों का सम्बन्ध दिखाना है। अत: इनका अर्थ नहीं होता है।

(2) विभक्तियाँ प्रायः संज्ञाओं और सर्वनामों के साथ आती है।

(3) सर्वनाम के साथ प्रयुक्त होने पर विभक्ति विकार उत्पन्न कर देती है और उसके साथ मिल जाती है. जैसे-मेरा तेरा, उसे, इसे, उन्हें, उनको आदि।

16.4.3 विभक्तियों का प्रयोग

कर्ता-कारक

इसकी विभक्ति ने है. कभी कर्ता के साथ इसका प्रयोग होता है और कभी कर्ता के इसका प्रयोग नहीं होता है। जब कर्ता के साथ ने का प्रयोग नहीं होता है, तब क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष और कर्ता के अनुसार होते हैं। इसको अप्रत्यय या प्रधान कर्ता कहते हैं जैसे मैं खाना खाता हूँ। इस वाक्य में क्रिया खाता हूँ के लिंग, वचन और पुरुष कर्ता में के अनुसार है।

दूसरे प्रकार का प्रयोग यह होता है जब वाक्य में क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्म अनुसार होते हैं और कर्ता के साथ ने का प्रयोग नहीं होता है, जैसे-मैंने मिठाई खाई स्पष्टतः इस वाक्य की क्रिया खाई के लिंग, वचन और पुरुष कर्म मिठाई के अनुसार हैं. इसे व्याकरण में सप्रत्यय/अप्रभान कर्ता कारक कहते हैं।

कर्ता के ने चिह्न का प्रयोग केवल हिन्दी और उर्दू में होता है। खड़ी बोली हिन्दी में ने चिह्न कर्ता कारक में संज्ञा-शब्दों की एक विश्लिष्ट विभक्ति है, जिसकी स्थिति यद्यपि एकदम स्पष्ट है, तथापि इसके प्रयोग में प्रायः भूलें हो जाया करती है।

ने का प्रयोग अधिकतर पश्चिमी हिन्दी में होता है। बनारस से लेकर पंजाब तक इसका प्रयोग सर्वथा स्वाभाविक रूप में किया जाता है. हाँ, इतना अवश्य है कि अहिन्दी भाषी लोगों को इसका प्रयोग करते समय कुछ कठिनाई अवश्य होती है।

प्रो. शिवनाथ ने 'हिन्दी कारकों का विकास' में लिखा है कि 'सावधानीपूर्वक देखने पर स्पष्ट हो जाएगा कि इसका स्वरूप तथा प्रयोग जैसा संस्कृत में है, वैसा हिन्दी में भी है, हिन्दी में वैशिष्ट्य नहीं आया। 'ने' के प्रयोग के सम्बन्ध में विद्वानों ने बहुत विस्तार से लिखा है। हम उस विस्तार में न जाकर केवल यह बताना चाहते हैं कि ने का प्रयोग इन स्थितियों में नहीं होता है-

(क) सकर्मक क्रियाओं के कर्ता के साथ भविष्यत्काल में ने का प्रयोग बिल्कुल नहीं होता है।

(ख) यदि संयुक्त क्रिया का अन्तिम खण्ड अकर्मक हो, तो उसमें ने का प्रयोग नहीं होता है।

(ग) जिन वाक्यों में लगना, जाना, सकना तथा चुकना सहायक क्रियाएँ आती है, उनमें ने का प्रयोग नहीं होता है, जैसे वह पानी पीने लगा. वह खा चुका. उसे अभी लौटकर आना है।

(घ) बकना, बोलना, भूलना ये क्रियाएँ यद्यपि सकर्मक हैं, और इनके साथ ने का प्रयोग होना चाहिए, तथापि ऐसा नहीं होता है। अपवाद स्वरूप सामान्य आसन्न, पूर्ण और संदिग्ध भूतकालों में कर्ता के ने चिह्न का प्रयोग नहीं होता है। पाठक, एक बात समझ लें, बोलना क्रिया में कहीं-कहीं ने का प्रयोग आता है।

कर्म-कारक

कर्मकारक का प्रत्यय चिह्न (विभक्ति) को है, इसके प्रयोग के सम्बन्ध में इस प्रकार नियम हैं-

1. बहुधा कर्ता में विशेष कर्तृत्व शक्ति जताने के लिए कर्म सप्रत्यय रखा जाता है, जैसे-उसने पेड़ को कटवाया।
2. प्रायः चेतन पदार्थों के साथ को चिह्न का प्रयोग होता है और अचेतन के साथ नहीं, परन्तु यह अन्तर भी वाक्य प्रयोग पर निर्भर करता है। मैं रोटी को खा रहा हूँ, मैं कॉलेज को जा रहा हूँ, मैं लेख को लिख रहा हूँ-आदि वाक्यों में को का प्रयोग अनुपयुक्त है।

3. बुलाना, सुलाना, कोसना, पुकारना, जगाना, भगाना आदि क्रियाओं के कर्मों के साथ की विभक्ति लगती है।
4 मारना क्रिया का अर्थ जब पीटना होता है तब कर्म के साथ विभक्ति लगती है। यदि उसका अर्थ शिकार करना होता है, तो विभक्ति नहीं लगती है।
5. कर्म सप्रत्यय रहने पर किया सदा पुल्लिंग होगी और अप्रत्यय रहने पर क्रिया कर्म के अनुसार होगी; जैस-राम ने आम को खाया (सप्रत्यय), राम ने आम खाया (अप्रत्यय)।
6. यदि विशेषण क्रिया के रूप में प्रयुक्त हो, तो कर्म में को अवश्य लगता है, जैसे-बड़ों को आदर देना और छोटों को प्यार करना सीखो।

करण-कारक

करण कारक का चिह्न से माना जाता है, परन्तु करण कारक के प्रत्यय चिह्न सर्वाधिक हैं, यथा-द्वारा, से के द्वारा, के जरिए, के साथ, के बिना इत्यादि।

ने भी कारण कारक का चिह्न है जो करण कारक के रूप में संस्कृत से आए कर्ता के लिए एन के रूप में, कर्मवाच्य और भाववाच्य में आता है।

करण का अर्थ है साधन. अत: से चिह्न वहीं कारण कारक का चिह्न है, जहाँ यह साधन के अर्थ में प्रयुक्त हो, जैसे-यह काम **मुझसे** नहीं हो सकेगा। स्पष्ट है कि यहाँ **मुझसे** का अर्थ मेरे द्वारा है।

अपादान का भी कारक चिह्न से है, परन्तु वहाँ वह अलगाव का प्रतीक है।

करण कारक के सन्दर्भ में निम्नलिखित तथ्य द्रष्टव्य है-

(1) **से, के द्वारा और के जरिये** हिन्दी में प्रधानत: करण कारक के ही प्रत्यय माने जाते है, क्योंकि ये समस्त प्रत्यय साधन अर्थ की ओर इंगित करते हैं।

(2) भूख, प्यास जाड़ा, आँख, कान, पाँव आदि शब्द यदि एकवचन करक कारक में सप्रत्यय रहते हैं, तो एकवचन होते हैं और अप्रत्यय रहते हैं, तो बहुवचन, जैसे-

वह **भूख से** मर रहा है.

वह **भूखों से** मर रहा है.

मैंने यह घटना अपनी आँख से देखी.

द्रष्टव्य-करण कारक के सन्दर्भ में एक विद्वान ने बड़े मार्के की बात लिखी है-''करण कारक का क्षेत्र अन्य सभी कारकों से विस्तृत है। इस करण में अन्य समस्त कारकों से छूटे हुए प्रत्यय या वे पद आ जाते हैं, जो अन्य किसी कारक में आने से बच गए हैं''

सम्प्रदान-कारक

साधारणत: जिसे कुछ दिया जाता है, या जिसके लिए कोई काम किया जाता है, वह भर सम्प्रदान कारक का होता है, जैसे-**भूखों को** अन्न और **जिज्ञासुओं** को ज्ञान देना चाहिए. यहां को का अर्थ है **के लिए** इस प्रकार हम देखते हैं कि **कर्म** और सम्प्रदान दोनों का चिह्न की है, परन्तु दोनों में अन्तर है। सम्प्रदान का को, के लिए अव्यय के स्थान पर या उसके अर्थ में प्रयुक्त होता है, जबकि **कर्म** के **को** का **के लिए** अर्थ से कोई सम्बन्ध नहीं है. एक उदाहरण देखिए पिता ने बेटे को पुस्तक दी. पिता ने बेटे को पुस्तक खरीदी।

द्रष्टव्य के हित, के वास्ते के निमित्त आदि प्रत्यय वाले अव्यय भी सम्प्रदान कारक के प्रत्यय हैं।

अपादान-कारक

जिस शब्द में अपादान की विभक्ति (से) लगती है, उससे किसी दूसरी वस्तु के पृथक होने का बोध होता है, जैसे-पेड़ से पत्ते गिर रहे हैं, गंगा-यमुना हिमालय से निकलती हैं। करण का भी प्रत्यय से है. दोनों का अन्तर करण के संदर्भ में बता चुके हैं।

सम्बन्ध-कारक - संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से किसी अन्य शब्द के साथ सम्बन्ध या लगाव प्रतीत हो, उसे सम्बन्धबाचक कहते हैं।

सम्बन्धबाचक का चिह्न का है. वचन और लिंग के अनुसार इसकी विकृति की, के होती है. इस कारक से अधिकार, कर्तृत्व, कार्य-करण, मोलभाव, परिमाण इत्यादि का बोध होता है, जैसे- अधिकार-श्याम की कोठी।

कर्तृत्व-प्रसाद के नाटक, गुलेरीजी की कहानी, तुलसी का रामचरितमानस

कार्य-करण- स्टील की कटोरी, ताँबे का लोटा, मारकीन का पाजामा, गेहूं की रोटी आदि।

मोल-भाव-एक रुपए के कोयले, सौ रुपए का घी, दस रुपए की दाल।

परिमाण-छः माशे की अँगूठी, सौ किलोमीटर की दूरी, बीस मीटर का थान आदि।

सम्बध कारक की विभक्तियों के विभिन्न प्रयोग दृष्टव्य है-

1. सम्बन्ध कारक की विभक्तियों द्वारा कुछ मुहावरेदार प्रयोग होते हैं.
   (क) महीने के महीने, होली की होली, दोपहर के दोपहर, जून के जून इत्यादि।
   (ख) कान का कच्चा, बात का धनी, आंख का अंधा, दिल का सच्चा, हाथ का ढीला आदि।
   (ग) वह अब जाने का नहीं, यह अब आने का नहीं, हम टिकने के नहीं आदि।
2. अन्य कारकों के अर्थ में भी सम्बन्ध कारक की विभक्ति लगती है, जैसे-जन्म का दरिद्री, (करण) पहाड़ का चढ़ना, (अधिकरण)।
3. सर्वनाम की स्थिति में सम्बन्ध कारक का प्रत्यय रा, री, रे और ना, नी, ने हो जाता है-मेरा लड़का, मेरी बहिन, अपना भरोसा, मोतीलाल की कम्पनी, अपनी बात, तुम्हारा पर. तुम्हारी पुस्तक, तुम्हारे रुपए आदि।
4. सम्बन्ध, अधिकार और देने के अर्थ में बहुधा सम्बन्ध कारक की विभक्ति का प्रयोग होता है, जैसे राम के भाई हुआ है, मेरे मामाजी के बाल बच्चा नहीं है, राजा के आँखें नहीं होती, बड़े भाई ने छोटे भाई के लात मारी, अभ्यागत को भोजन दो।

अधिकरण-कारक

1. अधिकरण के चिह्न है में, पर (पै) कभी कभी में के अर्थ में पर और पर के अर्थ में में का प्रयोग होता है, जैसे-
   तुम्हारे घर पर आजकल कौन-कौन है. **घर में**
   नाव जल में तैरती है-**जल पर**
2. कभी कभी अधिकरण कारक की विभक्तियों का लोप भी हो जाता है, जैसे-
   इन दिनों यह कलकत्ता है, (कलकता में)
   जिस समय तुम आए, उस समय में नहीं था।
   उस जग एक सभा का आयोजन किया गया है।

3. किनारे, आसरे और दिनों जैसे पद स्वयं सप्रत्यय अधिकरणकारक के हैं और यहाँ, वहाँ, समय आदि पदों का अर्थ सप्रत्यय अधिकरणकारक का है। अत: इन पदों की स्थिति में अधिकरणकारक का प्रत्यय नहीं लगता है।

सम्बोधन-कारक

संज्ञा के जिस रूप से किसी के पुकारने या संकेत करने का भाव पाया जाता है, उसे सम्बोधनकारक कहते हैं, जैसे-हे प्रभु! मुझे बचाइए. अरे यार ! चुप भी रहो, आदि।

सम्बोधनकारक की कोई विभक्ति नहीं होती है। इसे प्रकट करने के लिए हे, ओ, अरे, अजी आदि शब्दों का प्रयोग होता है।

विभक्तियों की व्युत्पत्ति- स्व. पं. कामता प्रसाद गुरु ने विभक्तियों की व्युत्पत्ति के बारे में विस्तार से लिखा है, इसका सारांश निम्नलिखित प्रकार है -

हिन्दी की अधिकांश विभक्तियाँ प्राकृत के द्वारा संस्कृतम से निकली हैं, प्राकृत और संस्कृत के विपरीत हिन्दी की विभक्तियाँ दोनों वचनों में एक रूप रहती है। इन विभक्तियाँ को कोई कोई वैयाकरण प्रत्यय नहीं मानते, किन्तु सम्बन्धसूचक अव्ययों में गिनते हैं हिन्दी विभक्तियों की व्युत्पत्ति बहुत ही विवादग्रस्त विषय है।

(1) कर्ता-कारक

इस कारक के अधिकांश प्रयोगों में कोई विभक्ति नहीं आती है। कर्ता कारक को विभक्तियों में 0 चिह्न लिख दिया जाता है। हिन्दी में कर्ता कारक की कोई विभक्ति (प्रत्यय) न होने का कारण यह है कि प्राकृत में अकारान्त और आकारान्त पुल्लिंग संज्ञाओं को छोड़ शेष पुल्लिंग और स्त्रीलिंग संज्ञाओं का प्रथमा (एकवचन) विभक्ति में कोई प्रत्यय नहीं है और संस्कृत के कई एक तत्सम शब्द भी हिन्दी में प्रथमा (एकवचन) रूप में आए हैं।

हिन्दी में कर्ताकारक की जो 'ने' विभक्ति आती है, यह यथार्थ में संस्कृत की तृतीया विभक्ति (करणकारक) के 'ना' प्रत्यय का रूपान्तर है, परन्तु हिन्दी में ने का प्रयोग संस्कृत 'न' के समान करण (साधन) के अर्थ में कभी नहीं होता। इसलिए उसे हिन्दी करणकारक की (वृतीया) विभक्ति नहीं मानते। यह 'ने' विभक्ति पश्चिमी हिन्दी का विशेष चिह्न है, पूर्वी हिन्दी (और बंगला, उड़िया आदि भाषाओं) में इसका प्रयोग नहीं होता। मराठी में इसके दोनों वचनों के रूप क्रमश: 'ने' और 'नी' है। 'ने' विभक्ति को अधिकांश (देशी) और (विदेशी) वैयाकरण संस्कृत के 'ना' (प्रा. एण) से व्युत्पन्न मानते हैं और उसके प्रयोग से हिन्दी रचना प्राय: संस्कृत के अननुसार होती है।

(2) कर्म-कारक

इस कारक की विभक्ति 'को' है परन्तु अधिकांशत: इस विभक्ति का लोप हो जाता है औरतब कर्मकारक को संज्ञा का रूप दोनों वचनों में कर्ताकारक के समान होता है। यही 'को' विभक्ति सम्प्रदानकारक की भी है, इसलिए ऐसा कह सकते हैं कि हिन्दी में कर्म कारक कोई निज का रूप नहीं है। इसका रूप यथार्थ में कर्म और सम्प्रदान कारकों में बँटा हुआ इसकी व्युत्पत्ति विवादस्पद है।

अपादान-कारक

जिस शब्द में अपादान की विभक्ति (से) लगती है, उससे किसी दूसरी वस्तु के पृथक होने का बोध होता है, जैसे-पेड़ से पत्ते गिर रहे हैं। गंगा-यमुना हिमालय से निकलती है। करण का भी प्रत्यय से है। दोनों का अन्तर करण के संदर्भ में बता चुके हैं।

सम्बन्ध-कारक- संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से किसी अन्य शब्द के साथ सम्बन्ध या लगाव प्रतीत हो, उसे सम्बन्धवाचक कहते हैं।

सम्बन्धवाचक का चिह्न का है. वचन और लिंग के अनुसार इसकी विकृति की, के होती है। इस कारक से अधिकार, कर्तृत्व, कार्य करण, मोलभाव, परिमाण इत्यादि का बोध होता है, जैसे-

अधिकार- श्याम की कोठी.

कर्तृत्व-प्रसाद के नाटक, गुलेरीजी की कहानी, तुलसी का रामचरितमानस

कार्य-करण-स्टील की कटोरी, ताँबे का लोटा, मारकीन का पाजामा, गेहूं की रोटी आदि।

मोल-भाव-एक रुपए के कोयले, सौ रुपए का घी, दस रुपए की दाल।

परिमाण-छह माशे की लंबाई, सौ किलोमीटर की दूरी, बीस मीटर का थान आदि।

सम्बध कारकी की विभक्तियों के विभिन्न अर्थ दृष्टव्य हैं-

1. सम्बन्ध कारक की विभक्तियों द्वारा कुछ मुहावरेदार प्रयोग होते हैं।
   (क) महीने के महीने, होली की होली, दोपहर के दोपहर, जून के जून इत्यादि।
   (ख) कान का कच्चा, बात का धनी, आँख का अंधा, दिल का सच्चा, हाथ का ढीला आदि।
   (ग) वह अब जाने का नहीं, वह अब आने का नहीं, हम टिकने के नहीं आदि।
2. अन्य कारकों के अर्थ में भी सम्बन्ध कारक की विभक्ति लगती है, जैसे-जन्म का दरिद्री, (करण) पहाड़ का चढ़ना, (अधिकरण)।
3. सर्वनाम की स्थिति में सम्बन्ध कारक का प्रत्यय रा, री, रे और ना, नी, ने हो जाता है-मेरा लड़का, मेरी बहिन, अपना भरोसा, मोतीलाल की कम्पनी, अपनी बात, तुम्हारा घर, तुम्हारी पुस्तक, तुम्हारे रुपए आदि।
4. सम्बन्ध, अधिकार और देने के अर्थ में बहुधा सम्बन्ध कारक की विभक्ति का प्रयोग होता है, जैसे-राम के भाई हुआ है, मेरे मामाजी के बाल-बच्चा नहीं हैं, राजा के आँखें नहीं होतीं, बड़े भाई ने छोटे भाई के लात मारी, अभ्यागत को भोजन दो।

अधिकरण-कारक

1. अधिकरण के विह है मैं, पर (पै). कभी कभी **में** के अर्थ में **पर** और **पर** के अर्थ में **में** का प्रयोग होता है, जैसे-
   तुम्हारे घर **पर** आजकल कौन कौन है. **घर में**
   नाव जल में तैरती है-**जल पर**
2. कभी कभी अधिकरण कारक की विभक्तियों का लोप भी हो जाता है, जैसे-
   इन दिनों वह कलकत्ता है, **(कलकत्ता में)**
   जिस समय तुम आए, उस समय में नहीं था।
   उस जग एक सभा का आयोजन किया गया है।
3. **किनारे, आसरे और दिनों** जैसे पद स्वयं सप्रत्यय अधिकरणकारक के हैं और यहाँ, वहाँ, समय आदि पदों का अर्थ सप्रत्यय अधिकरणकारक का है। अतः इन पदों की स्थिति में अधिकरणकारक का प्रत्यय नहीं लगता है।

सम्बोधन-कारक

संज्ञा के जिस रूप से किसी के पुकारने या संकेत करने का भाव पाया जाता है, उसे सम्बोधनकारक कहते हैं, जैसे-हे प्रभु ! मुझे बचाइए. अरे यार । चुप भी रहो, आदि।

सम्बोधनकारक की कोई विभक्ति नहीं होती है. इसे प्रकट करने के लिए हे, ओ, अरे. अजी आदि शब्दों का प्रयोग होता है।

विभक्तियों की व्युत्पत्ति-स्व. पं. कामता प्रसाद गुरु ने विभक्तियों की व्युत्पत्ति के बारे में विस्तार से लिखा है, इसका सारांश निम्नलिखित प्रकार है -

हिन्दी की अधिकांश विभक्तियाँ प्राकृत के द्वारा संस्कृतम से निकली हैं, प्राकृत और संस्कृत के विपरीत हिन्दी की विभक्तियाँ दोनों वचनों में एक रूप रहती हैं। इन विभक्तियों को कोई कोई वैयाकरण प्रत्यय नहीं मानते किन्तु संबंध सूचक अव्ययों में गिनते हैं। हिन्दी विभक्तियों की व्युत्पति बहुत ही विवादग्रस्त विषय है।

(1) कर्ता-कारक-

इस कारक के अधिकांश प्रयोगों में कोई विभक्ति नहीं आती है। कर्ता कारक को विभक्तियों में 0 चिह्न लिख दिया जाता है। हिन्दी में कर्ता कारक की कोई विभक्ति (प्रत्यय) न होने का कारण यह है कि प्राकृत में अकारान्त और आकारान्त पुल्लिंग संज्ञाओं को छोड़ शेष पुल्लिंग और स्त्रीलिंग संज्ञाओं का प्रथमा (एकवचन) विभक्ति में कोई प्रत्यय नहीं है और संस्कृत के कई एक तत्सम शब्द भी हिन्दी में प्रथमा (एकवचन) रूप में आए।

हिन्दी में कर्ताकारक की जो 'ने' विभक्ति आती है, यह यथार्य में संस्कृत की तृतीया विभक्ति (करणकारक) के 'ना' प्रत्यय का रूपान्तर है, परन्तु हिन्दी में ने का प्रयोग संस्कृत 'न' के समान करण (साधन) के अर्थ में कभी नहीं होता। इसलिए उसे हिन्दी करणकारक की (तृतीया) विभक्ति नहीं मानते। यह 'ने' विभक्ति पश्चिमी हिन्दी का विशेष चिह्न है, पूर्वी हिन्दी (और बंगला, उड़िया आदि भाषाओं) में इसका प्रयोग नहीं होता। मराठी में इसके दोनों वचनों के रूप क्रमश: 'ने' और 'नी' है। 'ने' विभक्ति को अधिकांश (देशी) और (विदेशी) वैयाकरण संस्कृत के 'ना' (प्रा. एण) से व्युत्पन्न मानते हैं और उसके प्रयोग से हिन्दी रचना भी प्राय: संस्कृत के अननुसार होती है।

(2) कर्म-कारक

इस कारक की विभक्ति 'को' है. परन्तु अधिकांशत: इस विभक्ति का लोप हो जाता है और तब कर्मकारक को संज्ञा का रूप दोनों वचनों में कर्ताकारक के समान होता है। यही 'को' विभक्ति सम्प्रदानकारक की भी है, इसलिए ऐसा कह सकते हैं कि हिन्दी में कर्म कारक का कोई निज का रूप नहीं है. इसका रूप यथार्थ में कर्म और सम्प्रदान कारकों में बँटा हुआ है. इसकी व्युत्पत्ति विवादस्पद है।

(3) करण-कारक

इसकी विभक्ति 'से' है, यही प्रत्यय अपादान कारक का भी है, कर्म और सम्प्रदान- कारकों की विभक्ति के समान हिन्दी में करण और अपादानकारकों की विभक्ति भी एक ही है। 'से' की व्युत्पत्ति के विषय में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं, इन विद्वानों में से किसी ने यह नहीं बताया कि हिन्दी में 'ते' विभक्तिकरण और अपादान दोनों कारकों में क्योंकर प्रचलित है। व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों के एक वर्ग का कथन यह है कि 'से' विभक्ति प्राकृत की पंचमी विभक्ति 'सुन्तो' से निकली है और इसी से हिन्दी के अपादान कारक के प्राचीन रूप 'ते', 'सो' आदि व्युत्पन्न हुए है, चन्द्र के महाकाव्य में अपादान के अर्थ में 'हूँतो' और 'हूँत' आए हैं, जो प्राकृत की पंचमी से दूसरे प्रत्यय 'हितो' से निकलते हैं।

(4) सम्बध-कारक

इस कारक की विभक्ति 'का' है। वाक्य में जिस शब्द के साथ सम्बन्धकारक का सम्बन्ध होता है, उसे भेद कहते हैं और भेद के सम्बन्ध से सम्बन्धकारक को भेद कहते हैं। 'राजा का घोड़ा' इस वाक्यांश में 'राजा का भेदक और 'घोड़ा' भेद्य है. सम्बन्धकारक की विभक्ति 'का' भेद्य के लिंग, वचन और कारक के अनुसार बदलकर 'की' और के हो जाती है. हिन्दी की और विभक्तियों के समान 'का' विभक्ति की व्युत्पत्ति के विषय में भी वैयाकरणों का मत एक नहीं है. उनके मतों का सार नीचे दिया जाता है-

(अ) संस्कृत में इक, ईन, इय प्रत्यय, संज्ञाओं में लगने से 'तत्सम्बन्धी' विशेषण बनते हैं, जैसे-काया-कायिक, कुल-कुलीन, 'इक' से हिन्दी में 'का', 'इन' से गुजराती में 'नो' ओर 'इ थ' से सिन्धी में 'जो' और मराठी में 'चा' आया है।

(आ) प्राय: इसी अर्थ में संस्कृत में एक प्रत्यय 'क' आता है, जैसे-भद्रक-भद्र देश में उत्पन्न, प्राचीन हिन्दी में भी वर्तमान 'का' के स्थान में 'क' पाया जाता है। ऐसा प्रतीत है कि हिन्दी 'का' संस्कृत से 'क' प्रत्यय से निकला है।

(इ) प्राकृत में 'इद' (सम्बन्ध) अर्थ में 'करेओ', 'केरिआ', 'केरक', 'केर' आदि प्रत्यय आते हैं, जो विशेषण के समान प्रयुक्त होते हैं और लिंग में विशेष्य के अनुसार बदलते हैं।

(ई) क्क, इक्क, एच्चप आदि प्राकत के इदमर्थ के प्रत्ययों से ही रूपान्तरित होकर वर्तमान हिन्दी के 'का के की' प्रत्यय सिद्ध हुए दिखते हैं।

(उ) सर्वनामों के रा, रे, री प्रत्यय केरा, केरी, आदि प्रत्ययों के आध 'क' का लोप करने से बने हुए समझे जाते हैं।

इस मत मतान्तर से जान पड़ता है कि हिन्दी के सम्बन्धकारक की विभक्तियों की व्युत्पत्ति निश्चित नहीं है। तथापि यह बात प्राय: निश्चित है कि ये विभक्तियों 'वा' प्राकृत की किसी विभक्ति से नहीं निकली हैं, किन्तु किसी तद्धित प्रत्यय से व्युत्पन्न हुई हैं।

(5) अधिकरण-कारक

इसकी दो विभक्तियाँ हिन्दी में प्रचलित हैं-'में' और 'पर' इनमें से 'पर' को अधिकांश वैयाकरण संस्कृत 'उपरि' का अपभ्रंश मानकर विभक्तियों में नहीं गिनते। 'उपरि' का एक और अपभ्रंश 'अपर' हिन्दी में सम्बन्धसूचक के समान भी प्रचलित है। यथार्थ में पर शब्द स्वतंत्र ही है, क्योंकि यह संस्कृत वा प्राकृत की किसी विभक्ति वा प्रत्यय से नहीं निकलता है। 'पर' को अधिकरणकारक की विभक्ति मानने का कारण यह है कि अधिकरण से जिन आधार का बोध होना है उसके सब भेद अकेले 'में' सूचित नहीं होते जैसे संस्कृत..... में की व्युत्पत्ति के विषय में भी मतभेद है और इसके मूलरूप का निश्चय नहीं हुआ। कोई इसे संस्कृत 'मध्ये' का और कोई प्राकृत सप्तमी विभक्ति 'म्मि' का रूपान्तर मानते हैं।

(6) सम्बोधन-कारक

कोई कोई वैयाकरण इसे अलग कारक नहीं गिनते, किन्तु कर्ताकारक के अन्तर्गत मानते हैं। सम्बन्धकारक के समान यह कारक में इसलिए नहीं गिना जाता, क्योंकि इन कारकों का सम्बन्ध बहुधा क्रिया से नहीं होता। सम्बन्धकारक का अन्वय तो क्रिया के साथ परोक्ष रूप से होता है, परन्तु सम्बोधनकारक का अन्वय वाक्य में किसी शब्द के साथ नहीं होता, इसको केवल इसीलिए कारक मानते हैं कि इस अर्थ में संज्ञा का स्वतंत्र रूप पाया जाता है। सम्बोधन कारक की कोई अलग विभक्ति नहीं है, परन्तु और कारकों के समान इसके दोनों वचनों में संज्ञा का रूपान्तर होता है। विभक्ति के बदले इस कारक में संज्ञा के पहले बहुधा, हे, हो,

अरे, अजी आदि विस्मयादिबोधक अव्यय लगाए जाते हैं।

विभक्तियाँ चरम प्रत्यय कहलाती हैं, अर्थात् उनके पश्चात् दूसरे प्रत्यय नहीं आते। इस लक्षण के अनुसार विभक्तियों और प्रत्ययों का अन्तर स्पष्ट हो जाता है, जैसे-संसार भर के ग्रंथगिरि पर. (भारत) इस वाक्यांश में 'भर' शब्द विभक्ति नहीं है, क्योंकि उसके पश्चात् 'के' विभक्ति आई है। इस 'के' के पश्चात् भर, तक वाला, आदि कोई प्रत्यय नहीं आ सकते. तथापि हिन्दी में अधिकरणकारक की विभक्तियों के साथ बहुधा सम्बन्ध का अपादान कारक की विभक्ति आती है, जैसे-'हमारे पाठकों में से बहुतेरों ने' 'नंद उनको आसन पर से उठा देगा' 'तट पर से'. 'कुएँ में का मेढक' जहाज पर के यात्री इत्यादि।

(अ) कभी-कभी सम्बन्धकारक को संज्ञा मानकर उनका बहुवचन भी कर देते हैं, जैसे-यह काम घरकों ने किया है. (घरकों ने - घरवालों ने)

कोई-कोई विभक्तियाँ कुछ अव्ययों में भी पाई जाती हैं, जैसे-

को-कहाँ को, यहाँ को, आगे को

से-कहाँ से, वहाँ से, आगे से

का-कहाँ का, जहाँ का, जब का

पर-यहाँ पर, जहाँ पर

स्वयं आकलन के प्रश्न

स्वयं आकलन प्रश्न-2

1. 'राम ने रावण को मारा' में कौन सा कारक है?
2. कारक के कितने प्रकार है?

16.5 सारांश :

सारांश रूप में हम कह सकते कि वचन तथा कारक दो व्याकरणिक कोटियां हैं जिसमें संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रिया के परिवर्तित रूप का अध्ययन दिया जाता है। उपयुक्त अध्याय में वचन तथा कारक के विषय में विस्तृत जानकारी का वर्णन किया गया है।

16.6 कठिन शब्दावली :

(1) वचन- संस्थाओं का बोध करवाना।

(2) एकवचन - जिसमें एक संख्या का बोध हो हो।

(3) बहुवचन - जिसमें एक से अधिक संख्या का बोध हो।

16.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

स्वयं आकलन प्रश्न-1 के उत्तर

(1) जो शब्द संख्या का बोध करवाए उसे वचन कहते हैं।

(2) दो भेद।

स्वयं आकलन प्रश्न-2 के उत्तर

(1) कर्ता

(2) आठ

16.8 संदर्भित पुस्तकें

(1) भोलानाथ तिवारी - भाषा विज्ञान।

(2) डॉ. कपिल देव द्विवेदी - भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र।

16.9 सात्रिक प्रश्न

(1) वचन के स्वरूप को स्पष्ट करें।

(2) वचन के भेदों का विस्तृत वर्णन करें।

(3) कारक के स्वरूप लिखे।

*****

एम.ए. प्रथम वर्ष
हिन्दी

कोर्स कोड : MNIN-104

भाषा विज्ञान

पाठ 1 से 16

संशोधितः डॉ. मंगत राम

अन्तर्राष्ट्रीय दूरवर्ती शिक्षा एवं मुक्त-अध्ययन केन्द्र
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, ज्ञान पथ
समरहिल शिमला -171005

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	भाषा	
2.	भाषा विज्ञान: स्वरूप और प्रकार	
3.	स्वन प्रक्रिया : स्वरूप	
4.	स्वन का वर्गीकरण	
5.	स्वनिम विज्ञान : स्वरूप	
6.	रूप विज्ञान का स्वरूप	
7.	व्याकरण का स्वरूप	
8.	वाक्य का स्वरूप	
9.	अर्थ विज्ञान का स्वरूप	
10.	अर्थ परिवर्तन की दिशाएं	
11.	अर्थ परिवर्तन के कारण	
12.	भाषा विज्ञान की उपयोगिता	
13.	वाक्य विश्लेषण	
14.	अन्य शब्द	
15.	लिंग	
16.	वचन और कारक	